सस्ता साहित्य मण्डल

बहत्तरवां ग्रन्थ

[७२]

हमारे राष्ट्रपति

[सन १८८५ से १९३६ तक के कांग्रेस-सभापतियों के जीवन-परिचय]

प्रस्तावना लेखक

राष्ट्रपति बाबू राजेन्द्रप्रसाद

लेखक

सत्यदेव विद्यालङ्कार

प्रकाशक

सस्ता साहित्य मण्डल

दिल्ली

पहली बार २०००
अप्रैल, १९३६
मूल्य एक रुपया।

पूज्य मालवीयजी की अपील

"'सस्ता साहित्य मण्डल' ने हिन्दी में उच्चकोटि की सस्ती पुस्तकें निकालकर हिन्दी की बड़ी सेवा की है। सर्वसाधारण को इस संस्था की पुस्तकें लेकर इसकी सहायता करनी चाहिए।"

मदनमोहन मालवीय

मुद्रक—
बाबू हरनामदास गुप्त,
भारत प्रिंटिङ्ग वर्क्स, दिल्ली

परिचय

डाक्टर पट्टाभि सीतारामय्या-लिखित कांग्रेस के इतिहास के दूसरे संस्करण की तय्यारी के लिए जनवरी के तीसरे सप्ताह में श्री हरिभाऊजी उपाध्याय जब देहली आये, तब उन्होंने सस्ता साहित्य मण्डल की ओर से कांग्रेस के समस्त सभापतियों की जीवनी लिखने का कार्य करने के लिए मुझे प्रेरित किया और कहा कि वह कांग्रेस-इतिहास के दूसरे संस्करण के साथ ही लखनऊ में होने वाली कांग्रेस के अवसर पर न केवल लिखकर किन्तु छपकर भी तय्यार होजाना चाहिए। मैंने बहुत झिझकते हुए स्वीकार तो कर लिया, पर दिल नहीं माना कि इतना बड़ा और ऐसा श्रम-साध्य कार्य इतने थोड़े समय में हो सकेगा। दैनिक-'अर्जुन' के सम्पादक श्री रामगोपाल जी विद्यालंकार, साप्ताहिक-'अर्जुन' के सम्पादक श्रीकृष्णचन्द्रजी विद्यालंकार, और अपने पुराने

साथी श्री मुकुटबिहारीजी वर्मा से इस सम्बन्ध में बातचीत हुई। आप भाइयों के सहयोग के आश्वासन पर यह काम शुरू कर दिया गया। प्रस्तुत पुस्तक को आप तीनों के सहयोग का ही परिणाम समझना चाहिए, जिसके लिए मैं आप तीनों भाइयों का कृतज्ञ और अनुगृहीत हूँ।

कार्य शुरू करने पर उपयुक्त साहित्य-सामग्री का मिलना कठिन हो गया। श्री नटेसन ने तब तक के कुछ कांग्रेस-सभापतियों की जीवनियां प्रकाशित की हैं, जब तक कि उसमें उग्र विचारों का समावेश न हुआ था। उस समय के भी अधिकांश सभापतियों की जीवनियां अप्राप्य और अप्रकाशित ही हैं। देहली का पुस्तकों का बाजार और पुस्तकालय भी इस दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं। कुछ सभापतियों के सम्बन्ध में उनके घरवालों के सिवा किसी और से कुछ मालूम होना संभव नहीं था। जहां से भी हुआ वहां से और जैसे भी हुआ वैसे सब सामग्री जुटाई गई। उसके जुटाने में जिन भाइयों ने सहायता प्रदान की उन सभी का आभार मानना जरूरी है। मदरास के भाई श्री के० सुन्दर राघवन्, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और 'स्वदेशमित्रम्' के सम्पादक श्रीयुत सी० आर० श्रीनिवासन्, बम्बई के भाई आबिद अली, इलाहाबाद के श्री विश्वम्भर, कलकत्ता के 'विश्वमित्र' के सहकारी-सम्पादक भाई श्री परमेश्वरीसिंह और लखनऊ के श्रीयुत मोहनलाल सक्सेना एम० एल० ए० का साभार और सधन्यवाद नामोल्लेख करना आवश्यक है। आप सबकी सहायता के बिना पुस्तक इतनी सुन्दर, उपयोगी, पूर्ण और प्रामाणिक नहीं बन सकती थी। उन सबका नाम

देना कठिन है, जिनकी पुस्तकों, लेखों और साहित्य से लाभ उठाया गया है। वह सूची बहुत बड़ी है। उन सभीके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करना आवश्यक है। फिर भी श्री रामनाथजी सुमन और उनकी पुस्तक 'हमारे राष्ट्रनिर्माता' की ओर कृतज्ञता पूर्वक संकेत कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। उनकी ही लिखी हुई जीवन-कहानियों से इन जीवन-परिचयों की रूप-रेखा खींचने में विशेष सहायता ली गई है।

हम लोगों का विचार था कि इसी के साथ परिशिष्ट में उन राष्ट्र पुरुषों का जीवन-परिचय भी दे दिया जाता, जो किसी कारण वश कांग्रेस के सभापति नहीं बन सके, किन्तु कांग्रेस को बनाने में जिनका बहुत ही अधिक हाथ रहा है। कांग्रेस के पितामह कहे जानेवाले और निरन्तर २१-२२ वर्षों तक उसके प्रधान-मन्त्री रहकर उसकी सेवा करने वाले श्रीयुत ए० ओ० ह्यूम और उनके साथी पं० अयोध्यानाथजी आदि की सेवा उस समय के किसी भी सभापति की सेवा से कम नहीं थी। पर, पुस्तक के बहुत बढ़ जाने के भय से वैसा नहीं किया जा सका। उस विचार को किसी और समय में दूसरे रूप में पूरा करने की इच्छा या आकांक्षा अब भी वैसी ही बनी हुई है। लोकमान्य तिलक के व्यक्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। वैसे वे सभापति मनोनीत भी हो चुके थे। इसलिए उनके जीवन-परिचय का समावेश तो इसमें कर ही दिया गया है।

पुस्तक के नाम के सम्बन्ध में कुछ आपत्ति होना सम्भव है। जिन दिनों में कांग्रेस उग्र राजनैतिक संस्था नहीं बनी थी, उसके वार्षिक

अधिवेशन केवल एक समारोह के रूप में होते थे और सभापति भी केवल उस समय के लिए ही चुने जाते थे, उन दिनों के सभापति के लिए 'राष्ट्रपति' शब्द का प्रयोग कदाचित् कुछ महानुभावों को ठीक न जंचे, किन्तु बहुत सोच-विचारने के बाद भी इससे अधिक उपयुक्त कोई दूसरा नाम इस पुस्तक के लिए नहीं मिला। फिर यदि कांग्रेस के लिए 'राष्ट्रीय महासभा' शब्द काम में लाया जाने लगा है और उसके सभापति के लिए 'राष्ट्रपति' शब्द पर्यायवाची बन गया है, तब पुस्तक के इस नाम में व्यवहार की दृष्टि से किसीको कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। नीति, कार्यशैली और दृष्टि में भेद हो जाने के बाद भी वे सब महापुरुष हमारे लिए वंदनीय हैं, जिन्होंने राष्ट्रीय महासभा की कभी कुछ थोड़ी-सी भी सेवा की है या उसके लिए कष्ट-सहन करते हुए त्याग और तपस्या की है। वे सभी उस समय के सच्चे देश-सेवक थे। उनका उदाहरण आज भी हम में जीवन, चेतना तथा स्फूर्ति का संचार कर सकता है और हमारे लिए आदर्श हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक द्वारा उनके आदर्श को सर्वसाधारण के सम्मुख उपस्थित कर उनकी स्मृति की रक्षा के लिए एक यत्न किया गया है। यदि सर्वसाधारण को इससे कुछ भी लाभ हुआ, तो इसके लिए की गई सब मेहनत सफल हो जायगी और भविष्य में ऐसा और साहित्य प्रस्तुत करने के लिए उत्साह मिल सकेगा।

हिन्दी में जीवनी-साहित्य का प्रायः अभाव है और युवकों के चरित्र निर्माण तथा राष्ट्र निर्माण के लिए जीवनी-साहित्य की नितान्त आवश्यकता है। वैसे भी जीवनी-साहित्य का अध्ययन अत्यंत कौतुक-

पूर्ण और शिक्षाप्रद है। ऐसे उपयोगी और आवश्यक साहित्य के अभाव की यदि यत्किंचित् भी पूर्ति इस पुस्तक से हो गई, तो लेखक और प्रकाशक सभी अपने को धन्य मानेंगे।

यह लिखने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि ये जीवन चरित्र नहीं, जीवन परिचय मात्र हैं और जीवन परिचय लिखने की शैली हिन्दी में अभी बिलकुल प्रारम्भिक अवस्था में है। इसलिए उनमें कुछ भूल-चूक होना संभव है। कांग्रेस के दृष्टिकोण को सामने रखकर विशुद्ध राष्ट्रीयभावना से ये जीवन-परिचय लिखे गये हैं। कांग्रेस के अधिवेशनों के क्रम से ही उनको इस पुस्तक में दिया गया है। दो या दो बार से अधिक सभापति होने वालों का परिचय वहीं दिया गया है, जहां वे अन्तिम बार सभापति हुए हैं। परिचय को प्रामाणिक बनाने की अधिक से अधिक सावधानी रखी गई है। फिर भी यदि कोई भूल-चूक रह गई होगी, तो उसका संशोधन दूसरे संस्करण में सहर्ष कर दिया जायगा।

इस पुस्तक के प्रस्तुत करने का जो सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ है, उसे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ। क्योंकि इस निमित्त से राष्ट्रीय महापुरुषों के प्रति अपने प्रेम, आदर, श्रद्धा और भक्ति की भेंट चढ़ाने का अवसर मुझे अनायास ही मिल गया है। मैं तो इस प्रकार कृतकृत्य हो गया हूँ। मुझको पूरा विश्वास है कि राष्ट्रीय महापुरुषों का यह पुण्य-स्मरण पाठकों के जीवन में राष्ट्रीयता का तेज, बल तथा ओज पैदा करेगा और उनके मार्ग का अनुगामी बन राष्ट्रमाता के चरणों में अपने आपको भेंट चढ़ा देने की दिव्य भावना उनमें भर देगा।

अत्यन्त अधिक कार्यव्यग्र रहते हुए भी राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादजी ने प्रार्थना स्वीकार कर इसकी प्रस्तावना लिख देने की कृपा की है। उसके लिए लेखक और प्रकाशक सभी उनके अत्यन्त अनुगृहीत और कृतज्ञ हैं।

'हिन्दुस्तान'-कार्यालय, देहली
राष्ट्रीय-सप्ताह
६ अप्रैल ३६

सत्यदेव विद्यालंकार

प्रस्तावना

कांग्रेस की स्वर्ण जयन्ती के सिलसिले में कांग्रेस सम्बन्धी कितनी ही छोटी-बड़ी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। डाक्टर पट्टाभि सीतारामय्या लिखित कांग्रेस का इतिहास न केवल अंग्रेजी में, किन्तु हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी, तेलगू, तामिल में भी ज्यों का त्यों प्रकाशित हुआ है और उसका संक्षिप्त संस्करण मलयालम तथा कनाड़ी में भी प्रकाशित किया गया है। इससे पहले कांग्रेस सम्बन्धी किसी और साहित्य का इतना अधिक प्रसार नहीं हुआ है। उसके साथ-साथ प्रायः सभी प्रांतीय कमेटियों और बहुत-सी जिला कमेटियों ने भी अपने-अपने इतिहास प्रकाशित किये हैं। इनके अतिरिक्त भी कांग्रेस के सम्बन्ध में बहुत-सा साहित्य अन्य संस्थाओं ने भी स्वतन्त्र रूप में प्रकाशित किया है। मुझको यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि देहली के सस्ता साहित्य मण्डल की ओर से प्रकाशित हुए कांग्रेस के इतिहास का हिन्दी का पहला संस्करण इतनी जल्दी बिक गया और अब लखनऊ कांग्रेस के अवसर पर उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है और उसके साथ "हमारे राष्ट्रपति" नाम से एक और सुन्दर पुस्तक भी उसी की ओर से प्रकाशित की जा रही है। इसमें कांग्रेस के सब सभापतियों का जीवन-परिचय दिया गया है।

शुरू-शुरू में कांग्रेस उग्र राष्ट्रीय संस्था नहीं थी। उसके वार्षिक अधिवेशनों का महत्व सार्वजनिक समारोह से अधिक नहीं होता था। इसलिए उसके सभापति भी अधिवेशन के लिए ही चुने जाते थे और उसके बाद उनपर सार्वजनिक कार्य की ऐसी कोई जिम्मेवारी

नहीं रहती थी। कांग्रेस का जैसा-जैसा विकास होता गया और जैसे-जैसे उसमें उग्र राष्ट्रीयता का समावेश होता गया उसके सभापतियों की जिम्मेवारी बढ़ती चली गई। यह तो निर्विवाद है कि सभी सभापति अपने समय के सच्चे जन-सेवक थे। देश को जगाने और काँग्रेस के संचालन का उन्होंने कुछ कम काम नहीं किया। अधिकतर उनकी देश सेवा के ही कारण उनको वह आदर दिया जाता था। पूरी कृतज्ञता और सम्मान के साथ हमें उन सबकी सेवा का स्मरण और उनकी स्मृति-रक्षा के लिए यत्न करना चाहिए। उनकी सेवा, त्याग और तपस्या को हम कभी भी भूल नहीं सकते। इसलिए इस पुस्तक के प्रकाशन के प्रयत्न को मैं प्रशंसनीय समझता हूँ। कांग्रेस के दृष्टिकोण को सामने रखकर जिस भावना से इसको लिखा गया है वह बिलकुल ठीक और सराहनीय है। सभापतियों का परिचय प्राप्त करने के साथ-साथ आशा है, कांग्रेस के कुछ छिपे अंशों पर भी इससे प्रकाश पड़ेगा।

हमारे राष्ट्रीय साहित्य में ऐसे जितने भी ग्रन्थ प्रकाशित हो सकें, उनकी देश को राष्ट्रीय जागृति के युग में विशेष आवश्यकता है। जीवनी साहित्य देश के युवक युवतियों के चरित्र निर्माण के लिए भी बहुत ज़रूरी हैं और ऐसा जीवनी साहित्य जैसा प्रस्तुत पुस्तक में दिया गया है, राष्ट्रीय चरित्र निर्माण के लिए विशेष उपयोगी और लाभदायक है। इसलिए मैं उसका स्वागत करता हूँ और उसको प्रस्तुत करने वालों के प्रयत्नों की सफलता चाहता हूँ।

गुरुदत्त भवन, लाहौर
३०-३-३६

राजेन्द्रप्रसाद

विषय-सूची

हमारे राष्ट्रपति

उमेशचन्द्र बनर्जी

[१८४४ – १९०६]

पहला अधिवेशन, बम्बई– १८८५

आठवां अधिवेशन, इलाहाबाद– १८९२

कांग्रेस के सर्वप्रथम सभापतित्व का गौरव जिन्हें प्राप्त हुआ वह उमेशचन्द्र बनर्जी अपने समय के एक विशिष्ट पुरुष थे। आपका व्यक्तित्व विलक्षण था। दिसम्बर १८४४ में खिदिरपुर (बंगाल) में आपका जन्म हुआ और २१ जुलाई १९०६ को इङ्गलैण्ड में देहावसान। स्वदेश विदेश का यह सम्मिश्रण न केवल आपके जन्म-मरण में बल्कि सारे जीवन क्रम में मिलता है।

जिस कुटुम्ब में उमेश बाबू का जन्म हुआ उसे वकीलों का घराना कहा जा सकता है। उमेश बाबू के न केवल पिता, किन्तु पितामह बाबू पीताम्बर बनर्जी भी एटर्नी थे। उमेश अपने पिता बाबू गिरीशचन्द्र बनर्जी के द्वितीय पुत्र थे। ओरियण्टल सेमिनरी और हिन्दू स्कूल में आपकी पढ़ाई हुई, लेकिन १७ वर्ष की उम्र होते-होते जब मैट्रिक की परीक्षा निकट आई तो पिता ने स्कूल छुड़ा दिया। स्कूल छुड़ाकर आप डब्लू० पी० डाउनिंग नामक एटर्नी के यहां क्लर्क रक्खे गये। वहां आप एक साल से अधिक

नहीं रहे और डब्लू० एफ० गैलेएडर्स के यहां चले गये, जहां दस्तावेज़ और दलीलें तैयार करने में काफ़ी प्रवीणता प्राप्त की। उसके बाद १८६४ में रुस्तमजी जमशेदजी जीजीभाई द्वारा स्थापित प्रतिस्पर्धा-परीक्षा पास की, जो क़ानूनी पढ़ाई के लिए विलायत जानेवाले हिन्दुस्तानियों को छात्रवृत्ति देने के लिए खोली गई थी। १८६७ में बैरिस्टरी पास करके, भारत लौटकर, १८६८ में कलकत्ता-हाईकोर्ट में एडवोकेट बन गये। हाईकोर्ट में वकालत करनेवाले आप ही एक हिन्दुस्तानी बैरिस्टर थे। शीघ्र ही दस हज़ार रुपये माहवार कमाने की आपकी इच्छा पूरी हुई और सब लोगों में आपका मान सम्मान बढ़ गया। सरकार ने आपको अपना स्थायी पैरोकार (स्टैंडिंग काउन्सल) बनाया और तीन बार हाईकोर्ट का जज बनने के लिए भी कहा, जो आपने स्वीकार नहीं किया।

यह वह समय था जब पश्चिम का मोह हमें चकाचौंध कर रहा था। उस समय बंगाल प्राचीन बातों को हीन समझकर यूरोपियन ढंग अपनाने के लिए पागल हो रहा था। उमेश बाबू ने भी धर्म और जाति के बन्धनों की परवा न की और उमेशचन्द्र से डब्लू० सी० बन गये। वेष भूषा, रहन सहन और आचार विचार में आप पूरे अंग्रेज़ थे। शेक हैण्ड से लेकर सिगार जलाने तक आप चप्पा चप्पा अंग्रेज़ मालूम पड़ते थे। इतना ही नहीं बल्कि इंग्लैण्ड को आपने अपना वैसा ही घर बना लिया था, जैसा कि हिन्दुस्तान आपका घर था। साल का आधा-आधा हिस्सा दोनों जगह बिताते थे और पैदा हिन्दुस्तान में हुए, तो मरने के लिए अपने आखिरी दिनों में आप इंग्लैण्ड जा बसे थे। आपके बच्चों का

पालन-पोषण इंग्लैण्ड में हुआ और कुछ ने तो विवाह सम्बन्ध भी यूरोपियन महिलाओं से ही किये। जो लोग ऐसे विचारों के नहीं थे, उनसे आपको कोई नफ़रत या चिढ़ न थी। समाज सुधार हुए बिना राजनैतिक उत्थान नहीं हो सकता, ऐसा भी आप नहीं मानते थे। आपका कहना था कि "हमारे यहां विधवायें अपना विवाह नहीं करतीं, लड़कियों का विवाह और देशों की बनिस्बत कम उम्र में होता है, हमारी पत्नियाँ और लड़कियाँ हमारे साथ यार दोस्तों के यहां घूमती नहीं फिरतीं, हम अपनी लड़कियों को आक्सफ़ोर्ड और कैम्ब्रिज नहीं भेजते, तो क्या इसलिए हम राजनैतिक सुधारों के नाक़ाबिल हैं ?"

१८८० में आप कलकत्ता यूनिवर्सिटी के 'फेलो' हुए और उसकी ओर से बंगाल कौंसिल के सदस्य चुने गये। कौंसिल में देश हित के लिए सदा प्रयत्न करते रहे। एकाधिक बार वहां पर आपको सफलता भी हुई। ब्रिटिश सरकार में आपका अटूट विश्वास था।

लगभग १८ वर्ष की ही आयु में आपका ध्यान देश की ओर आकर्षित हो गया था। उसी समय आपने "बंगाली" को जन्म दिया था, जो तब बंगाल का बहुत प्रभावशाली, ज़ोरदार और प्रमुख पत्र था। कांग्रेस के साथ, कांग्रेस के जन्म से अपनी मृत्यु तक आपका अटूट सम्बन्ध रहा। सारी उम्र आप कांग्रेस के ज़ोरदार समर्थक रहे और एक सरपरस्त की तरह कांग्रेस की गति विधि को सदा सूक्ष्मता से देखते रहे। १८८५ में जब बम्बई में सर्वप्रथम कांग्रेस हुई, तो सर्व सम्मति से आप ही उसके सभापति चुने गये; और पहले ही अधिवेशन में आपने कांग्रेस के देश की प्रातिनिधिक संस्था होने का दावा पेश

किया, जिसका आधार आपकी दृष्टि में विचारों, भावनाओं और आवश्यकताओं की एकता थी। दूसरा अधिवेशन कलकत्ता में हुआ और उसकी सफलता का मुख्य श्रेय आपको ही है। तीसरे अधिवेशन में सैनिक कालेजों के प्रस्ताव पर जब बहुत विरोध उठा तो सभापति बदरुद्दीन तैयबजी के अनुरोध पर आपने 'नेटिव आफ़ इण्डिया' शब्द की व्याख्या की और उसमें यूरेशियन, ईस्ट-इण्डियन तथा डोमीसाइल्ड यूरोपियन को भी शामिल बताया। अगली कांग्रेस के वक्त आप इंगलैण्ड थे, वहां हिन्दुस्तान के प्रति ब्रिटिश जनता की सहानुभूति पैदा करने का खूब यत्न किया। १८६२ (इलाहाबाद) में आपको फिर सभापति बनाकर आपकी सेवाओं का सम्मान किया गया। १६०२ में आप इंग्लैण्ड चले गये। वहां क्रॉयडन में शानदार मकान बनाया और प्रिवी-कौंसिल में वकालत करने लगे। कांग्रेस की ब्रिटिश कमिटी के द्वारा फिर भी आप निरन्तर कांग्रेस का काम करते रहे। आपकी इच्छा थी कि दादाभाई की तरह आप भी ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सदस्य बनें और पार्लमेण्ट के द्वारा देश-हित का काम करें। लेकिन जब वाल्टथम्स्टो के निर्वाचन क्षेत्र में आप इसके लिए तैयारी कर रहे थे, अचानक आपकी आँख में तकलीफ शुरू हुई। उससे आप की हालत बहुत नाजुक हो गई और २६ जुलाई १६०६ को आपका स्वर्गवास हो गया। गोल्डर की भूमि पर आपका अंतिम संस्कार किया गया। दादाभाई नौरोजी ने एक भावपूर्ण वक्तृता में आपको श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। उन्होंने कहा "वह हमारे बीच नहीं रहे, पर हम उन्हें या उन्होंने जो कुछ देश के लिए किया उसे कभी नहीं भूल सकते।"

बदरुद्दीन तैयबजी

[१८४४ १९०६]

तीसरा अधिवेशन, मदरास १८८७

बदरुद्दीन तैयबजी ८ अक्तूबर १८४४ को एक सम्मानित अरबी घराने में, जो बहुत समय से बम्बई आ बसा था, पैदा हुए थे। आपके पिता तैयबजी भाई मियाँ एक समृद्ध व्यापारी और सुरुचिवाले सुसंस्कृत व्यक्ति थे।

बचपन में उर्दू फारसी की शिक्षा आपने दादा मखरी के मदरसे में प्राप्त की। फिर एलफिस्टन इन्स्टीट्यूशन (अब कालेज) में भरती हुए, पर वहाँ ज्यादा नहीं रहे। आँख के इलाज के लिए पिता ने आपको फ्रांस भेज दिया, वहाँ से इङ्गलैण्ड गये और लन्दन के न्यूबरी हाईपार्क कालेज में भरती हुए। वहाँ लन्दन यूनिवर्सिटी से मैट्रिक पास किया, पर तन्दुरुस्ती खराब होने के कारण उसके बाद शीघ्र ही हिन्दुस्तान लौट आये। एक साल यहाँ रहकर १८६५ में फिर इङ्गलैण्ड गये और अप्रैल १८६७ में बैरिस्टरी पास की। नवम्बर १८६७ में भारत लौटे और दिसम्बर में बम्बई हाईकोर्ट के एडवोकेट बन गये। यहीं आपके भाई कमरुद्दीन तैयबजी एटर्नी थे, जिससे आपको

बड़ी सुविधा रही। अपनी योग्यता से, खासकर जिरह में, आपने बहुत ख्याति प्राप्त की।

बैरिस्टरी शुरू करने के बाद पहले दस वर्ष तो आप अपने धन्धे को बढ़ाने में लगे रहे और खूब यश व धन अर्जन किया। दूसरे दस वर्ष नयी ज़िम्मेदारियों के साथ शुरू हुए। मैंचेस्टर से आनेवाले माल (विलायती कपड़े) पर से आयात-कर उठाने के विरुद्ध हुए आन्दोलन में बम्बई के अन्य प्रमुख नागरिकों के साथ आप भी सम्मिलित हुए। इस सिलसिले में आपने ऐसा सुन्दर भाषण दिया, कि उसकी चारों ओर प्रशंसा हुई।

१८८२ में बम्बई के तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स फ़र्ग्युसन ने आपको बम्बई-कौंसिल का अतिरिक्त-सदस्य नियुक्त किया। वहां स्थानिक संस्थाओं सम्बन्धी (बॉम्बे लोकल बोर्ड्स एण्ड म्यूनिसिपैलि-टीज़) बिलों की बहस में आपने प्रमुख भाग लिया। बारीकी की दलीलों, विचारपूर्ण निर्णय, स्पष्ट विवेचन और प्रभावकारी वक्तृत्व में आपका सिक्का जम गया—यहां तक कि कौंसिल के अध्यक्ष की हैसियत से सर जेम्स ने आपके भाषणों की प्रशंसा करते हुए कहा कि "ब्रिटिश कामन सभा में वे होते तो वहां भी उन्हें बड़े ध्यान के साथ सुना जाता।" बम्बई के श्रोताओं में आप इतने लोकप्रिय थे कि हरेक सभा में लोग आपका भाषण सुनने के लिए उत्सुक रहते थे। उन दिनों के आपके कई भाषण तो स्मरणीय हैं।

आपकी सार्वजनिक सेवाओं से प्रसन्न होकर १८८७ में देश ने अपनी राष्ट्रीय महासभा के तीसरे अधिवेशन (मदरास) का आपको सभा-

पति बनाया। उस समय आपने जो भाषण दिया, उसने आपके वक्तृत्व की धाक बैठा दी। बम्बई में आपके कहने पर इस काम के लिए एक समिति बनाई गई, कि कॉंग्रेस में विचारार्थ जो बहुत से प्रस्ताव आवें उनपर विचार करके कॉंग्रेस का कार्यक्रम (अजेण्डा) निश्चित किया जाया करे। इस समिति को बाद में बननेवाली विषय निर्वाचन समिति का पूर्व रूप कहना चाहिए। फिर बम्बई में १६०४ में होनेवाले बीसवें अधिवेशन तक आप कॉंग्रेस सम्बन्धी किसी हलचल में नहीं दीखते, क्योंकि इस बीच आप बम्बई हाईकोर्ट के जज हो गये थे, पर रहे उन दिनों में भी आप सदा कॉंग्रेस के हामी। १८८७ में जब आप कॉंग्रेस के सभापति हुए तब बम्बई के अन्जुमन ए-इस्लाम के भी सदस्य थे और कॉंग्रेस के सिद्धान्तों व राजनीति को अङ्गीकार करके भी आपने उसे छोड़ नहीं दिया। इससे आपने यह सिद्ध कर दिया कि मुसलमानों के कॉंग्रेस में शामिल होने में कोई बाधा नहीं है। १६०३ में अ० भा० मुसलिम शिक्षा परिषद् के सभापति की हैसियत से तो आपने साफ ही कह दिया था, कि "ऐसी किसी संस्था की कार्रवाई में मैं भाग नहीं ले सकता जो किसी भी तरह कांग्रेस के विरुद्ध हो, या उससे विरुद्ध प्रतीत होती।" आपका मत था कि सरकार भी चाहे खुलेआम कॉंग्रेस से अपनी सहानुभूति न दरसाये, पर दिल में वस्तुतः उसके और उसके सदस्यों के लिए बड़ा ऊंचा ख्याल रखती है और समय समय उसके प्रस्तावों पर अमल भी करती रहती है। लेकिन थे आप सोलह आना नरम विचारों के और कहा करते थे कि हमें अपने भाषणों में बहुत सतर्क रहना चाहिए। एकबार तो आपने यहांतक

कह डाला था कि "हमारे देशवासियों ने उच्छृङ्खलता और स्वतन्त्रता के भेद को पूरी तरह नहीं समझा है और यह वे नहीं जानते कि स्वतन्त्रता में जहाँ सुविधायें होती हैं वहाँ उनसे ज़िम्मेदारियाँ भी कुछ कम नहीं आतीं।"

भारतीय मुसलमानों में समाज सुधार-आन्दोलन के आप अग्रगी थे। इस बात की आपने शिकायत की थी कि मुसलमान ही नहीं बल्कि हिन्दू-मुसलमान सभी हिन्दुस्तानी समाज-सुधार से राजनीति पर ज्यादा ध्यान देते हैं। एकबार आपने कहा था, "मुझे भय है कि तरुण भारत ने राजनीति पर भी बहुत ज्यादा ध्यान दिया है, शिक्षा और समाज सुधार पर बहुत कम। मैं तो उन लोगों में से हूँ जो यह समझते हैं कि किसी एक ही दिशा में प्रयत्न करने से हमारी उन्नति और प्रगति नहीं होगी, बल्कि विभिन्न दिशाओं में प्रयत्न करना होगा। इसलिए राजनैतिक स्थिति के साथ-साथ हमें उतना ही अधिक अपनी सामाजिक और शिक्षा-सम्बन्धी स्थिति भी सुधारते जाना चाहिए।" स्वयं अपने कुटुम्ब से आपने समाज-सुधार का आदर्श उपस्थित किया था। वह यह कि अपनी लड़कियों को पढ़ने के लिए इङ्गलैण्ड भेजा। पर, मुसलमानों के लिए सर्वोत्तम काम तो आपने बम्बई के अन्जुमन-ए-इस्लाम के द्वारा किया, जिसके आप पहले तो मन्त्री और फिर सभापति रहे। मुसलमानों में पश्चिमी शिक्षा फैलाने में अन्जुमन ने जो काम किया उसकी आज कल्पना भी नहीं की जा सकती; और यह सन्देह-रहित है कि उसका प्रधान और अधिकांश श्रेय आपको ही है।

१८६५ में सरकार ने आपको बम्बई-हाईकोर्ट का जज बनाया

और इस काम को भी आपने बड़ी आज़ादी और अच्छाई के साथ सम्पादन किया। लोकमान्य तिलक के पहले मुकदमे में उन्हें जमानत पर आपने ही छोड़ा था। भाषा के प्रवाह तथा ज़ोर के लिए आपके फ़ैसले मशहूर थे, जो बहुत विचार और अध्ययन के परिणाम होते थे।

१९०३ में जब आप अखिल-भारतीय मुसलिम-शिक्षा-परिषद् के सभापति हुए थे तो आपने भाषण में परदा-प्रथा के विरुद्ध भी आवाज़ उठाई थी। १९०६ में लन्दन में अलीगढ़-कालेज का उल्लेख करते हुए, जिसके कि आप शुभचिन्तक और समर्थक थे, आपने स्त्री-शिक्षा की ओर उसका ध्यान दिलाया और स्त्रियों के बारे में उत्तरी मुसलमानों को अपने दक्षिणी भाइयों से सबक़ लेने की सलाह दी। शिक्षा-प्रेम आपका धर्म-प्रेम से भी बड़ा था। लन्दन में ईस्ट-इण्डिया असोसियेशन के सम्मुख भाषण करते हुए आपने कहा था कि "मुसलमानों में यह बड़ी बुराई है कि जब कोई मालदार मरता है और उसका कोई नज़दीकी रिश्तेदार नहीं होता तो वह अपनी सम्पत्ति फ़क़ीरों को खिलाने, पुराने ढङ्ग के तालाब बनाने, मक्का की तीर्थ-यात्रा करवाने या कुरान के पन्ने या ऐसी ही चीजें अमुक बार पढ़वाने के लिए वसीयत कर जाता है, जिनसे देश का कोई भला नहीं होता। नई सन्तति जब बूढ़ी होगी, तो बजाय इन बातों के शिक्षा के लिए अपना धन ख़र्च करेगी।"

काँग्रेस के १९०४ के बीसवें अधिवेशन में आपने सरकारी नौकरियों में भारतीयों की नियुक्ति सम्बन्धी प्रस्ताव की बहस में भाग लिया। १९०६ में आपको आंख की पुरानी शिकायत फिर हुई, जिसका

इलाज कराने के लिए इङ्गलैण्ड गये। वहाँ कुछ ही महीनों में बहुत तेज़ी से आपकी तन्दुरुस्ती सुधरी और वहां आपने सभाओं में सोत्साह भाग लेना शुरू कर दिया। परिणाम यह हुआ कि हृदय में भी खराबी पैदा हो गई, जिसने उग्र होकर १६ अगस्त १६०६ को आपको इस संसार से ही उठा लिया। काँग्रेस की ब्रिटिश कमिटी ने, दादाभाई नौरोजी के प्रस्ताव और गोपाल कृष्ण गोखले के समर्थन पर आपके निधन पर शोक-प्रस्ताव पास किया। २२ अगस्त को लन्दन-स्थित तुर्की राजदूत की अध्यक्षता में आपकी स्मृति में सभा हुई, जिसमें भाषण करते हुए मि० यूसुफअली आई० सी० एस० ने ठीक ही कहा था कि "कोई और मुसलमान हिन्दुओं का इतना प्रीतिभाजन नहीं हुआ जितने कि बदरुद्दीन तैयबजी हुए हैं।"

जार्ज यूल

चौथा अधिवेशन

इलाहाबाद—१८८८

जार्ज यूल पहले अंग्रेज थे, जिनको भारत की महान् राष्ट्रीय संस्था के सभापति के सर्वोच्च सम्मान के आसन पर बिठाया गया था। उस समय सरकार की कांग्रेस के साथ सहानुभूति नहीं रही थी और सरकारी अधिकारी कांग्रेस को संदेह की दृष्टि से देखने लग गये थे। संयुक्तप्रान्त के लेफ्टिनैण्ट-गवर्नर आकलैण्ड कॉलविन कांग्रेस से सहानुभूति रखने को आग से खेलने की उपमा दे चुके थे। ऐसे समय जार्ज यूल का अंग्रेज़ होकर सबसे पहले कांग्रेस का सभापतित्व स्वीकार करना असाधारण बात थी।

जार्ज यूल कलकत्ते में व्यापार करनेवाली एक प्रसिद्ध अंग्रेज़ी फ़र्म के प्रमुख साझीदार थे। शुरू से ही भारतीय विषयों में आप बहुत रुचि रखते थे। आप भारत और इंग्लैण्ड दोनों देशों में सरकारी अधिकारियों के सामने भारतीय प्रश्नों को उपस्थित करते रहते थे। आपका कहना था कि भारतवर्ष का शासन उस योग्यता और उत्तमता

से नहीं होता, जिसमें होना चाहिए। आपने अंग्रेज़ जनता को यह समझाने का बहुत प्रयत्न किया कि भारतीयों और उनके हितों की उपेक्षा से काम नहीं चलेगा

भारत के सम्बन्ध में लगातार प्रचार और सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको इलाहाबाद में १८८८ में कांग्रेस के चौथे अधिवेशन का सभापति बनाकर सम्मानित किया गया। वस्तुतः भारत के साथ आपकी हार्दिक सहानुभूति थी। जिस वर्ष इलाहाबाद में आप सभापति हुए थे, वह वर्ष कांग्रेस में विशेष महत्व रखता है। सरकार ने इसी वर्ष से कांग्रेस के प्रति विरोधी भाव प्रदर्शित करना प्रारम्भ किया था। उसने पण्डाल के लिए स्थान तक देने से इन्कार कर दिया था। मुसलमानों को कांग्रेस से अलग रखने की नीति का श्रीगणेश भी इसी वर्ष में हुआ। और भी अनेक रुकावटें डाली गई थीं। लेकिन जार्ज यूल साहब ने सरकार की ओर से होनेवाली इन सब बाधाओं की उपेक्षा की और कांग्रेस का वह अधिवेशन सफलता से समाप्त हुआ।

इस वर्ष के बाद भी आप अन्त तक कांग्रेस के कार्यों में रुचि रखते रहे। १८८६ में ही आपने इंग्लैण्ड में कांग्रेस शाखा को कार्य संचा लन में प्रमुखता से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया था। १८६० और १८६१ के अधिवेशनों में आपका नामोलेख कर आपके सुन्दर कार्यों के लिए आपको धन्यवाद दिया गया था। अभी आप और भी भारत की सेवा करते, लेकिन १८६२ में ही आपका असामयिक देहावसान हो गया। इस नश्वर शरीर को छोड़ कर स्वर्ग सिधारनेवाले कांग्रेस के सभापतियों में भी आपका पहला स्थान है।

फ़िरोज़शाह मेहता

[१८४५—१९१५]

छठा अधिवेशन, कलकत्ता—१८९०

सर फ़िरोज़शाह मेहता उन व्यक्तियों में से हैं जिनका हाथ कांग्रेस की स्थापना में था और जिनका कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम के निर्माण में बहुत प्रमुख भाग रहा है। आप बहुत मेधावी, ऊँचे दर्जे के वक्ता और खूब कमाने व खुले हाथों खर्च करने वाले शाही आदमी थे।

४ अगस्त १८४५ को बम्बई के एक पारसी परिवार में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता एक बड़े भारी व्यापारी थे। बुद्धि आपकी बचपन से ही बड़ी कुशाग्र थी। १८६१ में मैट्रिक किया, १८६४ में बी० ए० हुए, और छः मास बाद ही एम० ए० भी हो गये। फिर बैरिस्टरी के लिए इङ्गलैण्ड गये और तीन साल बाद बैरिस्टर होकर बम्बई लौटे। थोड़े ही दिनों में आपकी बैरिस्टरी चमक उठी। फ़ौजदारी के मामलों में आप उच्च श्रेणी के बैरिस्टर गिने जाने लगे और आमदनी इतनी बढ़ गई, जितनी कि बम्बई तो क्या, कहते हैं कि, हिन्दुस्तान भर में और किसी वकील बैरिस्टर की नहीं थी।

इंग्लैण्ड में जब पढ़ते थे तब दादाभाई नौरोजी का आप पर प्रभाव पड़ा, जिससे राजनैतिक कार्यों में रुचि हुई। वहीं उमेशचन्द्र बनर्जी और मनमोहन घोष से मित्रता हुई, जिनके उद्योग में लण्डन लिटेररी सोसायटी स्थापित हुई थी, जो बाद में ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन में परिणत हो गई। आपने भी उसमें दिलचस्पी ली और उसमें भारतीय शिक्षा पर एक निबन्ध पढ़ा, जिसकी बहुत प्रशंसा हुई।

सार्वजनिक कार्यों में रुचि तो इङ्गलैण्ड में ही पैदा हो गई थी, किन्तु सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश १८६६ से हुआ, जब कि दादाभाई नौरोजी को भेंट किये जाने के लिए २०,०००) संग्रह किये गये थे। उनके संग्रह करने में आपने विशेष भाग लिया था। १८७२ में आप बम्बई-कारपोरेशन के सदस्य हुए और ३५ बरस तक बराबर होते रहे। तीन बार उसके अध्यक्ष भी हुए।

तैलंग और तैयबजी के साथ मिलकर आपने बाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन की स्थापना की। १८८६ में बम्बई-कौंसिल के सदस्य बनाये गये। १८९२ में जनता द्वारा चुने जाकर उसमें गये और बाद में भी कई बार चुने गये। कौंसिल में प्रकट किये जानेवाले आपके विचार निर्भीक, प्रौढ़ और काम की बातों से पूर्ण होते थे। लैण्ड रेवेन्यू कोड एमेण्डमेण्ट बिल का वहां आपने कसकर विरोध किया था और जब उसका कोई परिणाम न हुआ तो गैर सरकारी सदस्यों के साथ कौंसिल से 'वाक-आउट' कर दिया था। १८९४ में बड़ी (भारतीय) कौंसिल के सदस्य चुने गये और तीन वर्ष तक वहां रहे।

बाम्बे-यूनिवरसिटी की सिनेट और सिण्डिकेट के भी आप सदस्य थे। यूनिवरसिटी-बिल का आपने तीव्र विरोध किया था। कई कमीशनों के सामने गवाही दी और कई शिष्टमण्डलों व कमिटियों के सदस्य हुए।

कांग्रेस के साथ आपका सम्पर्क उसके प्रारम्भ से ही रहा है। उसके संस्थापकों में से एक आप भी हैं। १८८५ में बम्बई में कांग्रेस का जो सर्वप्रथम अधिवेशन हुआ, उसके आप स्वागताध्यक्ष थे। बम्बई में १८८९ में होनेवाले पांचवें और १९०४ में होनेवाले बीसवें अधिवेशनों के भी आप ही स्वागताध्यक्ष थे। आर्थिक कठिनाई उत्पन्न होने पर आप कांग्रेस की आर्थिक सहायता बराबर करते रहते थे। कांग्रेस का कट्टर समर्थक 'बॉम्बे क्रानिकल' पत्र आपका ही निकाला हुआ है, जिसका आज भी राष्ट्रीय जागृति में कुछ कम भाग नहीं है। १८९० में कलकत्ता में जो कांग्रेस का छटा अधिवेशन हुआ, उसका राष्ट्र ने आपको सभापति बनाकर आपकी सेवाओं का सम्मान किया। लाहौर में १९०९ में होनेवाले चौबीसवें अधिवेशन के भी सभापति आप ही चुने गये थे, परन्तु ठीक छः दिन पहले आपने अचानक इनकार कर दिया और तब पं० मदनमोहन मालवीय को वह सम्मान दिया गया। कहते हैं, सूरत की कांग्रेस (१९०७) में आपने नरमदल की ओर से कांग्रेस के कार्य में कुछ दिलचस्पी ली थी, उसके बाद से फिर आप दृष्टि से बिलकुल ओझल ही हो गये। कुछ लोग सूरत कांग्रेस के भंग होने का दोष आपके ही सिर मढ़ते हैं और यह सचमुच खेद की बात है कि वहां नरम गरम दलों के बीच जो खाई खुदी हुई थी वह

आपके जीवन-काल में नहीं भरी जा सकी। लखनऊ में १९१६ की कांग्रेस में दोनों दलों में मेल हुआ, पर आप उससे पहले ५ नवम्बर को ही स्वर्ग सिधार गये थे!

निस्सन्देह आप उच्च कोटि के व्यक्ति थे और जनता व सरकार दोनों ही में आपने प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। जहां एक ओर आप कांग्रेस के सभापति-पद तक पहुंचे थे, वहां दूसरी ओर सरकार ने भी आपको सर, सी० आई० ई० और के० सी० आई० ई० की उपाधियों से विभूषित किया था।

आनन्द चार्लू

सातवां अधिवेशन

नागपुर—१८९१

"हमने जिनको अंग्रेजी पढना लिखना सिखाया है, वे हमारे प्रति अकृतज्ञता के भाव प्रकट करने लगे है और भारत मे बृटिश शासन की जड़ो पर ही उन्होंने कुठाराघात करना शुरू कर दिया है। जिनको भूतकाल मे कभी बोलने लिखने या करने की कुछ भी स्वतन्त्रता नहीं थी, अब वे ब्रिटिश प्रजा होकर अपने अधिकारो के बारे मे बहुत बढ़ चढ़कर बाते करने लगे है। ऐसा करनेवालो मे एक सज्जन आनन्द चार्लू है, जो कि कौंसिल के सभासद है।" ये शब्द थे, जो पार्लमेण्ट मे उस समय के भारत मन्त्री जार्ज हैमिल्टन ने दिसम्बर १८९८ मे कहे थे। आनन्द चार्लू वस्तुतः निर्भीक, साहसी, स्पष्टवादी, खरे देशभक्त और पक्के राष्ट्रवादी थे। सरकार का विरोध और उसकी कड़ी और तीखी आलोचना करनेवालो मे पहले थे। कांग्रेस का जन्म होने से भी पहले आपने सार्वजनिक क्षेत्र मे काम शुरू कर दिया था, उसकी स्थापना मे आपका प्रमुख हाथ था। आयु पर्यन्त उसके अधिवेशनो मे सम्मिलित हो उसके सब कार्य्यों मे विशेष उत्साह के साथ आप भाग लेते रहे थे।

आपका जन्म एक सम्मानित वैष्णव घर में चिंगलपेट ज़िले के पनाप्पक्कम गांव में १८४३ में हुआ था। आपके पिता पहले एक दफ्तर में नौकर थे, बाद में सरिश्तेदार हो गये। पिता का शीघ्र देहान्त होजाने से शिक्षण का सब भार माता पर पड़ा। शिक्षा के लिए ही माता के साथ मदरास आने पर पिता के एक मित्र रंगनाथम् शास्त्री से आपका परिचय हो गया और उनकी सहायता से प्रेसिडेंसी कालेज में आपने बी० ए० पास किया। नवद्वीप के पण्डितों ने आपको संस्कृत की योग्यता के लिए 'विद्याविनोद' और 'विशारद' की पदवियाँ प्रदान की थीं। तेलगू के भी आप विद्वान् थे। पचायप्पा-कालेज में प्रोफेसर रहते हुए १८६६ में वकालत पास की और हाईकोर्ट में श्री वेंकटपतिराव के शागिर्द होकर वकालत शुरू की। हाज़िरजवाबी, धाराप्रवाही भाषण, प्रत्युत्पन्न-मति और जिरह में कुशाग्र-बुद्धि होने से वकालत को चमकने में अधिक समय नहीं लगा। देश-सेवा के कार्य्यों में आपने उसी समय से दिलचस्पी लेनी शुरू कर दी थी। १८७४ में आपने म्युनिसिपल बिल का विरोध इस योग्यता के साथ किया कि सारे प्रान्त में आपका नाम हो गया। १८७८ के अन्त में आपके उद्योग से 'मदरास नेटिव असोसियेशन' कायम हुआ, जिसके द्वारा दो वर्षों तक आन्दोलन का कार्य आपने बहुत जोरों के साथ किया। मदरास के प्रमुख दैनिक 'हिन्दू' के संचालन में आपने श्री वीर राघवाचार्य का पूरा हाथ बटाया। मदरास की प्रसिद्ध महाजन-सभा की आपने स्थापना की और कई वर्षों तक उसके मन्त्री रहे। कांग्रेस की स्थापना से पहले मदरास में दो सम्मेलनों का आयोजन करके आपने व्यवस्थापिका सभाओं की स्थापना के लिए आन्दोलन

किया। अगस्त १८८४ में आप मदरास म्यूनिसिपैलिटी के सभासद चुने गये और बीस वर्ष तक उसके सभासद रहे। १८९५ में इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभासद चुने गये और १९०३ तक बराबर चुने जाते रहे। वहां आपके भाषण बहुत स्पष्ट, निर्भीक और जोरदार होते थे। फरवरी १८९६ में आपने कहा था कि सरकार लंकाशायर वालों की चिल्लाहट से दब रही है और अपने कर्तव्य की उपेक्षा कर रही है। १८९८ में ताजीरात हिन्द में राजद्रोह की धारा शामिल करने का विरोध करके देशवासियों के भाषण और लेखन की स्वतन्त्रता के लिए बड़ी दृढ़ता के साथ आपने आवाज उठाई थी।

१८८५ की पहली कांग्रेस में भारत-मन्त्री की कौंसिल को तोड़ देने का आपने प्रस्ताव पेश किया। १८९१ में पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट पर कांग्रेस की ओर से असन्तोष-सूचक वक्तव्य लिखने को बनाई गई कमिटी का आपको सभासद चुना गया था। उसी वर्ष की कांग्रेस में कौंसिलों सम्बन्धी बिल की स्वीकृत के प्रस्ताव पर बोलते हुए जनता को प्रतिनिधि चुनने का अधिकार न दिये जाने पर आपने असन्तोष प्रकट किया था। १८९६ में एजूकेशन-सर्विस की योजना को पुनः संगठित करके ऊंचे पदों से भारतीयों को अलग करने का आपने विरोध किया था। १९०६ में स्वदेशी के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए आपने श्रीमानों से अपील की थी कि वे अपना संगठन बनाकर स्वदेशी व्यवसाय की इसलिए आर्थिक सहायता किया करें कि सरकार से वैसी सहायता की आशा नहीं की जा सकती। १८९१ में नागपुर में हुई कांग्रेस के आप सभापति चुने गये। आपका भाषण बहुत महत्वपूर्ण था। उसमें

इंगलेण्ड में आन्दोलन और लन्दन में कांग्रेस करने पर जोर दिया गया था। इसी भाषण में आपने भारतमंत्री की कौंसिल को "भारत से पेंशन पानेवाले शासकों का कुलीनतन्त्र" कहा था। मदुरा में हुई मदरास-प्रान्तिक-परिषद् के आप सभापति चुने गये थे।

१८८७ में आपको 'रावबहादुर' और १८६७ में 'सी० आई० ई०' के खिताब दिये गये थे।

तेलगू में आपने कविता और नाटक लिखे हैं। नाट्यकला को सुधारने और उत्तेजन देने के लिए आपने विद्वान-मनोरंजिनी-सभा की स्थापना की थी।

रानडे, रघुनाथराव और भण्डारकर आदि के आप समकक्ष सुधारक थे। यूरोप-यात्रा का निरन्तर समर्थन करते रहते थे। विवाह-कानून और उसके सुधार पर आपने १८८६ में एक पुस्तक लिखी थी। शास्त्रों की अपेक्षा आप सद-सद्-विवेक-बुद्धि, समय की प्रगति और अपनी आवश्यकता को ही सब व्यवहार का आधार बनाने के पक्षपाती थे। मठों के सुधार पर आप बहुत जोर देते थे। व्यवहार में कट्टरपंथी न होते हुए भी धार्मिक-भावना-प्रधान व्यक्ति थे।

दक्षिण-भारत के राजनैतिक गगन-मंडल में। चौथाई सदी तक अपनी दिव्य ज्योति के साथ सदा चमकते रहनेवाला यह नक्षत्र १६०८ की २८ नवम्बर को अस्त हो गया।
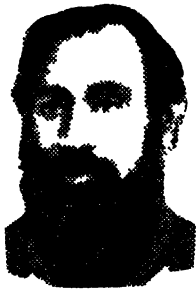
अलफ्रेड वेब

दसवां अधिवेशन

मद्रास—१८९४

पार्लमेण्ट के जिन अंग्रेज़ सदस्यों ने भारत के शासन-सुधार-आन्दोलन में भाग लिया, उनमें अलफ्रेड वेब का भी एक स्थान है। आप आयर्लैंण्ड-निवासी थे। आयर्लैंण्ड पर भी भारत की तरह इंग्लैण्ड का शासन था और आयर्लैंण्ड सदियों से उसके शासन से मुक्त होने के लिए जीतोड़ परिश्रम कर रहा था। इस दृष्टि से भारत और आयर्लैंण्ड की समस्यायें एक थीं। इसलिए स्वभावतः आप भारत की स्वाधीनता और उन्नति के मामलों में रुचि रखते थे।

कांग्रेस के प्रारम्भिक काल में दादाभाई नौरोजी आदि नेताओं का यह विश्वास था कि ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश सरकार की न्याय-बुद्धि को अपील करने से भारत का कल्याण हो सकता है। इसलिए उन दिनों अधिकतर आन्दोलन इंग्लैण्ड में होता था, पार्लमेण्ट के सदस्यों को भारतीय पक्ष का समर्थन करने के लिए प्रेरित किया जाता और उनकी सहानुभूति प्राप्त करने की कोशिश की जाती थी। अलफ्रेड

वेब भी भारतीय मामलों में दिलचस्पी लेते थे, इसलिए १८९४ में आपको कांग्रेस का सभापतित्व करने के लिए निमन्त्रित किया गया। इसके बाद आयरिश मामलों में ही ज्यादा उलझे रहने से आप भारतीय मामलों में सक्रिय दिलचस्पी न ले सके, फिर भी यथासम्भव सहयोग देते रहे। सबसे पहली आल इण्डिया कांग्रेस कमिटी सन् १९०० में बनी थी, उसके आप सदस्य थे। लण्डन की कांग्रेस-शाखा में भी आप अपनी आयु के अन्तिम दिन तक दिलचस्पी लेते रहे थे। १९०८ में आपका देहावसान हुआ।

आपके जीवन के सम्बन्ध में बहुत प्रयत्न करने पर भी कुछ पता नहीं लगाया जा सका। कांग्रेस के सम्बन्ध में उपलब्ध साहित्य में कहीं आपका उल्लेख नहीं मिलता। आज से ३० साल पहले लिखी गई पुस्तकों में भी आपका कुछ परिचय नहीं मिला। सम्भवतः इसीसे डा० पट्टाभि सीतारामैया भी कांग्रेस के इतिहास में कहीं एक बार भी आपका उल्लेख नहीं कर सके हैं। यह तो मानना ही होगा कि आप सच्चे भारत-हितैषी थे। भारत के अभ्युदय की कामना और भावना आपके हृदय में पूरी तरह समाई हुई थी।

रहीमतुल्ला मुहम्मद सयानी

[१८८४—१६०२]

बारहवां अधिवेशन, कलकत्ता—१८९६

रहीमतुल्ला मुहम्मद सयानी उन थोड़े-से लोगों में से थे, जिनके व्यक्तित्व, अध्यवसाय, उदारता, विद्वत्ता और जाति व देश की सेवाओं के कारण न केवल सब बातों में पिछड़ी हुई खोजा जाति मे ही क्रान्ति हो गई, किन्तु राष्ट्र की सेवा भी कुछ कम नहीं हुई।

आपका जन्म ५ अप्रैल १८४७ को बम्बई में हुआ था। आपके दादा कच्छ से बम्बई आये थे। आपने जब बम्बई में पढ़ाई शुरू की तब खोजा मुसलमानों की शिक्षा की ओर बिलकुल प्रवृत्ति न थी। शिक्षा से उन्हें यहां तक घृणा थी कि एकबार जब आप स्कूल जा रहे थे, कुछ खोजा 'नास्तिक नास्तिक' कहकर आपके पीछे दौड़े, और आप पर कुछ पत्थर भी फेंके। इसी तरह एकबार चश्मा लगाने पर आपको तङ्ग किया गया था। एलफ़िन्स्टन-स्कूल से मैट्रिक पास करके आप उसी कालेज में दाखिल हो गये। १८६६ में जब आपने एम० ए० की परीक्षा दी, तब ही नहीं, किन्तु उसके पचीस साल बाद तक भी कोई मुसलमान खोजा एम० ए० नहीं बना था। इससे आपका विद्या-प्रेम प्रकट

होता है। १८७० में कानून की परीक्षा देकर वकालत करने लगे। १८७८ में सालिसिटर हो गये। आप वकालत के साथ-साथ कई प्रसिद्ध कम्पनियों में सालिसिटर का काम भी करते रहे। बम्बई के नागरिक-जीवन में आप खूब दिलचस्पी लेते थे। १८७६ में आप बम्बई-कारपोरेशन के सदस्य चुने गये। तबसे आयु-पर्यन्त आप उसके सदस्य बने रहे। बम्बई की जनता के हित-कार्यों में आप काफ़ी दिलचस्पी लेते थे। १८८८ में आप कारपोरेशन के अध्यक्ष चुने गये। १८८८में ही आप बम्बई-कौंसिल के सदस्य भी नियुक्त हुए। कौंसिल और कारपोरेशन के कार्यों के अलावा बम्बई के विभिन्न सार्वजनिक क्षेत्रों में भी बहुत। उत्साह से काम करने के कारण आपकी ख्याति बहुत बढ़ गई थी।

भारतीय राष्ट्र की दृष्टि से आपकी सबसे बड़ी सेवा यह थी कि आप कांग्रेस के हमेशा समर्थक रहे। उन दिनों में मुसलमानों को कांग्रेस से अलग रखने का प्रयत्न बहुत ज़ोरों के साथ किया जा रहा था। आपने उस प्रयत्न का तीव्र विरोध किया। इन सब सेवाओं के उपलक्ष्य में १८९६ में कलकत्ता में आप कांग्रेस के सभापति बनाये गये। इस ऊँचे पद से आपने मुसलमानों से कांग्रेस में रहने की ज़बरदस्त अपील की।

आप सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य भी नियत किये गये। कौंसिल में दिये गये आपके भाषण बहुत विद्वत्तापूर्ण होते थे।

आपकी अन्य सेवाओं में सबसे बड़ी सेवा खोजा जाति की सेवा है। खोजा जाति में शिक्षा, व्यापार, व्यवसाय, सुधार की दिशाओं में आपके निरन्तर सक्रिय प्रयत्नों से क्रान्ति हो गई।

४ जून १९०२ को इस महान् राष्ट्रीय नेता की मृत्यु हो गई।

चितूर शंकरन् नायर

[१८५७—१९३४]

तेरहवां अधिवेशन, अमरावती—१८९७

सन् १८५७ में जिस वर्ष उत्तर भारत में स्वतंत्रता की पहली लड़ाई लड़ी जा रही थी, उसी वर्ष दक्षिण भारत में चितूर शंकरन् नायर का जन्म हुआ था। आपके पिता मदरास प्रान्त की वानिक्कर नामक तहसील में तहसीलदार थे। आश्चर्य की बात है कि उनको अंग्रेज़ी का ज्ञान बिलकुल न था, लेकिन हिन्दी का अच्छा ज्ञान था। शंकरन् नायर ने वानिक्कर में अपनी प्रारंभिक शिक्षा ग्रहण की। कुछ समय बाद पिता की कनानूर और कालिकट में क्रमशः बदली होने से शंकरन् नायर भी साथ-साथ गये और वहां के स्कूलों में पढ़ते रहे। एफ० ए० पास करके मदरास के प्रेसिडेंसी कालेज में चले गये, जहां से १८७९ में बी० ए० पास किया। कुछ समय बाद क़ानून की परीक्षा अत्यन्त योग्यता के साथ पास की। समस्त प्रान्त में पहले रहने के कारण आपकी योग्यता की धाक खूब जम गई। १८८० से आप मदरास हाई कोर्ट में वकालत करने लगे। लेकिन कुछ ही महीनों बाद आपकी योग्यता से प्रभावित होकर सरकार ने आपको पोलाई का

मुन्सिफ़ बना दिया। वहां आप इतने लोकप्रिय हो गये कि जब आपकी बदली हुई, तो लोगों ने देवालयों में आपके वापस आने की प्रार्थना की।

कुछ समय मुन्सिफ़ी करने के बाद आपने फिर वकालत शुरु कर दी और क़ानून की बारीकियों को समझने और योग्यता पूर्वक बहस करने के कारण आप पर चांदी की वर्षा होने लगी। हाईकोर्ट के जज सर चार्ल्स टर्नर ने तो आपकी सूक्ष्म प्रतिभा पर मुग्ध हो आपको 'तत्वदर्शी न्याय वेत्ता' कहना शुरू कर दिया। १८८४ में लगान-संबंधी कमीशन के सदस्य की हैसियत से आपने किसानों का पक्ष इतनी योग्यता व दृढ़ता से रखा कि आप साधारण जनता में भी लोकप्रिय हो गये और किसान आपको अपना हितैषी मानने लगे।

सार्वजनिक जीवन में आपका वकालत के साथ ही प्रवेश हो चुका था। आप सभी दिशाओं में चमकने लगे थे। सन् १८८५ में आप स्टेचुटरी सिविल सर्विस में नियुक्त हुए और सन् १८८६ में आप मदरास यूनिवरसिटी के फ़ैलो बनाये गये। सन् १८९० में आप मदरास लैजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य नियुक्त हुए। 'विलेज सर्विस बिल' आपके विरोध के कारण हो रह गया। मलाबार मैरिज एक्ट के निर्माण में आपने प्रमुख भाग लिया। कौंसिल विधान में आपने एक बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन कराया। वह यह कि कौंसिल में पेश होने से पहिले बिल की प्रतियां सरकारी और ग़ैर सरकारी सदस्यों में बांटी जाने लगीं। कुछ दिनों तक आप 'मदरास ला जरनल' और 'मदरास रिव्यू' पत्रों के सम्पादक भी रहे।

यह असंभव था कि इतना कुशाग्र बुद्धि, प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति देश के राष्ट्रीय जीवन की ओर न जाता। कांग्रेस के जन्मकाल से ही

आप राजनैतिक आन्दोलन में सहयोग देने लगे थे। १८९७ में न केवल आप प्रान्तीय कान्फरैन्स के सभापति चुने गये, लेकिन अमरावती में होनेवाले कांग्रेस के अधिवेशन के भी सभापति बनाये गये। अपने भाषण में आपने तत्कालीन स्थिति का बड़े साहस के साथ स्पष्ट विवेचन और विश्लेषण करते हुए सरकारी नीति की खूब आलोचना की। आपने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा कि "यह सच है कि अंग्रेज़ी राज्य ने बहुत उपकार किये हैं, उनके चले जाने से देश में अराजकता फैल जायगी, रूस और फ्रांस भी हमला करेंगे, लेकिन इन सबका यह अर्थ नहीं है कि हमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता न दी जाय। केवल इसे प्राप्त करने की आशा ही इंग्लैण्ड और भारत के संबन्ध को क़ायम रख सकती है।" बहुत समय तक आप कांग्रेस के कार्य्यों में क्रियात्मक भाग लेते रहे।

वस्तुतः आप अपने समय में एक ताक़त थे। डील-डौल में जैसे बड़े थे वैसे ही दिमाग़ी लियाक़त में भी बड़े होने से उन दिनों के कांग्रेसी नेताओं में आपका स्थान बहुत ऊंचा था। कांग्रेस के अलावा समाज सुधार के आन्दोलन में भी आप बहुत भाग लेते रहे। आपका यह स्पष्ट मत था कि विद्यार्थियों को राजनीति में अवश्य भाग लेना चाहिए। १९०८ में आप सोशल कान्फरैन्स के सभापति बनाये गये।

प्रतिभा बुद्धि के इस पुंज पर सरकार की दृष्टि पड़नी आवश्यक थी और उन दिनों के अन्य अनेक राजनैतिक नेताओं के समान आप भी पहले एडवोकेट जनरल और बाद में हाईकोर्ट के जज बना दिये गये। आप अस्थायी तौर पर तीन बार जज बनाये गये और १९०८ में आपको स्थायी तौर पर जज बना दिया गया। इससे कांग्रेस और देश

के सार्वजनिक जीवन से आपका संबंध टूट गया। १९१५ में आप वाइसराय की कार्यकारिणी के शिक्षासदस्य बना दिये गये। इस पद पर रहते हुए आपने स्त्री शिक्षा के लिए काफ़ी प्रयत्न किया। सरकारी पिंजरे में बंद रहते हुए भी आपकी आत्मा स्वतंत्रता के वातावरण में उड़ने के लिए हमेशा उत्सुक रहती थी। १९१९ में माण्टफोर्ड स्कीम पर भारत सरकार के अधिकांश विचारों से आप असहमत थे और उसके खरीतों में आपके असहमति सूचक नोट बहुत योग्यता के साथ लिखे गये थे। भारत सरकार के साथ आपका मतभेद बढ़ता गया और समय आया कि भारत सरकार के पिंजरे से आप बाहर हो गये।

१९१९ में जलियांवाला बाग़ की दुर्घटना हो चुकी थी, पंजाब में मार्शल ला क़ायम था, सरकार निरंकुशता का नंगा नाच नाच रही थी। शंकरन् नायर ने उसका प्रतिवाद किया, लेकिन सफलता न मिलने पर उसके प्रतिवाद-स्वरूप इतने ऊंचे पद से १९ जुलाई १९१९ को स्तीफ़ा दे दिया, इससे आपकी लोकप्रियता खूब बढ़ गई, कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा आपको बधाई दी और कांग्रेस कमेटी ने इंग्लैण्ड जाकर पंजाब-हत्याकांड का मामला अंग्रेजों के सामने रखने की आपसे प्रार्थना की। ३१ जुलाई को आप सुधारों के संबंध में गये हुए भारतीय डेपुटेशन को सहयोग देने के लिए इंग्लैण्ड को रवाना हो गये।

अपनी इस लोकप्रियता को आप अन्त तक न निभा सके। गांधीजी की असहयोग व सत्याग्रह की नीति से तीव्र मतभेद होने के कारण आपने 'गांधी और अराजकता' नाम से एक पुस्तक लिखी। इससे आप जनता में बहुत अप्रिय हो गये। पंजाब गवर्नर ओड्वायर पर भी

इसमें छींटे उड़ाये गये थे, उसने मानहानि का दावा किया, जिसमें आपको तीन लाख रुपये हर्जाने के तौर पर देने पड़े थे।

सन् १९२२ में आप फिर एक बार चमके। अहमदाबाद कांग्रेस में सामूहिक सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय हो चुका था। गांधी जी डिक्टेटर नियत हो चुके थे। कुछ-एक देश-हितैषियों ने कांग्रेस व सरकार में समझौता कराने के लिए बम्बई में १६ जनवरी १९२२ को सर्वदल सम्मेलन का आयोजन किया। उसका सभापति आपको बनाया गया था। सम्मेलन की उप समिति द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव जब सम्मेलन में रखा गया, तब उससे असहमत होने के कारण आप सम्मेलन छोड़ कर चले गये। उसके बाद आप सार्वजनिक जीवन से विरक्त रहे।

कुछ वर्षों तक फिर आप कौंसिल आव स्टेट के सदस्य रहे। १९२८ में साइमन कमीशन के आने पर सारे देश के सब दलों ने उसका बहिष्कार किया, लेकिन आपने उससे सहयोग देनेवाली भारतीय समिति का अध्यक्ष-पद स्वीकार कर लिया। इससे आप देश भर में अत्यन्त अप्रिय हो गये। नरम-दल ने भी जब उसका बहिष्कार कर दिया था, तब आपका उसमें सहयोग देना वास्तव में आश्चर्य की बात थी। आपका जीवन इसी तरह सहयोग और असहयोग की डांवाडोल स्थिति में गुज़रा है। कभी आप सरकार के प्रिय बने और कभी जनता के। न सरकारी पदों की ही लालसा सदा रही और न जनता के प्रेम-पात्र बने रहने का ही निरन्तर यत्न किया। २४ अप्रैल १९३४ को आपका देहावसान हुआ और प्रारम्भिक-काल से कांग्रेस के साथ सम्बन्ध रखनेवाला एक वृद्ध महान् पुरुष उठ गया।

आनन्द मोहन वसु

[१८४६—१९०६]

चौदहवां अधिवेशन, मद्रास—१८८९

आनन्द मोहन वसु, जिनको कांग्रेसी बुजुर्गों की पंक्ति में 'पूर्वी बंगाल का चमकता हुआ सितारा' कहा जाता है, कांग्रेस के ही एक महान् पुरुष नहीं थे, बल्कि ब्रह्म-समाज के भी एक चोटी के नेता थे और बंगाल को न केवल राजनैतिक बल्कि सामाजिक, नैतिक एवं शिक्षा के लिए प्रेरणा देने में भी अग्रणी थे। पूर्वी बंगाल के मैमनसिंह ज़िले में १८४६ में आपका जन्म हुआ। बाल्यकाल का कोई विशेष ब्यौरा नहीं मिलता, पर यह तय है कि आप छोटी आयु से ही प्रतिभा-सम्पन्न थे।

प्रारम्भिक शिक्षा आपकी कलकत्ता में हुई और १६ वर्ष की अवस्था में १८६२ में कलकत्ता-यूनिवरसिटी की मैट्रिक-परीक्षा में आप प्रथम रहे। एफ़० ए० और बी० ए० की परीक्षाओं में पास होनेवाले विद्यार्थियों में आपका नम्बर सब से ऊपर रहा। एम० ए० की परीक्षा गणित में दी और उसमें भी सर्व प्रथम रहे। इससे उच्चाधिकारियों में, खास कर यूनिवरसिटी के तत्कालीन वाइस चान्सलर सर हेनरी समरनमैन के दिल में, आपकी इज़्ज़त बढ़ गई और साथ ही आपको १०,००० रु०

की रायचन्द्र-प्रेमचन्द्-छात्रवृत्ति भी मिल गई। कुछ समय तक आप प्रेसि-डेन्सी-कालेज में गणित के प्रोफ़ेसर रहे, फिर १८७० में इंग्लैण्ड जाकर गणित की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए कैम्ब्रिज के क्राइस्ट-कालेज में भरती हुए। अपनी योग्यता के कारण वहाँ कैम्ब्रिज यूनियन के मंत्री हुए और फिर उसके अध्यक्ष हो गये, जोकि बहुत बड़े सन्मान का पद है। तीन साल पढ़कर मैथेमेटिकल ट्रिपोस में सफल हुए और रैंगलरा में ऊँचा दर्जा हासिल किया। पश्चात् १८७४ में बैरिस्टरी पास करके हिन्दुस्तान लौट आये।

वकालत में शीघ्र ही आपको सफलता मिली, हालांकि आपने हाई-कोर्ट के बजाय ज़्यादातर वकालत मुफ़स्सिल में ही की। अपनी आयका अधिकांश भाग आपने आसाम के चाय-व्यवसाय में लगाया। पर, आपका मन तो धार्मिक, शिक्षणात्मक एवं राजनैतिक दिशाओं में लगा रहता था। इसलिए वकालत के पेशे में आपकी आत्मा को सन्तोष न मिला और जल्दी ही उससे आपने अवकाश ग्रहण कर लिया।

शिक्षा की दिशा में आपने विशेष काम किया। शिक्षा-समस्याओं में आपकी गहरी दिलचस्पी थी, जिसके कारण १८७७ में आप कलकत्ता यूनिवरसिटी के 'फ़ैलो' और उसके दो साल बाद उसकी सिण्डीकेट के सदस्य नियुक्त हुए। यूनिवरसिटी को अधिक से अधिक शिक्षा देने वाली संस्था बनाने की दृष्टि से उसमें सुधार के अनेक प्रस्ताव उपस्थित किये। १८८० में 'सिटी-स्कूल' के नाम से कलकत्ता में एक हाई स्कूल खोला, जो क्रमशः आधुनिक ढंग का बढ़िया कालेज बन गया। स्त्री-शिक्षा की ओर भी आपने समुचित ध्यान दिया। 'बंग महिला विद्या-

लय' के नाम से लड़कियों की पढ़ाई का एक स्कूल खोला, जो शीघ्रता से उन्नति करते हुए स्त्रियों की उच्च शिक्षा की सुदृढ़ सरकारी संस्था बेथून कालेज में सम्मिलित हो गया। आपकी योग्यता और क्रियात्मक कार्य के कारण शिक्षा-शास्त्री के रूप में आपकी ख्याति इतनी बढ़ी कि १८८२ में नियुक्त शिक्षा कमीशन की अध्यक्षता ग्रहण करने के लिए तत्कालीन वाइसराय लार्ड रिपन ने आपसे अनुरोध किया, लेकिन आपने इसलिए उस सन्मान को अस्वीकार कर दिया कि हिन्दुस्तानी अध्यक्ष होने के कारण कमीशन की सिारिफ़शों का महत्व कम हो जायगा। आप उसके सदस्य हुए और उसके काम में आपने विशेष योग दिया। शिक्षा-सम्बन्धी सेवाओं के फल स्वरूप १८९५ में कलकत्ता यूनिवरसिटी ने आपको बङ्गाल-कौंसिल के लिए अपना प्रतिनिधि चुना।

१८७६ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि के साथ आपने कलकत्ता में इंडियन-असोसियेशन की स्थापना की और उसके प्रधानमंत्री बनकर सुरेन्द्रनाथ के उत्साही सहकारी रहे। १८८६ में बंगाल-कौंसिल के सदस्य नामज़द हुए और १८९५ में यूनिवरसिटी की ओर से चुने गये। वहां निर्भयतापूर्वक आप जनता के पक्ष को उपस्थित करते थे। १८८५ में, जब कांग्रेस की स्थापना हुई तो आपने उसकी मंगल कामना की। स्वास्थ्य की ख़राबी के कारण हरेक कांग्रेस में तो शरीक न हो सके, पर आपकी सहानुभूति सदा कांग्रेस के साथ रही और जब कभी कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ, तब आप उसमें जाकर सम्मिलित होते रहे और उसकी कार्रवाइयों में प्रमुख भाग लेते रहे। १८९६ के अधि-वेशन में आपने शिक्षा-विभाग की नौकरियों की नवीन योजना से

हिन्दुस्तानियों के साथ होनेवाले अन्याय का तीव्र विरोध किया। इस सम्बन्ध में आपने जो भाषण दिया, वह आपकी वक्तृत्वकला का उत्कृष्ट नमूना है। १८६७ के अन्त में आपका स्वास्थ्य ज्यादा खराब हुआ और डाक्टरी सलाह पर आबहवा की तबदीली के लिए ज़र्मनी चले गये। वहां स्वास्थ्य कुछ सुधरा तो इंग्लैण्ड गये और वहां अनेक सभाओं में भारत के पक्ष में भाषण दिये। एक सभा में तो आपने इतने जोश, तीव्रता और गरमी में भाषण दिया कि उसके अन्त में आपको स्वयं ऐसा प्रतीत हुआ जैसे कि कोई बहुत बड़ा परिश्रम किया हो। पर, वह आपकी जीवनलीला की समाप्ति का श्रीगणेश था। उसके बाद आप ऐसे बीमार हुए कि प्रायः रोग-शैय्या पर ही पड़े रहे। इंग्लैण्ड से भारत लौटने पर आपकी देशभक्ति, निःस्वार्थ सेवा एवं निष्कलंक चरित्र के पुरस्कार स्वरूप राष्ट्र ने आपको १८६८ में मदरास में हुए कांग्रेस के चौदहवें अधिवेशन का सभापति चुना। आपका स्वास्थ्य तो निश्चय ही बिगड़ रहा था, फिर भी इस भारी जिम्मेवारी को आपने बड़ी प्रसन्नता के साथ स्वीकार किया और पूरी योग्यता के साथ निबाहा। सभापति पद से आपने जो भाषण दिया,वह कांग्रेस के भाषणों में सर्वोत्तम माना जाता है और अन्त में धन्यवाद के प्रस्ताव का जवाब देते हुए जो मौखिक भाषण दिया,उसने तो आपको श्रोताओं की नज़रों में और भी ऊँचा उठा दिया। उसके बाद आपका स्वास्थ्य एक दम गिर गया। उसके बाद सिर्फ एक बार बिस्तरसे उठकर एक सार्वजनिक समारोह में जा सके और वह तब जब कि बंग-भंग के सरकारी कृत्य के विरोध में सारे बंगाल की एक सूत्रता के द्योतक फ़िडरल हाल की कलकत्ता में

स्थापना हुई। १६ अक्तूबर १६०६ को आपने उसका उद्घाटन किया और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने आपका अंतिम भाषण पढ़कर सुनाया। वह भाषण मानो आपका अंतिम संदेश था, जो इतना शानदार था कि उसका स्थान भारतीय राजनैतिक साहित्य में बे-जोड़ है।

धर्म आपके जीवन में पूरी तरह समाविष्ट था। आप छोटी उम्र में ही ब्रह्म-समाज में शामिल हो गये थे और केशवचन्द्रसेन के नेतृत्व में इस दिशा में बहुत काम किया। पर जब केशवचन्द्र ने अपनी पांच बरस की लड़की का कूचविहार के राजा के लड़के से विवाह किया तो जागरुक ब्रह्म-समाज में दो दल हो गये और आपने केशवचन्द्रसेन से अलग होकर साधारण ब्रह्म-समाज की स्थापना के रूप में सुधारक दल का नेतृत्व किया। सच तो यह है कि आपका अन्तरतम आध्यात्मिक भावना में रंगा हुआ था। यहांतक कि राजनैतिक भाषण भी धार्मिक और आध्यात्मिक रंग में ही रंगे होते थे। यही कारण है कि जो कुछ कहते थे, उसको उसी तीव्रता से महसूस भी करते थे और कौन कह सकता है कि अपका स्वास्थ्य बिगड़ने का भी यही मुख्य कारण न था? १६०६ में आपका स्वर्गवास होने पर उसी साल की कॉंग्रेस के स्वागताध्यक्ष-पद से डा० रासबिहारी घोष ने जो कहा था उसीको दोहराते हुए यह कहा जा सकता है कि, "निस्सन्देह आनन्दमोहन वसु में देश, भक्ति धर्म की ऊंचाई पर पहुंची हुई थी।"

रमेशचन्द्र दत्त

[१८४८—१६०६]

पन्द्रहवां अधिवेशन, लखनऊ—१८९९

सार्वजनिक सेवा की सीढ़ी पर पैर रखकर सरकार द्वारा सम्मान पानेवाले तो बहुत व्यक्ति हुए हैं, लेकिन उन दिनों भारतीयों के लिए दुर्लभ कमिश्नर का ऊंचा पद पाकर सार्वजनिक सेवा के लिए उसे ठुकरानेवाले श्री रमेशचन्द्र दत्त जैसे व्यक्ति विरले ही मिलेंगे।

रमेशचन्द्र दत्त का जन्म कलकत्ता में १३ अगस्त १८४८ को एक बहुत ही कुलीन परिवार में हुआ था। आपके पिता ईशानचन्द्र बंगाल में पहले भारतीय डिप्टीकलक्टर थे। माता-पिता के देहान्त हो जाने के कारण रमेशचन्द्र अपने चाचा शशिचन्द्र की संरक्षकता में रहने लगे। एन्ट्रेंस पास होने से पहले ही आपका विवाह हो गया। एफ़० ए० पास कर चुकने के बाद आपकी इच्छा लन्दन जाकर सिविल सर्विस की परीक्षा देने की थी, लेकिन चाचा इससे सहमत न थे। इसलिए आप भागकर बम्बई पहुंचे और उस जहाज़ पर सवार हुए, जिस पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सिविल सर्विस की परीक्षा देने के लिए इंगलैंड जा

रहे थे। सिविल सर्विस की परीक्षा बड़ी शान के साथ पासकर रमेशचन्द्र १८७१ में भारत वापिस आ गये।

१८७१ से १८९२ तक २१ साल तक आप बंगाल के विभिन्न जिलों में विभिन्न पदों पर काम करते रहे। इन पदों पर रहकर आपने जनता की यथाशक्ति अधिक से अधिक सेवा करने का प्रयत्न किया। अकाल, बाढ़, हैजा आदि के अवसर पर आपने जिस सुन्दरता से लोगों की सेवा की, जिस तत्परता और सहृदयता से अपने शासन काल में आपने जमींदारो और किसानों को सहायता पहुंचाई, उससे आप बंगाल की गरीब प्रजा में बहुत लोक-प्रिय हो गये। आपकी सम्मतियों और निर्णयों का आदर सरकारी अधिकारी भी किया करते थे। कठिन से कठिन परिस्थितियों को आपने जिस तरह हल किया, उससे आपका सिक्का पूरी तरह जम गया था। इसलिए जब आप इंग्लेंण्ड में एक साल की छुट्टी बिताकर १८९४ में भारत पहुंचे, तो आप बर्दवान डिविजन के कमिश्नर बना दिये गये। उस समय तक यह पद किसी भारतीय को प्राप्त न हुआ था। फिर आप उड़ीसा के कमिश्नर बनाये गये।

१८९७ में जब आपने उस ऊँचे पद से इस्तीफ़ा दे दिया, तब आप के मित्रों को बहुत आश्चर्य हुआ लेकिन आप के हृदय में राष्ट्र-सेवा और साहित्य-सेवा की जो उत्कट अभिलाषा उत्पन्न हो चुकी थी, उसे वे न जानते थे। आपका शेष जीवन इन्हीं दोनों कार्यों में व्यतीत हुआ। बीच में १९०४ से १९०७ तक कुछ साल आप बड़ौदा में रैवेन्यू मिनिस्टर के पद पर भी रहे, जहां आपने कर, शिक्षा, व्यापार, शासन आदि के सम्बन्ध में बीसियां प्रकार के सुधार किये और बड़ौदा को भारत का

सबसे उन्नत राज्य बनाने का प्रयत्न किया। यहां आप 'ग़रीबों के दोस्त' के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। १६०८ में आप 'रायल कमिशन आफ़ डिसैण्ट्रलाइजेशन' के सदस्य नियत किये गये। १६०६ में आप बड़ौदा के प्रधान मंत्री नियुक्त हुए, लेकिन उसी साल हृद्-रोग से २० नवम्बर १६०६ को आपका ६१ वर्ष की आयु में देहान्त हो गया।

श्री रमेशचन्द का सार्वजनिक जीवन उन दिनों के इतिहास में अपना एक विशेष स्थान रखता है। आपको भारतवर्ष की आर्थिक समस्याओं में विशेष रुचि थी। किसानों के कष्ट आपसे देखे न जाते थे। २६ साल की लम्बी सरकारी नौकरी में आपने किसानों की स्थिति का अत्यन्त गम्भीरता के साथ अध्ययन किया और समय समय पर सरकार की मालगुजारी प्रथा में सुधार कराने का आन्दोलन आप करते रहे। बंगाल टिनैंसी एक्ट तथा अन्य अनेक सुधारों का समस्त श्रेय आपको ही मिलना चाहिए। डिसैण्ट्रलाइजेशन कमीशन ने बहुत सी सुन्दर और उपयोगी सिफ़ारिशें आपके जोर देने पर ही की थीं। आपने जब देखा कि अब सरकारी पदों पर रहकर किसानों की अधिक सेवा नहीं की जा सकती, तब आप कांग्रेस में सम्मिलित हो गये और आई० सी० एस० के अफ़सर रहते हुए लम्बे अरसे तक सार्वजनिक प्रश्नों पर आपने जो अमित अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था, उसका लाभ भी कांग्रेस को पहुंचाया। आपका कहना था कि भूमि पर भारी मालगु-जारी और ब्रिटिश कारखानों की खुली प्रतिस्पर्धा के कारण ग्रामीण धन्धों का विनाश ही दुर्भिक्ष का कारण है। मालगुजारी, दुर्भिक्ष तथा

अन्य आर्थिक प्रश्नों पर आप प्रमाण समझे जाते थे। सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद आप इंग्लैण्ड चले गये थे, वहां आप यूनिवर्सिटी कालेज लण्डन में भारतीय इतिहास के प्रोफ़ेसर बनाये गये थे। १६०० से १६०४ तक आपने लण्डन में भारतीय पक्ष को, विशेषकर किसानों के पक्ष को जोरों के साथ रखा। मालगुजारी तथा ब्रिटिश कालीन भारत के आर्थिक इतिहास पर आपने अत्यन्त प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे, जो आजतक अपने विषय के अद्वितीय ग्रन्थ माने जाते हैं। इन पुस्तकों के द्वारा आपने सहसा सम्पूर्ण राष्ट्र का ध्यान बढ़ते हुए आर्थिक ह्रास की ओर खींच दिया। १८६६ में राष्ट्र ने आपकी इन अनुपम सेवाओं का सम्मान कर आपको कांग्रेस का सभापति बनाया। आपने अपने भाषण में पहली बार किसानों पर होनेवाले भीषण अत्याचारों की ओर कांग्रेस का ध्यान खींचा।

किसानों की आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में लार्ड कर्ज़न के साथ काफी समय तक आपकी बहस रही। आपने सरकारी नीति की इतनी कड़ी आलोचना की कि सरकार को विवश होकर किसानों के महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर ध्यान देना पड़ा। भारत के किसान सदा ही आपकी सेवाओं के लिए आपके ऋणी रहेंगे। भारत के शासन विधान मे आप अत्यन्त असन्तुष्ट थे। आपने इंग्लैण्ड में दादाभाई नौरोजी व सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के साथ मिलकर शासन में सुधार कराने का तीव्र आन्दोलन किया। न्याय और शासन विभागों को पृथक-पृथक करने की कांग्रेस की मांग के आप समर्थक थे। कांग्रेस के साथ सहानुभूति रखने के खतरे को आप जानते थे, किन्तु अपने विचारों

को कभी आपने खतरे के कारण दबाया नहीं। लार्ड मिण्टो के साथ भी आपने इस सम्बन्ध में बहुत सा पत्र-व्यवहार किया था।

प्रारम्भ से ही आपकी रुचि साहित्य सेवा की ओर थी। आपने इतिहास, राजनीति और अर्थशास्त्र के अतिरिक्त अन्य भी बीसियों सुन्दर विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। कम्पनी के समय का आपका लिखा हुआ भारत का इतिहास अपने विषय की पहली पुस्तक है। आपने कई उपन्यास भी लिखे हैं। ऋग्वेद का बंगाली अनुवाद, महाभारत और रामायण का अंग्रेजी पद्यानुवाद तथा भारतीय सभ्यता का इतिहास आपके अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। ये सभी ग्रन्थ आपके व्यवसाय, परिश्रम, विद्वत्ता और अथाह ज्ञान के सूचक हैं। सरकारी पदों पर काम करते हुए इतनी साहित्य सेवा शायद ही किसी सिविलियन ने की हो। अपनी साहित्यक सेवा और विशेषकर भारत के आर्थिक प्रश्नों पर लिखे हुए अपने प्रामाणिक ग्रन्थों के कारण आप वस्तुतः अमर हो गये हैं।

नारायण गणेश चन्दावरकर

[१८५५—१९२३]

सोलहवां अधिवेशन, लाहौर—१९००

सर नारायण गणेश चन्दावरकर का जन्म उत्तरी कर्नाटक के हनोवर शहर में रहनेवाले एक संभ्रान्त परिवार में १८५५ में हुआ था। अपने शहर और जिला के स्कूलों में कुछ साल पढ़ने के बाद १८६९ में वह बम्बई चले गये और १८७३ में एलफिंस्टन कालेज में भर्ती हो गये। अपनी प्रतिभा और योग्यता के कारण वहां के प्रोफ़ेसर के कृपा पात्र होने में उनको अधिक समय नहीं लगा। समाज-सुधार, देश-भक्ति, सार्वजनिक सेवा आदि की भावना आपके हृदय में कालेज जीवन में ही पैदा हो चुकी थी।

१८७७ में बी० ए० पास करके आप 'इन्दुप्रकाश' के अंग्रेज़ी कालमों का सम्पादन करने लगे। दो साल बाद सम्पादन छोड़कर आपने क़ानून पढ़ना शुरू किया और १८८१ में वकालत की परीक्षा दी। हाईकोर्ट में आपकी प्रतिभा खूब चमकी और शीघ्र ही ऊंची कोटि के वकीलों में गिने जाने लगे। वकालत के साथ ही सार्वजनिक जीवन में आपका प्रवेश हुआ। आपको सार्वजनिक जीवन में आए थोड़ा ही

समय हुआ था। उन दिनों की परिपाटी के अनुसार जब १८८५ में पार्लमेन्ट के चुनाव के समय इंग्लैण्ड की जनता के सामने भारतीय समस्याओं को रखने के लिए यहां से एक डेपुटेशन जाने लगा, तब आपसे भी उसमें जाने का आग्रह किया गया। इंग्लैण्ड में हृदयस्पर्शी और विवेचनापूर्ण भाषणों के कारण आपने खूब प्रभाव पैदा किया। वहां से लौटकर कांग्रेस के पहले अधिवेशन में सम्मिलित हुए। उसके बाद तेरह वर्षों तक आप निरन्तर सार्वजनिक सेवा के विविध क्षेत्रों में लगन और उत्साह के साथ काम करते रहे। समाज-सुधार, शिक्षा और साहित्य में आप विशेष दिलचस्पी रखते थे। १८६७ में आप यूनिवर-सिटी की ओर से बम्बई कौन्सिल के सदस्य चुने गये। कौन्सिल में भी समाज-सुधार तथा अन्य उपयोगी सार्वजनिक विषयों में आप विशेष रुचि दिखाते रहे। १६०० में राष्ट्र ने आपको वह ऊंचे से ऊंचा सम्मान दिया, जो वह दे सकता था।

लाहौर में होनेवाली कांग्रेस के सभापति पद से दिया गया आपका भाषण आपकी योग्यता और देश-भक्ति का अच्छा परिचायक है। जनवरी १६०१ में आपको हाईकोर्ट का स्थानापन्न जज नियुक्त किया गया। श्री रानाडे के देहान्त के बाद स्थायी तौर पर नियुक्त कर दिये गये। १६०६ में आपने स्थानापन्न चीफ़ जस्टिस का काम भी किया। १६१० में आपको सरकार ने 'सर' की उपाधि दी। १६१२ तक आप हाईकोर्ट के जज रहे। जजी के काल में आपने अपनी न्याय-बुद्धि, सूक्ष्म-दृष्टि और सहृदयता से सरकार व जनता दोनों में ख्याति प्राप्त की। इसके बाद आप कुछ समय तक

इन्दौर के प्रधान मंत्री के पद पर रहे। सरकारी पदों पर इतने दीर्घकाल तक काम करने के बाद भी आपकी स्पष्टवादिता और देश-भक्ति में किसी तरह की कमी न आई। १९१७ में जब मांटेगू भारत आये, तब कांग्रेस-लीग-योजना के समर्थन में आपने एक बहुत विद्वत्तापूर्ण आवेदन-पत्र तय्यार किया। भारत के शासन में सुधारों के आप दृढ़ पक्षपाती थे। श्रीमती ऐनी बेसेण्ट की गिरफ्तारी के विरुद्ध आपने ज़ोरदार आवाज़ उठाई थी। फिर कुछ समय तक आप नरमदल की राजनीति में दिलचस्पी लेते रहे। जब गांधी जी १९१९ में सत्याग्रह शुरु करने लगे थे, तब आपने उन्हें इतना उग्र क़दम उठाने से रोका था। जीवनी की अन्तिम घड़ी तक आप बम्बई के सार्वजनिक जीवन में कुछ न-कुछ भाग लेते रहे। मई १९२३ में बंगलौर में, जहां आप स्वास्थ्य-सुधार के लिए गये हुए थे, हृदय की गति बन्द होजाने से आपका देहान्त हो गया।

सर चन्दावरकर की सार्वजनिक सेवायें, भले ही जज बना दिये जाने से, कांग्रेस के साथ बहुत समय तक सम्बन्धित न रह सकीं, लेकिन वे अगणित थीं। समाज-सुधार और शिक्षा के क्षेत्र में आपने बहुत काम किया। महाराष्ट्र में उन दिनों समाज-सुधार का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण था। आप न्यायमूर्ति गोविन्द महादेव रानाडे के इस विचार से सहमत थे कि राजनीतिक सुधारों से पहले समाज-सुधार की आवश्यकता है। प्रार्थना-समाज के आप वर्षों प्रमुख कार्यकर्ता रहे। सरकार को सामाजिक कुरीतियां दूर करने के लिए क़ानून का आश्रय लेना चाहिए, इसका आप हमेशा समर्थन करते रहे। शिक्षा के कार्यों में विशेष रुचि

लेने के कारण बम्बई यूनिवरसिटी के आप वाइस चांसलर बनाये गये थे। विद्यार्थियों से आपको विशेष प्रेम था। बरसों वे 'स्टूडैण्टस् ब्रदरहुड' के प्रधान रहे। विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण की ओर आप विशेष ध्यान देते थे। १९०२ में लार्ड कर्जन ने आपको शिक्षा कमीशन का सदस्य नियत किया था।

मनुष्य समाज की सेवा, चाहे वह किसी भी मार्ग से हो, आपका प्रिय विषय था। इसीलिए हम उन्हें कभी नर्सिंग एसोसियेशन में पाते हैं, तो कभी जीव-दया-प्रचारिणी या शिशु-संवर्धिनी में और कभी कौंसिल या कोरपोरेशन में प्रजा की जोवनोपयोगी समस्याओं के लिए आन्दोलन करते हुए पाते हैं। यही कारण है कि जहां एक ओर आप सरकार द्वारा हाईकोर्ट की जजी और यूनिवरसिटी की वायस चांसलरी पाते हैं, वहां दूसरी ओर जनता द्वारा राष्ट्रपति पद पर आपका अभिषेक किया जाता है।

दीनशा ईदलजी वाचा

[१८४४—१६३६]

सत्रहवां अधिवेशन, कलकत्ता—१९०१

फारस से निकाली जाकर भारत में आ बसनेवाली पारसी जाति ने उन्नीसवीं सदी के अन्त में एक साथ तीन महापुरुषों को जन्म देकर उस ऋण को अदा किया है, जो भारत में बसने के नाते उस पर चढ़ा हुआ था। भारत के वृद्ध पितामह दादाभाई नौरोजी, बम्बई के बेताज बादशाह फ़िरोजशाह मेहता और अर्थशास्त्र के महापण्डित दीनशा ईदलची वाचा का नाम इस सम्बन्ध से सदा याद किया जाता रहेगा।

दीनशा ईदलची वाचा का जन्म २ अगस्त १८४४ को बम्बई में हुआ था। एलफिंस्टन इंस्टिच्यूट में प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करके आप १८५८ में उसी कालेज में भर्ती हो गये। विद्यार्थी-जीवन में आपकी योग्यता और उत्तम स्वभाव के कारण आप अन्य विद्यार्थियो की अपेक्षा सभी अध्यापकों के बहुत अधिक प्रिय थे। अपने व्यापारिक कार्य में सहायता लेने के लिए आपको पिता ने कालेज से जल्दी ही उठा लिया। पिता के साथ कार्य करते हुए आपने अर्थशास्त्र का जो व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया, वह आपके बहुत काम आया। उस समय अर्थशास्त्र में

आपकी ऐसी रुचि पैदा हुई कि उसमें पाण्डित्य प्राप्त करके सरकार की आर्थिक नीति की साधिकार कड़ी टीका करनेवाले आप पहले व्यक्ति थे। बाम्बे बैंक में आपने काम शुरू किया और उस छोटी अवस्था में आपको बैंक की एक प्रधान शाखा का काम संभालने के लिए तय्यार किया गया। फिर आपने हिसाब-परीक्षक मैसर्स वॉडी एण्ड विल्मन फर्म में बतौर सहायक के काम शुरू किया। वहां आपकी प्रतिभा और योग्यता चमक उठी। आपने कोई छोटी-मोटी १०-१२ दिवालिया रियासतों और कितने ही बैंकों तथा अन्य संस्थाओं का हिसाब-किताब ठीक किया। अमेरिकन युद्ध के कारण जब १८६१—६५ में सारे संसार में घोर आर्थिक संकट पैदा हुआ था, तबका वह समय था। उस विकट समय में आपने अपनी योग्यता का उत्कट परिचय दिया। राबर्टसन ब्राइट के लेखों से आपके हृदय में देशभक्ति की भावना जागृत हुई। उनके लेखों में मुद्रा, विनिमय, अर्थनीति और राजस्व सम्बन्धी विषयों का बहुत गहरा अध्ययन और तीव्र आलोचना रहती थी। उन्हीं के अध्ययन से आपमें भी उन विषयों का पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त करने की इच्छा पैदा हुई। देशभक्ति और अर्थशास्त्र के पाण्डित्य के मिश्रण से आपके सार्वजनिक जीवन का निर्माण हुआ था।

१८७४ में बम्बई के रूई के व्यापार-व्यवसाय के साथ आपका सम्बन्ध हो गया। मृत्यु पर्य्यन्त इस व्यापार-व्यवसाय के साथ आपका सम्बन्ध बराबर बना रहा और मृत्यु से दो-तीन वर्ष पहले तक आप उसमें पूरी दिलचस्पी लेते रहे। उसी समय आपने देश के राजनीतिक मामलों में भी विशेष रूप से भाग लेना शुरू कर दिया।

बम्बई के म्यूनिसिपल मामलों में दिलचस्पी लेते हुए आपने सार्व-जनिक जीवन में प्रवेश किया। श्री मलाबारी के 'इण्डियन स्पैक्टेटर' नामक पत्र में म्यूनिसिपल मामलों पर आपके धारावाही लेखों ने न केवल आपकी या पत्र की ख्याति को बढ़ाया, बल्कि म्यूनिसिपल प्रबन्ध में बहुत सुधार भी करा दिये। १८६६ में म्यूनिसिपल कमेटी के सदस्य बनने के बाद आप अपने प्रस्तावों को कार्य में परिणत करने का उद्योग करने लगे।

केवल बम्बई म्यूनिसिपैलिटी ही नहीं, देश के भी समस्त आर्थिक प्रश्नों—मुद्रा, विनिमय, दुर्भिक्ष, शासन-प्रबन्ध, सेना, व्यापार आदि में भी आप दिलचस्पी लेने लगे। यह कहना कठिन है कि किस विषय से आपको विशेष प्रेम था, क्योंकि प्रायः सभी विषयों में आपका एक समान अबाध प्रवेश था।

कांग्रेस सरीखी किसी संस्था की आवश्यकता आप १८८५ में उस की स्थापना होने से पहले ही अनुभव करने लग गये थे। इसलिए उसकी स्थापना होने पर आपने उसमें पूरा सहयोग दिया और उसमें सम्मिलित होते ही अर्थनीति-सम्बन्धी अपने पाण्डित्य की पूरी धाक जमा दी। आप प्रायः सभी अधिवेशनों में उपस्थित होते थे और कभी होम-चार्ज़ेज़, कभी विनिमय दर, कभी आबकारी नीति, कभी मुद्रा, कभी स्वदेशी कारखाने, कभी चुंगी कभी राजस्व और कभी सैनिक परिस्थिति के विभिन्न पहलुओं पर सरकार की नीति का पर्दा फ़ाश करने-वाले निर्भीक भाषण देते थे। आंकड़ों, प्रमाणों तथा अकाट्य युक्तियों से पूर्ण प्रत्येक भाषण मार्के का होता था। भाषा भी तीव्र रहती थी। उस

समय के नरमदली नेताओं में आप बहुत उग्र माने जाते थे। इसीलिए ग्यारहवीं कांग्रेस में आप'बम्बई का आगबबूला' के नाम से प्रसिद्ध हुए। कांग्रेस में आपकी योग्यता और विद्वता की धाक थी। वैल्वी कमीशन के सामने जब आपका नाम गवाही के लिए प्रस्तुत किया गया, तो कांग्रेस ने इस पर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। आपका प्रत्येक भाषण तत्कालीन आर्थिक प्रश्नों पर पूरी रोशनी डालता है।

१८९६ से १९१३ तक आप कांग्रेस के संयुक्त प्रधान मंत्री रहे। १९०१ में कांग्रेस का सभापति बनाकर आपकी सेवाओं के लिए आपको सम्मानित किया गया। उस पद से दिया गया आपका भाषण सरकार की आर्थिक नीति का पोलखाता था। उस समय दुर्भिक्षों की समस्या बहुत जटिल और उग्र थी। उसका आपने बहुत सुन्दर विवेचन किया था। सर इन्थोनी मैकडानेल्ड की अध्यक्षता में इस समस्या की छानबीन के लिए एक कमीशन नियुक्त किया था। उसकी रिपोर्ट में आपके भाषण की आलोचना की गई थी। उसके बाद भी कांग्रेस के काम में आप सक्रिय भाग लेते रहे थे। १९१५ की बम्बई में हुई कांग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष थे। फिर वृद्धावस्था और नरमदली होने के कारण कांग्रेस में अधिक भाग नहीं ले सके। लेकिन एक चौथाई सदी तक कांग्रेस के प्रमुख कार्य-कर्त्ता रहकर आपने राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा की। कांग्रेस के कार्य-कर्त्ताओं में मतभेद होने पर आप अपने व्यक्तित्व से सदा ही उसको तुरन्त दबा देते थे। आर्थिक औरं राजनीतिक प्रश्नों की ओर साधारण जनता का ध्यान आकर्षित कर उसमें उनके लिए आपने ही दिलचस्पी पैदा की है। ह्यूम सा० के १९०६ में कांग्रेस से

अलग हो जाने के बाद उसका संचालन आपने बड़ी योग्यता तथा तत्परता के साथ कई वर्षों तक किया।

कांग्रेस के अलावा भी आपका सार्वजनिक जीवन बहुत महत्वपूर्ण रहा है। सर फ़िरोज़शाह के देहावसान के बाद बम्बई के सर्वसम्मत नेता का पद आपको ही सौंपा गया था। १६०१ में आप बम्बई कार-पोरेशन के सभापति (मेयर) चुने गये थे। श्री गोखले की मृत्यु से इम्पीरियल कौंसिल में महान् अर्थशास्त्री और वक्ता का जो अभाव हुआ था, उसको आपने ही पूरा किया था। आपका जीवन इतने विविध क्षेत्रों में जिस प्रकार बँटा रहा है, उसकी कल्पना भी आश्चर्य में डालनेवाली है। विविध व्यापारिक कम्पनियों, मिलों, बाम्बे कार-पोरेशन, इम्पीरियल ट्रस्ट बोर्ड, मिल ओनर्स एसोसियेशस, विक्टोरिया टैकनिकल इंस्टीट्यूट, बाम्बे प्रैसिडैंसी एसोसियेशन, बाम्बे लेजिस्लेटिव कौंसिल और एंग्लो इण्डियन टेम्परेंस एसोसियेशन आदि संस्थाओं से आपका निरन्तर संबन्ध रहा है। विभिन्न पत्रों में धारावाही विवेच-नात्मक लेख भी आप लिखते रहे हैं। आपकी शक्ति और लगन सच-मुच आश्चर्य में डालनेवाली है।

माण्ट-फोर्ड-सुधारों के अनुसार शासन व्यवस्था कायम होने पर आप कौंसिल आफ स्टेट के सभासद चुने गये। इस वृद्धावस्था में भी आपके भाषण पाण्डित्य से भरे हुए रहते थे और उनसे मालूम होता था कि आपका अध्ययन कितना गहरा, कितना पूर्ण और कितना 'अप टू डेट' है। आप सदा ही अध्ययन में लगे रहते थे और जब स्वयं पढ़ने में असमर्थ होते थे, तब दूसरों से पढ़वाकर सुना करते थे।

आपका स्वभाव मधुर और मिलनसार था। आप सभाओं में शेर की तरह दहाड़ते थे, लेकिन व्यवहार में बच्चे की तरह रहते थे। १९१५ में आपको सरकार ने 'सर' की उपाधि दी।

१८ फरवरी १९३६ के सवेरे ८--३० बजे फोर्ट (बम्बई) में अपने निवास-स्थान पर ९२ वर्ष की आयु में इस महारथी का देहावसान हो गया। राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर दिसम्बर १९३५ में बम्बई में थे। तब राजेन्द्र बाबू ने आपके यहां जाकर आपके चरणों में नतमस्तक हो समस्त राष्ट्र की श्रद्धाञ्जलि आपके चरणों में अर्पित की थी। आपकी मृत्यु से वह महान् व्यक्ति उठ गया, जो पचास वर्ष बाद आज भी ह्यूम और वेडरबर्न के समय के सार्वजनिक जीवन की याद दिलाता था और जो कांग्रेस के जन्म की एक जीती-जागती निशानी था।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

[१८४८—१९२५]

ग्यारहवां अधिवेशन, पूना—१८९५
अठारहवां अधिवेशन, अहमदाबाद—१९०२

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का नाम किसने नहीं सुना ? हिमालय से कन्याकुमारी तक और सिन्ध से आसाम तक, किसी समय, बंगाल के इस शेर की आवाज़ गूंजती रही है। यही नहीं बल्कि भारत में कांग्रेस के मंच से उठी आपकी बुलन्द आवाज़ सभ्य संसार के दूर-दूर के कोने तक पहुंचती थी। "भाषा-प्रभुत्व, रचना-नैपुण्य, कल्पना-प्रवणता, उच्च भावुकता, वीरोचित हुंकार," डा० पट्टाभि सीतारामैया के शब्दों में, "इन गुणों में आपकी वक्तृत्व-कला को पराजित करना कठिन है—आज भी कोई आपकी समता तो क्या, आपके निकट भी नहीं पहुंच सकता।"

कलकत्ता के एक कुलीन ब्राह्मण परिवार में, १८४८ में, आपका जन्म हुआ था। आपके पिता बंगाल के उस समय के एक मशहूर एलोपैथ डाक्टर दुर्गाचरण बनर्जी थे, जिनके पाँच पुत्रों में आप दूसरे पुत्र थे। शिक्षा-प्राप्ति के लिए पहले पाठशाला भेजा गया। फिर ७ वर्ष के होने पर डोवेटन-कालेज में भर्त्ती हुए, जो मुख्यतः एंग्लो-इण्डियनों की शिक्षा-संस्था है। १८६३ में द्वितीय भाषा के रूप में लेटिन लेकर

प्रथम श्रेणी में प्रवेशिका-परीक्षा पास की और जूनियर-छात्रवृत्ति प्राप्त की। इसी प्रकार एफ़० ए० प्रथम श्रेणी में पास करने पर सीनियर छात्रवृत्ति प्राप्त की। १८६८ में ग्रेजुएट होकर प्रिंसिपल की सिफ़ारिश पर इण्डियन-सिविल-सर्विस की परीक्षा के लिए इंग्लैण्ड गये। कहते हैं आपकी माता इसके लिए तैयार नहीं थीं, परन्तु जब रमेशचन्द्र दत्त और विहारीलाल गुप्त जाने लगे तो मौक़ा पाकर आप भी चुपचाप चल दिये। १८७१ में, अपने पिता की मृत्यु के कुछ ही सप्ताह बाद, सिलहट के असिस्टैण्ट मजिस्ट्रेट बनकर आप हिन्दुस्तान लौटे। लेकिन विधाता को तो आपसे कुछ और ही काम लेना था।

यह वह ज़माना था जब कि हिन्दुस्तानियों को ज़िम्मेदारी के पदों से यथासम्भव दूर रक्खा जाता था और कोई हिन्दुस्तानी थोड़े-बहुत ऊंचे पद पर पहुंच भी जाता तो उसपर बहुत सख्त निगाह रक्खी जाती थी। आपको इण्डियन सिविल सर्विस में प्रवेश किये कोई दो साल हुए होंगे कि आपके 'आफ़िशियल कण्डक्ट' के बारे में आपपर कुछ इलज़ाम लगा दिये गये। आपने उनकी खुली जाँच की जाने पर ज़ोर दिया, पर जो कमीशन मुक़र्रिर हुआ था उसने कलकत्ता से बाहर गुप्त रूप से अपना काम किया। उसका निर्णय कदाचित् पहले से जानी-बूझी बात थी। उसने आपको दोषी क़रार दिया और सरकार ने ५०) माहवार की बरायनाम पेंशन देकर आपको सिविल-सर्विस से अलग कर दिया! अपना मामला लेकर आप इंग्लैण्ड गये और निजी तौर पर भारत-मंत्री से मिले, लेकिन निराश होकर लौटे। बुराई से भी भलाई पैदा हुई। सिविल-सर्विस से निकलना देश की ओर आना हुआ।

आपको मिली हुई यह कठोर सजा निश्चय ही देश के लिए बड़ा भारी आशीर्वाद सिद्ध हुई।

सिविल-सर्विस से अलग हो सबसे पहले आप शिक्षा के क्षेत्र में उतरे। १८७६ में आप मेट्रोपालिटन इंस्टीट्यूशन में अंग्रेज़ी-साहित्य के प्रोफ़ेसर हो गये। १८८१ में फ्री चर्च कालेज से भी आपका सम्बन्ध हो गया। १८८२ में आपने अपना खुद का स्कूल खोला, जिसमें शुरुआत में सौ विद्यार्थी थे, पर ७ वर्षों के ही अन्दर वह इतना बढ़ा कि रिपन-कालेज के रूप में परिणत हो गया, जो न केवल बंगाल बल्कि सारे हिन्दुस्तान की सर्वोत्तम शिक्षा-संस्थाओं में गिना जाता है।

इसके बाद 'जर्नेलिज़्म' में प्रवेश किया। लार्ड लिटन की वाइसरायलटी के तूफ़ानी दिनों में श्री उमेशचन्द्र बनर्जी ने जिस 'बंगाली' पत्र को जन्म दिया था, उसे आपने अपनाया। दिलोजान से आप उसमें लग गये और उसे बहुत ऊंचे दर्जे का पत्र बना दिया। साप्ताहिक से वह दैनिक हो गया। उस समय वही ऐसा भारतीय पत्र था, जो रूटर के (विदेशी) तार मोल लेता था। निर्भीक पत्रकार को समय-समय पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आप भी इसके अपवाद नहीं रहे। इलबर्ट बिल के वक्त 'बंगाली' ने नौकरशाही और एंग्लो-इण्डियनों की निर्भीक आलोचना की, उसका फल आपको शीघ्र ही मिल गया। १८८३ में एक मुक़दमे में कलकत्ता-हाइकोर्ट के एक जज ने शालिग्राम की मूर्त्ति को शहादत के लिए अदालत में पेश करने का हुक्म दिया। आपने 'बंगाली' में उसकी तीव्र आलोचना की, जिसके लिए अदालत की मान-हानि का मुक़दमा आपपर चला दिया गया

और माफ़ी माँग लेने पर भी जजों ने, सर आर० सी० मित्र के असह-मत होने पर भी, बहुमत से आपको दो मास की सज़ा दे दी। सार्व-जनिक जीवन में आप पहले ही प्रवेश कर चुके थे, इसलिए इस सज़ा से सर्वसाधारण का प्रेम और सहानुभूति आपके प्रति पैदा हुई। जेल से छूटकर आपने उत्तर-भारत का दौरा किया, जिसे सर हेनरी काटन ने अपनी पुस्तक 'न्यू इण्डिया' में विजय-यात्रा कहा है। आप जहाँ-जहाँ गये, वहाँ-वहाँ आपका बड़े उत्साह से स्वागत हुआ। सच तो यह है कि देश के राजनैतिक विकास में'बंगाली' के द्वारा आपने बहुमूल्य सेवा की है। राजनैतिक उतार-चढ़ाव के सब समय 'बंगाली' लोकमत को बनाने, शिक्षित करने और उसको संगठित करने में किसी से पीछे नहीं रहा। सम्पादन में भी आपने इतनी ख्याति पैदा की कि १६१० में होनेवाली इम्पीरियल प्रेस कान्फ्रेन्स में भारत के प्रतिनिधि की हैसि-यत से आपको निमंत्रित किया गया, जिसमें आपने बहुत प्रभावशाली भाषण दिया। आपके भाषण के बाद लार्ड क्रोमर ने भारत के देशी अखबारों पर तानाकशी की। आपने उसी समय उसका मुंह तोड़ जवाब दिया। प्रसिद्ध सम्पादकाचार्य डब्लू० टी० स्टेड के शब्दों में आप 'सरेण्डर-नॉट' थे। एक उपनिवेश के प्रतिनिधि पर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि उसने कहा—"यदि भारत में सुरेन्द्रनाथ जैसे और भी आदमी हैं तब उसे तुरन्त स्वशासन दे देना चाहिए।"

२६ जुलाई १८७६ को आप और आनन्दमोहन वसु आदि के संयुक्त प्रयत्न से कलकत्ता के इण्डियन एसोसियेशन का जन्म हुआ। जिस दिन उस एसोसियेशन का उद्घाटन होना था उसी दिन आपके

पुत्र का एकाएक देहान्त हो गया। पर, आपका कर्तव्य-भाव इतना दृढ़ था कि फिर भी शाम को एसोसियेशन की स्थापना के समय उपस्थित रहे, क्योंकि वह देश के लिए आपकी दृष्टि में बहुत महत्वपूर्ण था। ऐसी ही एक घटना आपके जीवन में और मिलती है। वह आप की प्रिय पत्नी के देहावसान की है। उस दिन की आपके मन की व्यथा की कल्पना कौन कर सकता है? पर अपने सम्पादकीय कर्तव्य की आपने उस दिन भी उपेक्षा नहीं की। नित्य की तरह उस दिन भी आपने अपना सम्पादकीय कार्य पूरा किया और अग्रलेख भी लिखवाया। सचमुच ये असाधारण घटनायें हैं जो आज भी आपको हमारी नज़रों में बहुत ऊँचा चढ़ानेवाली हैं। बहुत दिनों तक आप एसोसियेशन के मंत्री रहे और ३०-४० वर्षों तक एसोसियेशन की कोई राजनैतिक हलचल ऐसी नहीं हुई, जिसमें आपका प्रमुख भाग न रहा हो। एसोसियेशन की ओर से आपने दौरा भी किया और एक मसीह की तरह वैध आन्दोलन का सन्देश सारे देश को सुनाया।

कांग्रेस के आन्दोलन में आपका व्यक्तित्व प्रकाश-स्तम्भ की तरह रहा और बंगाल के शेर तथा देश के बेताज बादशाह के नाम से आपने ख्याति प्राप्त की। कांग्रेस के बम्बई के प्रारम्भिक अधिवेशन में तो आप सम्मिलित न हो सके, परन्तु उसके बाद तबतक सम्भवतः सभी अधिवेशनों में उपस्थित होते रहे हैं जबतक कि निश्चित रूप से आप उससे अलग नहीं हो गये। प्रत्येक अधिवेशन में आप कई प्रस्ताव पेश करते थे, और बहुतसे लोग तो आपका भाषण सुनने के लिए ही अधिवेशन में आते थे। बम्बई १८८९ के पांचवें अधि-

वेशन में चन्दे के लिए आपकी अपील पर ६०,०००) तुरन्त जमा हो गया। इसी अधिवेशन के प्रस्तावानुसार धारासभाओं के सुधार के लिए आन्दोलन करने को एक शिष्ट-मण्डल इंगलैण्ड गया, आप भी उसमें थे। इंग्लैण्ड में आपने अनेक सभाओं में भाषण दिये और बहुत अच्छा असर डाला। चारों ओर आपकी बहुत प्रशंसा हुई। उस समय किसीने कहा था कि "पार्लमेण्ट तथा उससे बाहर जो अनुभवी वक्ता हैं उन्हें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के रूप में एक ऐसा व्यक्ति देखने को मिला, जिसमें विलियम पिट की दहाड़ है, फ़ॉक्स की विवादपटुता है, बर्क का ताज़ापन है और शेरिडन का तेज़ विनोद है।" १८६० में कलकत्ता में हुई कांग्रेस के सभापति-पद से फ़िरोज़शाह मेहता ने भी आपके इंगलैण्ड के काम की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। आपकी इन्हीं सेवाओं के लिए १८६५ में पूना में हुए कांग्रेस के ग्यारहवें अधिवेशन का आपको सभापति बनाया गया। उस समय कांग्रेस में अन्दरूनी मतभेद बहुत हो रहे थे, फिर भी आप राष्ट्र की नौका को सफ़ाई के साथ पार ले गये। उस समय सभापति-पद से आपने जो भाषण दिया वह बहुत प्रभावशाली था। करीब तीन घण्टों तक धारा-प्रवाह बोलते गये, जिसमें प्रायः एक बार भी अपने लिखित भाषण को आपने नहीं देखा और श्रोता मंत्रमुग्ध हो निस्तब्ध रहे। जिन लोगों ने यह भाषण सुना था, उनका कहना है कि वह मानवोपरि था। उसके बाद १६०२ में अहमदाबाद में हुए १८ वें अधिवेशन के आप फिर सभापति हुए, जिसमें लगभग दो घण्टों तक आपका भाषण हुआ, जो पहले भाषण से भी अधिक प्रभावशाली और महत्वपूर्ण था।

वंग-भंग के साथ आपके राजनैतिक जीवन का स्मरणीय अध्याय शुरू होता है। आपने वंग-भंग का विरोध किया और उसके ख़िलाफ़ ज़ोरदार आन्दोलन संगठित किया। बंगाल भर को आपने हिला दिया। इतने पर भी जब आन्दोलन सफल न हुआ, तो स्वदेशी और बहिष्कार का झण्डा लहराया और एक सिरे से दूसरे सिरे तक सारे बंगाल में जाग्रति की लहर पैदा कर दी। आपके विचारानुसार स्वदेशी और बहिष्कार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं और वे एक-दूसरे से जुदा नहीं हो सकते। आज पुलिस का लाठी-प्रहार चाहे नई बात न रही हो, लेकिन उस जमाने में वह बिलकुल नई बात थी। फरीदपुर की एक सभा में आपको पुलिस की लाठी का भी शिकार होना पड़ा था।

'सिटी फ़ादर' के रूप में आप बहुत पहले से म्यूनिसिपल मामलों में बहुत दिलचस्पी लेते थे। १८७६ में कलकत्ता कारपोरेशन के आप पहली बार सदस्य चुने गये थे। तबसे १६०६ तक, जबकि न्यू म्यूनिसिपल एक्ट के प्रतिवादस्वरूप आपने इस्तीफ़ा दे दिया, आप उसके एक प्रमुख सदस्य रहे। इसी प्रकार आप कौंसिल के भी सभासद रहे। १८६३ में नई बनी हुई कौंसिलों के लिए पहलेपहल चुने जानेवाले लोगों में आप थे। १८६४ और १८६६ में कलकत्ता-कारपोरेशन की ओर से चुने गये और १८६८ में प्रेसिडेन्सी-डिवीजन की ओर से जिला-बोर्ड ने आपको चुना। १६०० में जिला-बोर्ड के चुनाव की बारी तो नहीं थी, पर म्यूनिसिपल-बिल कौंसिल में विचारार्थ पेश था। इसलिए सर जान वुडबर्न ने उसे रिआयतन चुनाव का मौका दिया और उसने आपको ही दुबारा चुना। १८६५ का सेनिटरी ड्रेनेज एक्ट कौंसिल में मुख्यतः आपके ही कारण

पास हुआ, पर कलकत्ता म्यूनिसिपल एक्ट का विरोध सफल न हुआ। इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए तो आप दोबार खड़े हुए, पर दोनों ही बार असफल रहे। काँग्रेस से अलग होने पर, उन लोगों के साथ जो नरम कहलाने लगे थे, आपने नैशनल लिबरल फ़ेडरेशन की स्थापना की और उसके सर्वप्रथम अधिवेशन (१८१८) के सभापति आप ही चुने गये थे। उसके बाद आप सरकार की नज़रों में चढ़ते गये और 'सर' तथा माण्ट-फोर्ड सुधारों के बाद मिनिस्टर भी बने। निश्चय ही तब आपकी वह लोकप्रियता नहीं रही,पर पूर्व-सेवाओं के लिए आपकी प्रतिष्ठा फिर भी होती रही। और कलकत्ता-कारपोरेशन का जो रूप आज हम देखते हैं वह मुख्यतः मिनिस्टरी-काल के आपके सतत-प्रयत्न का ही शुभ-परिणाम है। अपने आन्दोलन के बीच जब गांधीजी कलकत्ता गये थे तब आपके सम्मानार्थ आपसे मिलने भी गये थे। यही नहीं, अपने और राष्ट्र के विकास-सम्बन्धी जो सुन्दर पुस्तक आपने लिखी थी, उसकी पाण्डुलिपि भी महात्माजी ने गुजरात-विद्यापीठ में सुरक्षित रखने के लिए आपसे मांगी थी, हालांकि रिपन कालेज को देने का वचन दे चुकने के कारण आप उसे गांधीजी को दे नहीं सके थे।

राजनीति के साथ ही समाज-सुधार की भावना भी आपमें विद्यमान थी। आप ब्राह्म-समाजी थे और अपना विवाह अपनी पसन्द से किया था। आपके एक पुत्र और पाँच लड़कियाँ थीं। क्रियात्मक समाज-सुधारक होने के कारण, लड़कियों की समुचित शिक्षा की आपने उपेक्षा नहीं की। समाज-सुधार के बारे में आपका क्या रुख था, यह 'बंगाली' के निम्न उद्धरण से स्पष्ट है:—

"सदियों से हम शक्ति की पूजा करते चले आ रहे हैं; फिर भी हमारा राष्ट्र इतना निर्बल और असहाय क्यों बना हुआ है ? सरस्वती के हम बड़े उपासक हैं; लेकिन हमें उसका प्रसाद बहुत ही कम मिला है। जो पुरोहित धर्म-कृत्यों पर अपना एकाधिकार किये हुए हैं और पूजा-पाठ कराने का ठेका लिये हुए हैं, उनमें से अधिकांश को आज वेदों का उतना ही ज्ञान है जितना कि उस प्राचीन काल में शूद्रों को था जबकि जाति-रूपी लोहे की सलाखों से उनके लिए ज्ञान के बन्द द्वार किये हुए थे। लक्ष्मी की हम आये साल पूजा करते हैं, फिर भी हमारा राष्ट्र कंगाल बना हुआ है।

"कट्टर हिन्दू अपने पूर्वजों द्वारा प्रचीन काल में निर्मित सफाई की कुछ विधियों पर मरे जाते हैं। उदाहरण के लिए, बिना नहाये भोजन करना या रोज कपड़े न धोना पाप समझते हैं। सफ़ाई के इन पुराने नियमों को धर्म मानते हुए भी आधुनिक विज्ञान से सिद्ध नियमों की वे बिलकुल परवा नहीं करते।......इसमें ज़्यादा बहस करने की ज़रूरत नहीं कि कट्टर हिन्दुओं की इतनी कट्टरता......जो पुरानी प्रथाओं में ज़रा भी रद्दोबदल करना अपवित्रता और पाप समझती है, निश्चय ही प्रगति के मार्ग में रुकावट है।"

[illegible] और दिनचर्या का भी आप खूब ध्यान रखते थे। हालांकि काम आप कलकत्ता में करते थे, किन्तु रहते थे कलकत्ता से उत्तर की ओर कोई १३ मील दूर एक गाँव मनिरामपुर में। बाग़बानी का आपको शौक था और अपनी फ़ुरसत का काफी समय आप अपने घर के आसपास लगाये हुए बाग़ में बिताते थे। ६० वर्ष से अधिक उम्र हो जाने पर

भी व्यायाम नियमित रूप से करते रहे। संभवतः यही कारण है कि आपको लम्बी आयु मिली और आयु के अन्तिम दिनों तक आपका स्वास्थ्य औरों की बनिस्बत अच्छा रहा। १९२५ में कलकत्ते में आपका स्वर्गवास हो गया।

भले ही कोई आपके राजनैतिक लक्ष्य या उसे प्राप्त करने के साधनों से मतभेद रक्खे, लेकिन इस बात से शायद ही कोई इन्कार कर सकेगा कि भारतीय राष्ट्र को जाग्रत करने में आपका बहुमूल्य भाग रहा है और स्वदेशी व बहिष्कार की भावना के रूप में राष्ट्र को आपने अमोघ अस्त्र प्रदान किया है।

लालमोहन घोष

[१८४९—१९०९]

उन्नीसवां अधिवेशन, मद्रास—१९०३

लालमोहन घोष कॉंग्रेस के मंच पर तो पहले-पहल छठे अधिवेशन (कलकत्ता, १८९०) में आये, जब कि आपने ब्रैडला साहब के भारत-सरकार-सम्बन्धी बिल पर प्रस्ताव उपस्थित किया था, किन्तु देश के लिए आप कॉंग्रेस के निर्माण से पहले से ही काम कर रहे थे। उससे पहले दो बार देश के मिशन पर और एक बार पार्लमेण्ट की सदस्यता के लिए आप इंग्लैण्ड के चक्कर भी लगा चुके थे, जिसमें दो बार तो भारत लौटने पर भारतीय जनता की ओर से सार्वजनिक सन्मान करके आपका आभार माना गया था और तीसरी बार जिस निर्वाचन-क्षेत्र से पार्लमेण्ट की सदस्यता के लिए उम्मीदवार हुए थे उसके निर्वाचकों ने वहाँ से भारत के लिए विदा होते समय आपको मानपत्र दिया था।

१७ दिसम्बर १८४९ को कृष्णनगर (बंगाल) में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता रायबहादुर रामलोचन घोष ढाका-कालेज के संस्थापकों में से एक थे और बंगाल के न्याय-विभाग में तरक्क़ी

करते हुए खास सदर अमीन के ओहदे तक जा पहुंचे थे। प्रारम्भिक शिक्षा आपकी कलकत्ता में हुई और कलकत्ता-यूनिवर-सिटी की एण्ट्रेन्स (मैट्रिक) परीक्षा में आप सारे प्रान्त में प्रथम रहे। १८६६ में बड़े भाई ने बैरिस्टरी के लिए आपको इंग्लैण्ड भेजा, जहां से १८७३ में बैरिस्टर होकर लौटे और कलकत्ता में बैरिस्टरी करने लगे।

आपके सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ इंडियन सिविल सर्विस और उसकी परीक्षा के सिलसिले में उठे आन्दोलन से हुआ, जिसे नव-निर्मित इंडियन-एसोसियेशन के मंत्री की हैसियत से श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने शुरू किया था। उसके सम्बन्ध में भारतीय विचारों को ब्रिटिश जनता तक पहुंचाने के लिए एक प्रतिनिधि की आवश्यकता थी; आपके रूप में वह मिल गया। १८७६ में, पार्लमेण्ट में पेश करने के लिए ढेरियों दरख्वास्तों के आवेदनपत्र के साथ, आप इंग्लैण्ड पहुँचे। अपनी योग्यता और अपने कौशल से आपने सुप्रसिद्ध जॉन ब्राइट का सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त की और इंग्लैण्ड की सभाओं में भाषण देने शुरू किये। पहला भाषण जॉन ब्राइट की अध्यक्षता में लन्दन के विलीज़रूम में दिया, जिसका इतना असर पड़ा कि चौबीस घण्टे के अन्दर-अन्दर तत्कालीन सरकार ने सिविल-सर्विस का विधान तैयार करके उपस्थित कर दिया। इस सफलता के लिए, वापसी पर, ४ मार्च १८८० को कलकत्ता में आपका उत्साह-पूर्ण स्वागत हुआ और श्री क्रिस्तोदास पाल की अध्यक्षता में सभा करके सार्वजनिक रूप से देश-वासियों की ओर से आपको धन्यवाद देने का प्रस्ताव पास हुआ।

उसके कुछ ही महीने बाद, भारत की आवश्यकतायें ब्रिटिश जनता के समक्ष उपस्थित करने के लिए आपको फिर इंग्लैण्ड जाना पड़ा। उस समय आदिम जातियों की संरक्षक संस्था के वार्षिकोत्सव पर, १६ मई १८८० को, आपने एक बहुत महत्वपूर्ण भाषण दिया। जुलू-नरेश के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति की आलोचना करते हुए आपने कहा, कि "विचारणीय विषय के पक्ष-विपक्ष में अपना कोई स्वार्थ न हो तब तो अंग्रेज़ बड़े अच्छे न्यायाधीश साबित होते हैं, पर जब इससे अन्यथा हो तो वे भी दूसरे मनुष्यों की ही तरह क़मजोरियों से भरे हुए हैं। इसीलिए इंग्लैण्ड के कानून में यह आदर्श रक्खा गया है कि अपने मामले में स्वयं कोई अपना न्यायाधीश न बने।" नवम्बर १८८० की शुरुआत में इस काम को निपटाकर आप हिन्दुस्तान लौटे, जबकि बम्बई के कावसजी इंस्टीट्यूट में माननीय माण्डलिक की अध्यक्षता में सभा करके आपका अभिनन्दन किया गया। बस, इसी समय से आपने भारत के राजनैतिक प्रश्नों में प्रमुख रूप से भाग लेना शुरू किया। १८८३ में इलबर्ट-बिल के विरुद्ध उठे आन्दोलन में आपका जैसा शानदार भाषण हुआ, कहते हैं, वैसा योग्यतापूर्ण और शानदार राजनैतिक भाषण पिछले पचास वर्षों में कोई नहीं हुआ। उसके कुछ मास बाद आप फिर इंग्लैण्ड गये। इस बार पार्लमेण्ट के सदस्य बनने का आपका इरादा था। वहाँ अनेक लिबरल राजनीतिज्ञ आपसे बहुत प्रभावित हुए और कई निर्वाचन-क्षेत्रों ने आपको अपने यहाँ से खड़ा करना चाहा। आखिर डेप्टफ़ोर्ड से आप खड़े हुए, लेकिन होमरूल बिल और लिबरल होने के कारण आयर्लैण्ड वालों के वोटों से आप वंचित रह गये और

दो बार कोशिश करने पर भी असफल रहे। इस प्रकार चुने तो नहीं गये, फिर भी डेप्टफ़ोर्ड वालों ने आपकी प्रशंसा की और आपको एक शानदार मानपत्र दिया, जो सार्वजनिक रूप से लार्ड रिपन के हाथों आपको भेंट किया गया था। १८८४ के अन्त में आप हिन्दुस्तान लौट आये और फिर कलकत्ता में बैरिस्टरी करने लगे। १८९२ के नये सुधारों की कौंसिल में प्रान्त के म्यूनिसिपल समूह के प्रतिनिधि होकर निर्वाचित हुए। कौंसिल में आपने सर चार्ल्स ईलियट के जूरी-नोटिफ़िकेशन पर इतना महत्वपूर्ण भाषण दिया, कि उसको उठा ही लिया गया।

कांग्रेस के मंच पर कलकत्ता में १८९० में हुए छठे अधिवेशन में आये और मदरास में १९०३ में हुए उन्नीसवें अधिवेशन में राष्ट्र ने आपको सभापति-पद का सन्मान प्रदान किया। इस अवसर पर आपने जो भाषण दिया था वह बहुत विद्वत्तापूर्ण था और अबतक उसको कांग्रेस के योग्यतम भाषणों में माना जाता है। वक्ता के ही रूप में आप विख्यात भी बहुत हुए हैं। यहां तक कि जॉन ब्राइट और रोज़बरी जैसे वक्ताओं की उपस्थिति में अंग्रेज़ों की सभाओं में आपने भाषण दिये और उन सभी ने आपकी सराहना की। ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत एक उपनिवेश के एक विख्यात प्रधानमंत्री ने तो आपका भाषण सुन कर आश्चर्य के साथ कहा था—"यह काला आदमी, मि० घोष बोलता तो बहुत बढ़िया है! साफ़-सीधी और विषयानुकूल बात कहता है; और कौन-सी बात कहाँ खतम करनी चाहिए यह बखूबी जानता है।" १९०९ में कलकत्ता में आपका स्वर्गवास हुआ।

सर हेनरी काटन

[१८४५—१९१२]

बीसवां अधिवेशन, बम्बई—१९०४

सर हेनरी काटन उन थोड़े से भारत-हितैषी सहृदय अंग्रेजों में ऊंचा स्थान रखते थे, जो सिविल सर्विस में रहकर भी भारत की वास्तविक उन्नति हृदय से चाहते थे और समय पर सरकार से तीव्र मतभेद प्रकट करते हुए उसकी नाराजगी और क्रोध की परवा नहीं करते थे।

सर हेनरी काटन का जन्म १३ सितम्बर सन् १८४५ को तंजौर के एक गांव में हुआ। काटन-परिवार का संबन्ध भारत से बहुत पुराना था। सर हेनरी काटन के प्रपितामह कप्तान जोजेफ़ काटन ईस्टइण्डिया कम्पनी में नौकर थे और बाद में उसके डाइरेक्टर हो गये। उनके पुत्र जान काटन भी तंजोर में कलक्टर रहे और बाद में डाइरेक्टर बना दिये गये। उनके पुत्र और हेनरी काटन के पिता जोजेफ़ जान काटन ने मदरास की सिविल सर्विस में सन् १८३१ ई० में प्रवेश किया और वहीं हेनरी काटन का जन्म हुआ।

आक्सफ़ोर्ड और लन्दन के किंग्स कालेज में आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की। १८६७ में सिविल सर्विस की परीक्षा देकर भारत आये और २२ वर्ष

की आयु में मिदनापुर जिले के असिस्टैण्ट मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। ग्यारह वर्ष बाद आप चटगांव के कलक्टर बना दिये गये। वहां से आप बोर्ड आफ़ रेवेन्यू के सेक्रेटरी, पुलिस कमिश्नर, कलकत्ता कारपोरेशन के चेयरमैन, बंगाल-सरकार के चीफ़ सेक्रेटरी आदि विभिन्न पदों पर रहे। कुछ समय तक आप लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य भी रहे। १८९२ में सरकार ने आपको सी० एस० आई० का खिताब दिया। सन् १८९६ में आप सरकार के होम सेक्रेटरी और फिर आसाम के चीफ़ कमिश्नर बना दिये गये। सरकार ने आपको के० सी० एस० आई० की उपाधि भी दी थी।

यद्यपि आप उस सिविल सर्विस में आये थे जिसमें नम्रता और सेवा का अत्यन्त अभाव रहता है, तथापि आप इसके अपवाद थे। भारत से कुछ पुराना संबन्ध होने के कारण आप हृदय से भारतीयों को प्रेम करते थे। आप न केवल भारत की स्थिति का और विशेषकर उसमें हुई नवभावनाओं और आकांक्षाओं का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहे, किन्तु उनको उत्साहित और प्रेरित भी करते रहे। आपका यह विश्वास था कि सरकार की भारतीयों पर विश्वास न करने की नीति अनुचित है। भारतीयों को शासन में पूरे अधिकार देने के आप पक्षपाती थे। आप यह मानते थे कि वे अंग्रेजों से किसी तरह कम नहीं हैं। आप समय-समय पर अपने ये विचार उच्चाधिकारियों की अप्रसन्नता की परवा न कर उन्हें जताते रहते थे। पत्रों में भी आप यदा-कदा लिखते रहते थे। १८७९ में आपके 'भारतवर्ष की आवश्यकता और इंग्लैण्ड का कर्तव्य लेख से इंग्लैण्ड में बड़ा आन्दोलन हुआ। १८८५ में आपका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'न्यू इण्डिया' प्रकाशित हुआ। लार्ड रिपन की सुधार-नीति के आप कट्टर समर्थक थे।

आप केवल ब्रिटेन को ही उसका कर्तव्य नहीं बताते रहे, बल्कि भारतीयों को भी राजनैतिक विषयों में दिलचस्पी लेने के लिए प्रेरित करते रहते थे। सरकारी अफ़सरों की इस नीति के कि विद्यार्थियों को राजनीति में भाग नहीं लेना चाहिए, आप विरुद्ध थे। नवीन यूनिवरसिटी-एक्ट का आपने खुल्लमखुल्ला विरोध किया। लार्ड कर्जन के साथ बहुत-से विषयों पर मतभेद प्रकट किया। भारतीयों के प्रति किये जानेवाले अन्याय का भण्डाफोड़ करते हुए आप यह भी भूल जाते थे कि आप सरकारी नौकर हैं। इसका एक उदाहरण दे देना काफी होगा। आसाम के दरिद्र मजदूरों की करुण कहानी सुनाते हुए आपने बड़े लाट की कौंसिल में कहा था—

"यह दुखियों की राम कहानी है। हे लार्ड महोदय, मैंने इस शोचनीय विषय पर बहुत कुछ कहा है। क्या मुझे अपने कथन के समर्थन में अभी कुछ और कहने की भी जरूरत है? क्या यह स्वतः सिद्ध नहीं है? क्या उनकी दुःखपूर्ण स्थिति के प्रति मुझ में क्रोध पैदा न होगा? मैं सच कहता हूं कि इन अभागों की रामकहानी का और इनके साथ जो अन्याय और अनुचित बर्ताव हो रहा है उसका वर्णन करते-करते मेरी नसों का खून खौलने लगा है।" इसतरह की स्पष्टवादिता आपके समस्त सर्विस-काल में रही इस सबका परिणाम निश्चित था, सरकार का असन्तोष। कहते हैं कि आप बंगाल के छोटे लाट बनाये जानेवाले थे, लेकिन आपको वह पद नहीं दिया गया। उच्चाधिकारियों से हमेशा की अनबन के कारण आपने १९०२ में सरकारी नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया और इंग्लैण्ड चले गये।

आप स्वतंत्र होकर भारत के संबन्ध में और भी साहस के साथ प्रचार करने लगे। आपकी इन सेवाओं को भारत भूल न सकता था। १६०४ में बम्बई में होनेवाले कांग्रेस के बीसवें अधिवेशन के आप सभापति बनाये गये। आपका सभापति-पद से दिया हुआ भाषण एक विशेषता रखता है। सबसे पहले आपने ही संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की तरह भारत के लिए स्वराज्य की योजना पेश की थी।

१६०५ में आप पार्लमेण्ट के उम्मीदवार खड़े हुए। कांग्रेस ने भी एक प्रस्ताव द्वारा आपका समर्थन किया। लन्दन में दादाभाई नौरोजी दो संस्थायें कायम कर आये थे। उनमें पूर्ण सहयोग देकर आप बरसों तक इंगलैण्ड में भारत के लिए आन्दोलन करते रहे। पार्लमेण्ट के सदस्य होकर भी आपने भारत को नहीं भुलाया और आप भारत के साथ अधिक उदार नीति बर्तने की आवश्यकता पर सदा ही जोर देते रहे। आप अंग्रेज थे और भारत में शासक बनकर आये थे। पर रहे यहां सेवक बनकर और यहां से लौटे उसके हितैषी होकर। १६१५ में आपके देहान्त से भारत का एक सच्चा, सहृदय और ईमानदार हितैषी इस संसार से उठ गया। भारत-हितैषी अंग्रेजों में आपका नाम सदा ही सबसे पहले कृतज्ञता के साथ लिया जाता रहेगा।

गोपाल कृष्ण गोखले

[१८६६—१९१५]

इक्कीसवां अधिवेशन, काशी— १९०५

श्री गोपाल कृष्ण गोखले को एक शब्द में महान् और एक वाक्य में महान् देशभक्त, महान् लोक-सेवक, महान् वक्ता, महान् राजनीतिज्ञ और महान् अर्थशास्त्री कहा जा सकता है। अपने समय में आप कांग्रेस के कर्णधार और देश के राजनैतिक संग्राम के सेनापति रहे हैं। त्याग और तपोमय सरल जीवन बिताते हुए राष्ट्र-सेवा आपके जीवन का चरम लक्ष्य था।

आपका जन्म सन् १८६६ में कोल्हापुर नगर के एक निर्धन परन्तु संभ्रान्त ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता की जल्दी ही मृत्यु होजाने के कारण बड़े भाई पर आपके पालन पोषण व शिक्षण का भार आ पड़ा। कोल्हापुर में एफ़० ए० पास कर आप बम्बई के उस एलफिंस्टन कालेज में भर्ती हुए, जिसे भारत के अनेक नेताओं और कांग्रेस के अनेक सभापतियों को पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त है। १८ साल की टी आयु में ही आपने बी० ए० पास कर लिया और पूना के 'न्यू

इंग्लिश स्कूल' में शिक्षक नियत हो गये। यही न्यू इंग्लिश स्कूल अब फ़र्गुसन कालेज के नाम से प्रसिद्ध है। सर्वश्री चिपलूनकर, नामजोशी, आगरकर, आपटे और तिलक के साथ आपने भी अपने अनवरत उद्योग, परिश्रम और आत्म-त्याग से इस स्कूल को शानदार कालेज बनाने में पूरा सहयोग दिया। आप केवल ७०) मासिक पर इस कालेज में गणित, इतिहास और अर्थशास्त्र पढ़ाते रहे। विद्यार्थियों और प्रोफ़ेसरों में आप बहुत अधिक प्रिय थे। विद्यार्थियों से आपका सम्बन्ध केवल कालेज के अन्तरों तक ही सीमित नहीं रहता था, लेकिन अन्य समय भी आप उनके संसर्ग में रहते थे। भारत की राजनैतिक व सामाजिक समस्याओं की ओर उनका ध्यान खींचने और उनमें देश प्रेम, सेवा तथा त्याग की भावना पैदा करने की आप कोशिश करते थे। आप अपने विषयों के प्रकाण्ड पण्डित थे। अपनी योग्यता और प्रतिभा के कारण शिक्षा के क्षेत्र में आपका लोहा माना जाता था। २७ वर्ष की ही आयु में आप बम्बई यूनिवरसिटी के 'फैलो' चुन लिये गये।

१८८७ का वह दिन आपके जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण था, जिस दिन आप पूना में स्वर्गीय महादेव गोविन्द रानाडे से मिले। रानाडे के जीवन से आप बहुत प्रभावित हुए। वस्तुतः आपके भावी चरित्र की रचना उन्हींके द्वारा हुई। रानाडे ने आपकी प्रतिभा व कुशाग्र बुद्धि और सेवा व त्याग की वृत्ति को तुरन्त जान लिया और आपको देशहित के कार्यों की ओर प्रेरित किया। रानाडे को गोखले के रूप में एक योग्य शिष्य और एक योग्य सहायक मिला और रानाडे के रूप में गोखले को मिल गया एक योग्य गुरु और अपनी योग्यता प्रकट

करने का उत्तम अवसर। रानाडे द्वारा स्थापित सार्वजनिक सभा में आप भी काम करने लगे। इससे आपका जहां सेवा क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया, वहां आपकी कार्यशीलता भी कई गुना बढ़ गई। रानाडे की इच्छानुसार सार्वजनिक सभा के 'क्वार्टर्ली रिव्यू' का सम्पादन आप १८८७ से करने लगे। डैकन एज्युकेशन सोसायटी के कुछ समय तक मंत्री भी रहे। पूना के अंग्रेज़ी-मराठी साप्ताहिक 'सुधारक' का भी आपने कुछ समय तक सम्पादन किया। चार वर्ष तक बम्बई प्रादेशिक सभा के आप मन्त्री रहे और १८९५ में पूना कांग्रेस के भी मन्त्री हो गये। रानाडे की आदेशानुसार भारतीय अर्थशास्त्र का आपने खूब अध्ययन किया और कुछ ही समय में इस विषय पर प्रामाणिक विद्वान् समझे जाने लगे। भारत के व्यय की जांच के लिए नियुक्त वेल्बी कमिशन के सामने गवाही देने के लिए दिनशा ईदलजी वाचा के साथ आप भी चुने गये। इंग्लैण्ड में कमीशन के सामने आपने जो गवाही दी और विभिन्न सभाओं में भारत की स्थिति पर आपने जो भाषण दिये, उनसे आपके भारतीय अर्थशास्त्र और राजनीति सम्बन्धी असाधारण ज्ञान और गंभीर पाण्डित्य का परिचय मिला। यहां आने पर आप बम्बई कौंसिल के सदस्य नियुक्त हुए। कौंसिल में आपकी देशभक्ति, वाक्पटुता और अगाध पाण्डित्य का सिक्का जम गया। आपकी वादविवाद शक्ति अपूर्व थी। जब भी बोलने खड़े होते थे, अकाट्य प्रमाणों और तर्कों की झड़ी लगा देते थे। १९०५ में आप सुप्रीम कौंसिल के सदस्य चुने गये। वहां आपके इन गुणों का विकास और भी अच्छी तरह हुआ। उन दिनों लार्ड कर्ज़न वायसराय थे। वह

बहुत योग्य और प्रतिभाशाली समझे जाते थे, लेकिन वह भी आपके आगे निरुत्तर हो जाते थे। आपका उन दिनों का जीवन बहुत ही शानदार रहा है। बजट पर आपकी वक्तृतायें इतनी सारगर्भित और आश्चर्यजनक होती थीं कि प्रति वर्ष आपके भाषण बहुत उत्सुकता से सुने और पढ़े जाते थे। बजट के आंकड़ों की बारीक से बारीक भूलें आपकी दृष्टि से ओझल न हो सकती थीं। नमक कर घटाने का मुख्य श्रेय आपको ही है। अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा के आप प्रबल समर्थक थे और प्रति वर्ष इस आशय का बिल पेश किया करते थे, लेकिन आपको अन्त तक उसमें सफलता नहीं मिली। यूनिवरसिटी बिल का आपने इतनी योग्यता से विरोध किया कि लार्ड कर्ज़न के न बोलने का निश्चय कर लेने पर भी आपको जवाब देनेके लिए बोलना पड़ा। ऐंग्लो इण्डियन पत्रों ने भी यह स्वीकार किया था कि लार्ड कर्ज़न के उस भाषण से आपके भाषण का महत्व कुछ कम नहीं हुआ था। सिडीशन बिल का भी आपने बड़े जोरों के साथ विरोध किया था।

कांग्रेस के अत्यन्त प्रारंभिक काल में ही आपका सम्बन्ध उस के साथ हो गया था। आप प्रायः प्रत्येक अधिवेशन में उपस्थित हुआ करते थे और विविध विषयों पर भाषण दिया करते थे। बरसों आप शहर या प्रान्तीय काँग्रेस के प्रमुख अधिकारी रहे। १६०५ में आप भारत की ओर से आन्दोलन करने के लिए इंग्लैण्ड गये थे। वहां आपने राजनैनिक आन्दोलन की धूम मचा दी थी। पचास दिन में ४५ व्याख्यान दिये, कितने ही लेख लिखे, संवाददाताओं और पार्लमेण्ट के सदस्यों से मिले। उसी वर्ष काशी में होनेवाले काँग्रेस के

अधिवेशन के सभापति चुने गये । अपने भाषण में राजनैतिक शस्त्र के रूप में बहिष्कार का समर्थन करनेवाले आप सर्व प्रथम सभापति थे। आपने लार्ड कर्ज़न के शासन की औरंगज़ेबी शासन से उपमा दी थी। १९०७ में सूरत की कांग्रेस में नरम गरम-दल का जो विस्फोट हुआ, उसका आभास १९०६ में ही मिल चुका था। गरमदल के नेता थे लोकमान्य तिलक और नरमदल के गोपाल कृष्ण गोखले। १९०७ से १९१४ तक कांग्रेस नरमदल के हाथों में रही और १९१४ तक आप उसके प्रधान कर्णधार रहे। आप स्वभाव से ही इतने नरम और मधुर थे कि आपके जीवन में तीव्रता तथा उग्रता कहीं भी दीखने में नहीं आती। प्रेम और सेवा की भावना आपमें पूरी तरह समाई हुई थी। ब्रिटिश शासन को नष्ट करने के बजाय आप उसमें ऐसे सब सुधार चाहते थे, जिसमें भारतीय भी अंग्रेज़ों के समान अपनी उन्नति कर सकें। आप सरकार से यथासंभव पूरा सहयोग और आवश्यकता होने पर पूरा विरोध करने के पक्षपाती थे। जनता की आकांक्षायें आप वाइसराय तक पहुंचाते थे और सरकार की कठिनाइयां कांग्रेस तक। इसलिए लोगों और सरकार के बीच आपकी स्थिति भी कभी बहुत विषम हो जाती थी। गरमदल आपकी नरमी की निन्दा करता था और सरकार आपकी उग्र की। फिर भी आपकी लोक-प्रियता अन्त समय तक बनी रही। जीवन के अन्तिम दिनों आप यह शिकायत करने लगे थे कि "नौकरशाही स्पष्टतः स्वार्थप्रिय और खुल्लमखुल्ला राष्ट्रीय आकांक्षाओं के विरुद्ध होती जा रही है।"

सूरत के झगड़े के बाद आप दक्षिण अफ्रीका गये और वहां की परिस्थिति का आपने अध्ययन किया। वहां से लौटकर गांधीजी के सत्याग्रह संग्राम की सहायता करने में आपने अपने को लगा दिया। १६०६ की कांग्रेस में आपने सत्याग्रह की प्रशंसा की। लाखों रुपया यहां से दक्षिण अफिका के सत्याग्रह के लिए जमा किया। शर्तबन्दी कुली-प्रथा उठाने के लिए भी सफल आन्दोलन किया।

दक्षिण अफिका के सत्याग्रह में सहयोग देने का एक सुन्दर परिणाम यह हुआ कि गान्धीजी को आपने अपना बना लिया। गान्धीजी ने सत्य ही लिखा है कि "राजनैतिक क्षेत्र में गोखले ने जीते जी जैसा आसन मेरे हृदय में जमाया और जो देहान्त के बाद आज भी जमा हुआ है, वैसा और न जमा सका।" गांधीजी भारत में पहले-पहल सर फिरोजशाह, लोकमान्य तिलक और गोखले से मिले थे। उन्होने बहुत सुन्दर शब्दों में तीनों का वर्णन किया है। वह लिखते हैं कि "सर फिरोजशाह मुझे हिमालय, लोकमान्य समुद्र और गोखले गंगा की तरह मालूम हुए। मैं उस गंगा में नहा सकता था। हिमालय पर चढ़ना मुश्किल था, समुद्र में डूबने का डर था, लेकिन गंगा की गोदी में खेल सकते हैं, उसमें डोंगी पर चढ़कर तैर भी सकते हैं।" वस्तुतः गांधीजी के लिए भारत का कार्य क्षेत्र सुगम बनाकर गोखले ने गांधीजी की और भारत की बड़ी भारी सेवा की है।

भारत-सेवक-समिति आपका बहुत महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य है। केवल ७५ रु० मासिक वेतन लेकर आप स्वयं त्यागमय जीवन बिताते रहे थे। जीवन निर्वाह-मात्र के वेतन पर आजन्म मातृभूमि की सेवा

का व्रत लेनेवाले कार्यकर्ताओं की आवश्यकता आप बहुत समय से अनुभव कर रहे थे। त्याग और तपोमय जीवन के बिना राष्ट्र की सेवा नहीं हो सकती, इस तत्व को आपने बहुत पहले ही समझ लिया था। इसी उद्देश से १२ जून १९०५ को आपने इस संस्था की स्थापना की। इस समिति के मुख्य उद्देश हैं जन्मभूमि के प्रति प्रेम, त्याग और सेवा, शिक्षा-प्रसार, लोकमत की जागृति, सभी जातियों में सहयोग व प्रेम स्थापित करना तथा अछूतोद्धार। यही संस्था वस्तुतः आपका जीवन-स्मारक है।

आपका सम्पूर्ण जीवन सेवा, त्याग, तपस्या और सादगी का जीवन है। एक बुढिया के यह पूछने पर कि बड़े परिवारवाले आदमी होकर सिर्फ ७५ रु० मासिक से अपना खर्च कैसे चलाते हैं? इसका आपने बहुत ही अच्छा उत्तर दिया था कि 'देश में ऐसे अनेक हैं, जिनको दो बार भी पूरा भोजन नहीं मिलता, मेरा खर्च तो बहुत ज्यादा है।'

जब सरकार ने आपको के० सी० आई० ई० का ख़िताब दिया, तो आपने नम्रतापूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया। तत्कालीन अन्य कांग्रेसी नेताओं की तरह यदि आप भी चाहते तो कोई ऊँचा सरकारी ओहदा लेकर आराम की जिंदगी गुजार सकते थे।

इस तरह उत्कट देश-भक्ति, देश के लिए कठोर परिश्रम, महान् स्वार्थ-त्याग और देशसेवा मय जीवन व्यतीत करते हुए राजर्षि गोखले ने १९ फरवरी १९१५ को इस लोक से प्रयाण किया। लोकमान्य तिलक के शब्दों में आप वस्तुतः "भारतवर्ष के हीरे, महाराष्ट्र के रत्न और देशभक्तों के शिरोमणि थे।"

दादाभाई नौरोजी

[१८२५---१६१७]

दूसरा अधिवेशन, कलकत्ता—१८८६
नवां अधिवेशन, लाहौर—१८९३
बाईसवां अधिवेशन, कलकत्ता—१९०६

जिस व्यक्ति ने कांग्रेस की स्थापना के भी तीस वर्ष पूर्व से भारत की सेवा में अपना समस्त दीर्घ जीवन अर्पित कर दिया, भारत के उद्धार के लिए अविश्रान्त परिश्रम किया, अपनी कलम को भी कभी छुट्टी नहीं दी, कांग्रेस को स्थापित करने और पुष्ट बनाने में प्रमुख भाग लिया और उसे शासन-सम्बन्धी सर्वसाधारण की शिकायतें दूर करने का प्रयत्न करनेवाली जन-सभा से बढ़ाते-बढ़ाते स्वराज्य प्राप्ति के निश्चित उद्देश से काम करनेवाली राष्ट्रीय-महासभा बना दिया और अन्त तक कांग्रेस के साथ रहकर इंग्लैण्ड व भारत में कांग्रेस के झण्डे को ऊँचा रखा, वह महान् व्यक्ति वृद्ध पितामह दादाभाई नौरोजी थे।

दादाभाई नौरोजी के पूर्वज पारसियों में पुरोहिताई का काम करते थे। आपका जन्म ४ सितम्बर १८२५ को बम्बई में हुआ। ४ साल बाद पिता के देहान्त हो जाने से माता पर आपके पालन पोषण का पूर्ण भार आ पड़ा। बुद्धिमती माता ने आपके जीवन निर्माण पर बहुत ध्यान दिया। दादाभाई ने अपनी मां के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा था कि

"सच तो यह है कि मैं जो कुछ हूं, माता की बुद्धि और चेष्टा का फल हूं।" माता धनाभाव से पुत्र को न पढ़ा सकती, यदि आजकल की तरह उन दिनों शिक्षणालयों में विद्या बिका करती। आप किसी तरह एलफिंस्टन इन्स्टीट्यूट मे भर्ती हो गये। अपनी तीव्र प्रतिभा और परिश्रम के कारण आपको कालेज में लोकप्रिय होने में अधिक समय नहीं लगा हर एक परीक्षा में आप इनाम पाते। गणित और विज्ञान में आपकी विशेष रुचि थी। आपकी प्रतिभा से प्रभावित होकर बम्बई एजुकेशन बोर्ड के अंग्रेज़ सभापति ने आपको विलायत जाकर क़ानून पढ़ने की सलाह दी और आर्थिक सहायता देने का वचन दिया। अपने अभिभावकों के विरोध के कारण वहां न जा सके और एलफिंस्टन स्कूल में असिस्टैन्ट हैड-मास्टर हो गये। कालेज के गणित व पदार्थ-विज्ञान के यूरोपियन प्रोफेसर के मरने पर आप प्रोफेसर नियत किये गये। उन दिनों किसी भारतीय का उक्त कालेज में प्रोफेसर बनना अनहोनी बात थी। आप पहले भारतीय प्रोफेसर थे। १८४५ से १८५५ तक आप अध्ययन कार्य करते रहे।

अध्ययन कार्य के साथ-साथ आप सार्वजनिक जीवन के विविध क्षेत्रों में भी काम करते रहे। बम्बई में कन्या शिक्षा का प्रारम्भ आप ही के द्वारा हुआ। पहला गर्ल स्कूल खुलने का श्रेय आपको ही है। आप 'कन्या पाठशालाओं के जनक' कहे जा सकते हैं। आपके विविध क्षेत्रों के कार्य का परिचय देने के लिए उन कुछ संस्थाओं के नाम ही लिख देना काफी होगा, जिनसे आपका इन दस वर्षों में सम्बन्ध रहा। वे संस्थायें ये हैं—स्टूडैण्ट्स लिटरेरी साइ-

एटिफिक सोसायटी, गुजराती ज्ञान-प्रचारक-सभा, बम्बई एसोशियेशन पारसी धर्म सुधारक मण्डली, विक्टोरिया एण्ड एडवर्ड म्यूजियम और पुत्री पाठशाला। प्रायः इन सभी संस्थाओं में आप विशेष भाग लेते थे। इतने कार्यों से भी आपको संतोष न था, इसलिए १८५१ में 'रास्त-गुफ्तार' (सत्यवादी) नाम का पत्र निकाला। समय-समय पर आप विभिन्न विषयों पर गम्भीर विवेचनात्मक निबन्ध भी लिखते रहे।

१८५५ में आपने व्यापार की ओर ध्यान दिया और 'कामा एण्ड कम्पनी' की लण्डन स्थित कोठी का काम करने लण्डन चले गये। लण्डन जाकर व्यापार करते हुए आपने सार्वजनिक सेवा का वह क्रम जारी रखा, जिसका सूत्रपात् अध्यापन काल में हो चुका था। सार्वजनिक सेवा जब स्वभाव का अंश बन जाता है, तब निकम्मा नहीं बैठा जा सकता। व्यापार से अतिरिक्त समय विभिन्न पत्रों के लिए लेख लिखने में बीतने लगा। आपका मुख्य विषय था भारत और भारतीयों की शोचनीय स्थिति। भारत का दुःख ब्रिटिश सरकार को सुनाने का बीजारोपण सबसे पहले आपने किया। लण्डन इण्डियन सोसायटी और ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन दोनों संस्थाएँ आपके परिश्रम का फल हैं। इन दोनों संस्थाओं का उद्देश्य था इंग्लैण्ड के प्रमुख राजनीतिज्ञों और जनता को भारत की परिस्थितियों, आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से परिचित करना। ईस्ट इण्डियन एसोसियेशन को बहुत से भारत हितैषी अंग्रेज़ों का सहयोग प्राप्त हो जाने से इस कार्य में बहुत प्रगति हुई। विभिन्न मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्रों में भारत के विभिन्न पहलुओं पर प्रामाणिक लेख और छोटे-छोटे

ट्रैक्ट प्रकाशित कर इन संस्थाओं ने अपना कार्य शुरु किया। आप इतना अधिक व्यस्त रहते कि आपको आराम करने के लिए एक क्षण भी नहीं मिलता। आपका यह सिद्धान्त था कि यह संसार आराम करने के लिए नहीं है, यह तो कार्य-क्षेत्र है। आपने लिखा है कि "एक दिन मेरे हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं जो कुछ बना हूं, सब जनता की बदौलत। मेरा फर्ज है कि मैं अपनी योग्यता, कार्य क्षमता शरीर, मन और आत्मा से—जो कुछ भी मेरे पास है, उस सबसे जनता की सेवा करूँ।" आपका सम्पूर्ण जीवन इसी विचार के अनुरूप व्यतीत हुआ। कुछ समय तक आप लण्डन युनिवरसिटी में गुजराती के प्रोफेसर होकर भी रहे।

१२-१३ साल तक लंदन में भारत के लिए महान् आन्दोलन करके आप १८६६ में भारत लौटे। यहां आपका विराट् स्वागत हुआ और आपकी सेवाओं की स्मृति में तीस हजार रुपये की थैली आपको भेंट की गई। आपने उसमें से एक पैसा भी अपने पर व्यय न कर सारी रक़म देश के कामों में लगा दी।

यहां आकर आपने भारत की आर्थिक स्थिति का और भी गम्भीर अध्ययन किया और यह सिद्ध करने का यत्न किया कि ब्रिटिश शासन में हर भारतीय की औसतन् वार्षिक आय २०) से अधिक नहीं है, जब कि प्रत्येक व्यक्ति से ३) टैक्स लिया जाता है। आपकी यह स्थापना आगे जाकर बहुत प्रसिद्ध हुई। इस समय के लिखे हुए आपके अनेक लेख आज भी भारतीय अर्थशास्त्र के विद्यार्थी के लिए पढ़ने की चीज़ हैं। १८७३ में पार्लमेंट की सिलैक्ट कमेटी के सामने गवाही देने आपको

फिर इंग्लैण्ड जाना पड़ा। १८७४ में वापस आने पर बड़ौदा नरेश ने आपको अपना दीवान बनाया। लेकिन आप वहां अधिक न रह सके। कुछ साल तक आप बम्बई की स्थानीय संस्थाओं में रहकर काम करते रहे। १८८५ में आप बम्बई कौंसिल के सदस्य नियत किये गये। उसी साल आपने कांग्रेस की स्थापना में प्रमुख भाग लिया।

लन्दन में रहते-रहते आपने यह अनुभव किया था कि भारतीयों के दुःखों को दूर करने के लिए भारत की अपेक्षा लन्दन में अधिक प्रचार करने की आवश्यकता है। उस समय के अन्य कांग्रेसी नेताओं का भी ब्रिटिश सरकार के न्याय पर विश्वास था। इसीलिए कांग्रेस ने लंदन में प्रचार की ओर काफ़ी ध्यान दिया। आपने पार्लमेण्ट में भारत की आवाज सुनाने के लिए उसके सदस्य होने का निश्चय किया। पार्लमेण्ट को आप युद्ध का रणक्षेत्र समझते थे। इसी उद्देश से आप लंदन गये। लेकिन वहां सफलता न मिलने पर उसी साल वापस चले आये। कांग्रेस का कलकत्ते में जो दूसरा अधिवेशन हुआ, उसके आप ही सभापति हुए। १८८७ में लंदन वापस जाकर आप लेखों और भाषणों द्वारा भारत के लिए आन्दोलन करने लगे। बाद में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि का भी आपको सहयोग प्राप्त हुआ। १८९२ में पार्लमेण्ट के चुनाव में आप फिर खड़े हुए और सफल हुए। इस विजय के उपलक्ष में १८९३ में लाहौर में होनेवाली कांग्रेस के आप फिर सभापति बनाये गये। पार्लमेण्ट में आप भारत के लिए निरन्तर लड़ते झगड़ते रहे। १८९५ में आपके प्रयत्नों से भारतीय आर्थिक स्थिति की जांच के लिए एक शाही कमीशन बनाया गया। लिबरल दल के पतन के साथ यह

पार्लमेण्ट तीन साल में ही भंग हो गई। १६०५ में आप चुनाव में फिर खड़े हुए, पर सफल नहीं हुए। १६०६ में आप तीसरी वार कांग्रेस के सभापति चुने जाकर भारत आये। बम्बई में आपका विराट् स्वागत किया गया।

कलकत्ता की १६०६ की कांग्रेस एक विशेष महत्त्व रखती है। बंग-भंग के कारण राष्ट्र में एक हलचल सी हो रही थी। नरम और गरम दलों का निर्माण हो चुका था। कांग्रेस का सभापतित्व झगड़े की चीज़ था। लेकिन आपके नाम के प्रस्ताव पर दोनों दल चुप हो गये। इस अधिवेशन में आपने कांग्रेस के मंच पर से पहले-पहल उस शब्द का प्रयोग किया, जो आज प्रत्येक भारतीय की ज़बान पर चढ़ा हुआ है। वह शब्द है स्वराज्य। देश की मांग इससे पहले इतने स्पष्ट और निश्चित शब्दों में नहीं रखी गई थी। उसके बाद आप कांग्रेउ कार्यों में विशेष भाग न ले सके।

उस समय आपकी अवस्था ८१ वर्ष की हो चुकी थी। फिर भी आप लंदन पहुंचे और भारत के लिए आन्दोलन करते रहे। पर, आपका वयोवृद्ध शरीर यह अन्याय सहन। नहीं कर सका और आप बीमार पड़ गये। डाक्टरों की सलाह से भारत में अपने गांव में आकर रहने लगे। कई वर्षों तक आपका गांव वरसोवा तीर्थ बना रहा। भारत के नेता आते और मातृ भूमि के इस आजन्म सेवक के पुण्य दर्शन करते, सलाह लेते और अधिक शक्ति व प्रेरणा प्राप्त कर वापस चले जाते। ३० जून १६१७ को भारत के इस पितामह का देहावसान हो गया और भारत का एक महान् सेनापति उठ गया।

रासबिहारी घोष

[१८४५—१६२१]

तेईसवां अधिवेशन, सूरत—१९०७

चौबीसवां अधिवेशन, मदरास—१९०८

सूरत में १६०७ में होनेवाले कांग्रेस के बदनाम अधिवेशन के, जोकि आपस के झगड़ों के कारण दरअसल हो ही नहीं पाया, सभापति चुने जानेवाले डा० रासबिहारी घोष एक ऐसे व्यक्ति थे जो पैदा तो हुए थे मध्यम श्रेणी के एक परिवार में परन्तु अपनी प्रतिभा और अध्ययनशीलता के कारण अपने समय में चोटी पर पहुँच गये थे। यह ठीक है कि उस समय भी आपके विचार 'गरम' नहीं थे और सूरत में झगड़ा खड़ा होने का मुख्य कारण भी यही था, परन्तु थे आप सच्चे अर्थों में भारतीय। आपने खुद ऊँचे उठकर ही भारत का मान नहीं बढ़ाया, बल्कि देश और उसकी प्रतिष्ठा पर जब भी कोई प्रहार हुआ तब आप सदा उसके विरोध में खड़े होते हुए दिखाई दिये।

बंगाल के तोरेकोना गाँव ज़िला बर्दवान में २३ दिसम्बर १८४५ को आपका जन्म हुआ था। अपने पिता बाबू जगबन्धु घोष के आप सब से बड़े पुत्र थे। प्रारम्भिक शिक्षा बाँकुड़ा क़स्बे में ही हुई, जहां से कलकत्ता आकर १८६० में आपने एएट्रेंस-परीक्षा पास की। १८६१

की शुरुआत में कलकत्ता में ही प्रेसिडेंसी-कालेज में पढ़ने लगे। १८६२ में एफ़० ए० में पास होने वालों में सर्व प्रथम रहे; जनवरी १८६५ में बी० ए० में लगभग वैसी ही सफलता मिली और जनवरी १८६६ में फर्स्ट क्लास आनर्स के साथ अंग्रेज़ी में एम० ए० किया, जो किसी भारतीय के लिए पहली ही बात थी। १८६७ में बी० एल० भी फ़र्स्ट-क्लास में पास किया और सब विद्यार्थियों में सर्व प्रथम रहने के कारण १००) मूल्य का सुवर्ण पदक पाया। फ़रवरी १८६७ में वकालत शुरू की, लेकिन अध्ययन फिर भी जारी रहा और चार साल बाद आनर्स-इन-लॉ के इम्तिहान में शरीक होकर पास हुए। धीरे-धीरे आपकी योग्यता और वकालत की सर्वत्र ख्याति फैलने लगी।

क़ानून के आप प्रकाण्ड पंडित थे। हिन्दू, मुसलिम और इंग्लिश क़ानूनों का तुलनात्मक अध्ययन आपका बहुत अधिक था। रात दिन पढ़ने में लगे रहने और स्मृति बहुत तेज़ होने के कारण आपने इसमें बहुत ज्यादा प्रगति की और सबने आपका लोहा माना। १८७५-७६ में आप कलकत्ता-यूनिवरसिटी की टैगोर प्रोफ़ेसर ऑफ़ लॉ की चेयर के लिए चुने गये, जिसके सिलसिले में भारत के बन्धक क़ानून पर आपके बारह व्याख्यान हुए। वे इतने ऊँचे दर्जे के थे कि पाठ्य-पुस्तक के लिए पसन्द किये गये और सुप्रीम कोर्ट के लॉ-मेम्बर डा० ह्विट्ले स्टोक्स ने इस सम्बन्धी क़ानून बनाते समय उनसे बड़ी मदद ली, जिसका अपनी 'एंग्लो-इंडियन-कोड्स' पुस्तक में उन्होंने उल्लेख भी किया है। इसके बाद ही आपकी मान-प्रतिष्ठा खूब बढ़ने लगी थी और वकालत भी बहुत चमक उठी थी।

१८७७ में आप पहले-पहल कलकत्ता-यूनिवरसिटी की बी० ए०० परीक्षा के परीक्षक बनाये गये और १८७६ में यूनिवरसिटी के तत्कालीन वाइस-चान्सलर सर विलियम मार्कबी के कहने पर यूनिवरसिटी के 'फेलो' नामज़द हुए। १८८४ में आपको यूनिवरसिटी से 'डॉक्टर ऑफ़ लॉ' की डिग्री मिली और १८८७ में यूनिवरसिटी-सिण्डिकेट के सदस्य चुने गये, जो १८९९ तक रहे। १८८९ में बंगाल-कौंसिल के सदस्य नियुक्त हुए और १८९१ में, सर रमेशचन्द्रदत्त की मृत्यु हो जाने पर, सुप्रीम कौंसिल के सदस्य नियुक्त हुए और १८९३ में फिर उसके सदस्य बनाये गये। १८९३ में कलकत्ता-यूनिवरसिटी की लॉ-फ़ैकल्टी के प्रधान चुने गये, और १८९५ तक रहे।

सार्वजनिक जीवन में आप बहुत भाग नहीं लेते थे। आप तो अपना अधिकांश समय अध्ययन-मनन में ही लगाते थे। परन्तु मौक़ा पड़ने पर उससे पीछे भी नहीं रहते थे। वंग-भंग का आपने विरोध किया, स्वदेशी का समर्थन किया और युनिवरसिटी-कन्वोकेशन के भाषण में लार्ड कर्ज़न ने भारतीयों पर जो लांछन लगाये थे, उसके विरोध में १० मार्च १९०५ को जो मशहूर सभा हुई थी, उसके सभापति भी आप ही हुए थे। उसमें जिस होशियारी से आपने लार्ड कर्ज़न के शासन-काल की निन्दा की, उससे ज्ञात होता है कि यह आपको खूब मालूम था कि राजनीतिक जीवन की पेचीदा समस्याओं को किस तरह भुगताना चाहिए। कौंसिल में प्रायः सभी मामलों में आपने दिलचस्पी ली और दो महत्वपूर्ण बिल स्वयं पेश किये, जिससे १८९६ में सी० आई० ई० बनाकर सरकार ने आपका सम्मान किया।

इन दो बिलों में एक तो ज़ाब्ता फ़ौजदारी में यह धारा जोड़ने का था कि जिस आदमी की अचल सम्पत्ति, किसी डिक्री के लिए बेच दी गई हो, वह यदि तीस दिन के अन्दर-अन्दर इतनी रक़म जमा कर दे जो सम्पत्ति की बिक्री की रक़म से पांच प्रतिशत ज्यादा हो, तो उसकी सम्पत्ति लौटाई जा सकती है। दूसरा बिल संयुक्त परिवार के सम्पत्ति विभाजन के बारे में था, जिसमें यह विधान रक्खा गया था कि संयुक्त परिवार का कोई हिस्सेदार यदि मकान के दूसरे हिस्से के लिए उतनी ही रक़म देने को तैयार हो जितनी कोई अन्य व्यक्ति लगाता हो तो वह हिस्सा दूसरे को न देकर उसे दे दिया जायगा। कहना न होगा कि इन दोनों बिलों को सरकार ने मंजूर करके क़ानून बना दिया। सिडीशस-मीटिंग्स एक्ट का विरोध करते हुए अपने क़ानूनी पाण्डित्य के ज़ोर पर आपने बताया था कि यह क़ानून शायद रूस को छोड़कर किसी भी देश के क़ानून से मेल नहीं खाता, हालांकि राजद्रोहियों की कहीं भी कमी नहीं है बल्कि आधुनिक यूरोप में अनार्किस्टों व सोशलिस्टों की गुप्त संस्थाओं का जाल बिछा हुआ है। बजट की भी आपने बड़ी योग्यता-पूर्ण आलोचनायें कीं। इन्हीं सब कारणों से जनता व सरकार दोनों ने आपका सम्मान किया। सरकार ने बाद में आपको 'सर' की उपाधि दी, इधर देश ने कांग्रेस का सभापतित्व प्रदान करके आपका सम्मान किया।

कांग्रेस के साथ आपकी सहानुभूति सर्वविदित है। कांग्रेस के प्रारम्भिक वर्षों में आप उसके प्रतिनिधि हुए और बाद में उसकी कार्रवाई में क्रियात्मक भाग भी लेते रहे। १९०६ में कलकत्ता में हुई बाईसवीं

कांग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष हुए थे, पीछे सूरत में होनेवाली १९०७ की कांग्रेस के सभापति चुने गये। नरम-गरम के झगड़े में वह कांग्रेस भंग हो जाने पर १९०८ में मद्रास में जो कन्वेन्शन हुआ, उसके भी आप ही सभापति थे। उसमें कांग्रेस भक्तों के लिए दो महत्वपूर्ण ध्येय बनाये गये थे। आपस के झगड़ों को लेकर कांग्रेस का मज़ाक़ उड़ाने वालों को आपने खूब जवाब दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा के आप समर्थक थे और औद्योगिक शिक्षा के लिए आपने भारी रक़में दान की थीं। १९१० में कायस्थ-महासभा के सभापति पद से इलाहाबाद में आपने जो भाषण दिया था, उससे मालूम पड़ता है कि साम्प्रदायिकता से आप बिलकुल मुक्त थे। स्त्री-शिक्षा के लिए आपने अपनी माता के नाम पर पदक के रूप में एक पुरस्कार की स्थापना की थी।

वस्तुतः आप अध्ययन-जीवी व्यक्ति थे। आपका ज़्यादातर समय अध्ययन में जाता और रात को हमेशा देर तक पढ़ते रहते, जिससे सुबह नौ बजे सोकर उठते। अदालत की छुट्टियों के बीच विदेशों का ज्ञान प्राप्त करने निकल जाते और ऐसा करते हुए सीलोन ही नहीं बल्कि फ्रांस, इटली व इंग्लैण्ड तक का आपने भ्रमण किया। विवाह आपने दो बार किया, पर रहे निःसन्तान और आखिरी दिनों में विधुर जीवन ही बिताना। हां, नाते-रिश्तेदारों की आप हमेशा फ़िक्र रखते और उन्हें सहायता पहुंचाते रहे। पोशाक में आप सदा हिन्दुस्तानी रहे। अंग्रेज़ी के इतने विद्वान् होने पर भी सदा आप अचकन ही पहनते रहे।

१६१७ में आपको कलकत्ता में वकालत करते हुए पचास साल हो चुके थे, इसलिए वकील-असोसियेशन ने और कलकत्ता-यूनिवरसिटी ने भी उस अवसर पर मान पत्र देकर आपका सम्मान किया था।

इसके बाद यश और वैभव का जीवन व्यतीत करते हुए १६२१ की २८ जनवरी को आप इस संसार से बिदा ले ली और भारत का एक चमकता हुआ सितारा अस्त हो गया।

विलियम वेडरबर्न

[१८३६—१६१८]

पाँचवा अधिवेशन, बम्बई—१८८९
पच्चीसवां अधिवेशन, इलाहाबाद—१९१०

भारत-हितैषी सर विलियम वेडरबर्न राजर्षि गोखले के शब्दों में अत्यन्त आदरणीय व्यक्ति और आधुनिक ऋषि थे। उनकी दृष्टि में आपका व्यक्तित्व इतना महान्, उत्साहप्रद और स्फूर्ति-दायक था कि उसका वर्णन लेखनी या वाणी से नहीं किया जा सकता। प्रेम, सम्मान और श्रद्धा का वह विषय है। निस्तब्ध, शान्त या मौन रह कर उसका चिन्तन किया जाना चाहिए। इसमें अतिशयोक्ति बिलकुल भी नहीं है। आधी शताब्दी तक निरन्तर भारत की निःस्वार्थ सेवा करने वाले कांग्रेस के संस्थापक इस महापुरुष के यथार्थ स्वरूप को अभिव्यक्त करने के लिए महादेव गोविन्द रानाडे ने भी ठीक ही कहा था कि "जितने अंग्रेज़ों से उनका परिचय हुआ, उनमेंसे कोई भी सर विलियम वेडरबर्न के साथ खड़ा नहीं किया जा सकता।"

आपका जन्म ग्लौसैस्टर शायर (इंग्लैण्ड) में २५ मार्च १८३६ को हुआ था। अपने अनेक सम्बन्धियों के समान आपने भी एडिनबरा यूनिवरसिटी में शिक्षा प्राप्त कर इण्डियन सिविल सर्विस की परीक्षा दी

और उसमें सफल हो २५ नवम्बर १८६७ को बम्बई प्रान्त की सिविल-सर्विस में प्रवेश किया।

१८६७ से १८८५ तक आपने विविध पदों पर काम किया। बरसों तक आप जिला मजिस्ट्रेट, कुछ समय तक हाईकोर्ट के जज, तथा बम्बई गवर्नर की कौंसिल के सदस्य रहे और बाद में बम्बई सरकार के पोलिटिकल सेक्रेटरी होगये। उसके बाद आपने अन्य भी कितने ही ऊँचे पदों पर काम किया, लेकिन पच्चीस वर्षों के इस सेवा काल में एक बात जो स्पष्ट रूप से प्रजा के सामने रही, वह यह है कि आप जहां गये वहां ही आपने अपनी सहृदयता, कर्तव्य-बुद्धि, लगन और सेवा-भाव से लोकप्रियता प्राप्त की। सब से अधिक ध्यान आपका जिस प्रश्न की ओर गया, वह था भारतीय किसानों की समस्या। आपने भारतीय किसानों की आर्थिक समस्या का अत्यन्त सूक्ष्मता से निरीक्षण और अध्ययन किया। उन दिनों होनेवाले दुर्भिक्षों से तो आपका हृदय विदीर्ण हो गया। आपने अनुभव किया कि ब्रिटिश सरकार की शासन-नीति के कारण ही ग्रामीण भारतीयों की अवस्था दिन प्रति-दिन खराब होती जा रही है। आप सदा उच्च अधिकारियों का ध्यान भारत के इस महान् किन्तु दरिद्रतम अंग की ओर खींचते रहे। १८८२ में आपने 'पूना के पुरन्दर तालुके के किसानो की आर्थिक स्थिति के सुधार के लिए एक योजना तैयार की। इस योजना का स्थूल रूप यह था कि सब कर्ज़दार किसानों का कर्ज़ महाजनों से समझौता कर उन्हें सरकार चुका दे और एक कृषि बैंक खोलकर बहुत कम सूद पर कृषकों को रुपया दिया जाय, जो छोटी छोटी किश्तों में उनसे वसूल किया जाय। उस

योजना को बम्बई गवर्नर के पास भेजने से पूर्व किसानों और महाजनों को भी आपने उससे सहमत कर लिया। बम्बई गवर्नर सर जेम्स फ़र्गसन और तत्कालीन वायसराय ने उस योजना को स्वीकृत कर भारत-मन्त्री की अनुमति के लिए उसके पास भेजा। कई वर्ष उसके बारे में पत्र-व्यवहार करने और आपत्तियां उठाने में बिता देने के बाद भी १८८७ में बतौर परीक्षण के अमल में लाने तक से इन्कार कर दिया गया।

१८८५ में आप सिविल सर्विस से अलग हो गये, लेकिन भारत की सेवा से आप अन्त तक विमुख नहीं हुए। स्वतन्त्र होकर और भी अधिक उत्साह और लगन के साथ आप भारत की सेवा में लग गये। जिन समस्याओं का अध्ययन आपने नौकरी के दिनों में किया था, उनके लिए आन्दोलन करने का काम आपने इंग्लैण्ड में शुरू किया। १८८६ की कांग्रेस के अध्यक्ष पद से दिये हुए भाषण में आपने कहा था कि "एक चौथाई सदी तक मैंने भारत की सेवा की है और भारत का नमक खाया है। मैं आशा करता हूं कि अपना शेष जीवन भी भारत की सेवा में अर्पित कर दूंगा।"

इसमें सन्देह नहीं कि जीवन के अन्तिम दिन तक आपने सेवा के अपने इस व्रत को निभाया। लेखनी और वाणी द्वारा आप भारतीयों के लिए जोरों के साथ आन्दोलन करते रहे। भारतीय किसानों की दुरवस्था आपके हृदय में घर कर गई थी और उनकी स्थिति की जांच करने पर आप बराबर ज़ोर देते रहते थे। १८९३ में आप पार्लमेंट के सदस्य चुने गये। दादाभाई नौरोजी भी उस समय पार्लमेंट के सदस्य

थे। आप दोनों ने मिलकर भारतीय पक्ष को ज़ोरों के साथ पार्लमेंट के सामने रखना शुरू किया।

१८९३ से १९०० तक आप पार्लमेंट के सदस्य रहे। वहां आप बराबर ब्रिटिश शासन को भारतीयों की शोचनीय अवस्था का मुख्य कारण बताते रहे। आप कहा करते कि शासन प्रबन्ध में भारतीयों की कोई आवाज़ नहीं है। हम उनके कष्टों को जान नहीं सकते। जूता कहां काटता है, यह पहननेवाला ही बता सकता है, पहनानेवाला नहीं। भारतीय किसान की आर्थिक अवस्था और दुर्भिक्षों की जांच निष्पक्ष रूप से करने पर ज़ोर देते हुए आप कहा करते कि हम खूब बहस के बाद अपने एक-एक पैसे के व्यय करने की स्वीकृति देते हैं, लेकिन भारत के बजट को जिसका सम्बन्ध तीस करोड़ भारतीयों से है, अन्धाधुन्ध पास कर देते हैं। भारत सम्बन्धी कोई भी प्रश्न उपस्थित होने पर आपका जानकारी से भरा हुआ जोरदार भाषण अवश्य होता। इण्डियन फैमिन यूनियन के अध्यक्ष, फ़ाइनेंस कमीशन के सदस्य और हाउस आफ कामन्स की पोलिटिकल कमेटी के चेयरमैन रह कर भी आपने भारत की सेवा की।

कांग्रेस के तो आप संस्थापकों में से ही एक थे। १८८९ में कांग्रेस का सभापति चुन कर आपको आपकी सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया। उस कांग्रेस की यह भी एक विशेषता ही थी कि उसमें प्रतिनिधि भी १८८९ ही आये थे। आपकी सबसे बड़ी सेवा ब्रिटिश कांग्रेस कमेटी का संचालन करना था। कांग्रेस के कर्णधारों की उन दिनों यह धारणा थी कि ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश पार्लमेंट के सामने

ज़ोरों से आन्दोलन किया जाना चाहिए। इसीलिए ब्रिटिश कांग्रेस कमेटी की स्थापना की गई थी। बरसों आप उसके प्रधान रहे। उसके लिए दस हजार से पचास हजार रुपये तक प्रति वर्ष खर्च किया जाता था। भारत से मिलनेवाली अपनी पेंशन आप भारत के लिए ही खर्च देते थे। १८६७ से १६१७ तक लगातार छब्बीस अधिवेशनों में आप की सेवाओं के लिए आपके प्रति कांग्रेस की ओर से कृतज्ञता प्रगट की जाती रही है।

कहने को राजनैतिक अधिकारों, किन्तु वास्तव में सरकारी नौकरियों तथा पदों के बटवारे के लिए हिन्दू-मुस्लिम एकता की चर्चा का सूत्रपात १६०७ के लगभग हुआ था। जब यह चर्चा जोरों पर थी, तब हिन्दू और मुसलमान नेताओं का ध्यान एकाएक आपकी ओर गया। ७२ वर्ष की वृद्धावस्था में आपको इंग्लैण्ड से भारत आने के लिए निमन्त्रित किया गया। आपके सभापतित्व में दोनों पक्ष के नेताओं की एक कान्फ्रेंस हुई। उसका आयोजन करने और उसको सफल बनाने का अधिकांश श्रेय आपको ही था। अनेक समस्यायें उसमें सुलझा ली गई थीं। सर आगाखां को भी आपने सहमत कर लिया था। उसी वर्ष अलाहाबाद में कांग्रेस के आप दुबारा सभापति चुने गये थे। आपकी ही प्रेरणा से सर आगाखां नागपुर में मुस्लिम लीग का अधिवेशन एक दिन पहिले समाप्त करके स्पेशल ट्रेन से मुसलमान-प्रतिनिधियों के साथ कांग्रेस में सम्मिलित होने के लिए पहली जनवरी को अलाहाबाद पहुँचे थे। वहां समझौता बोर्ड बनाने का निश्चय करके एक कमेटी बना दी गई थी। उसके बाद आपने समस्त भारत का भ्रमण किया। आप

जहां गये वहां आपका अपूर्व स्वागत हुआ। पूना की सार्वजनिक सभा, बम्बई की रिपन क्लब और कलकत्ता के नागरिकों की ओर से आपको मानपत्र दिये गये। १९०४ में भी आप सर हेनरी काटन के साथ भारत आये थे।

१९१७ तक आप इंग्लैण्ड में भारत के लिए आन्दोलन करते रहे। ब्रिटिश पत्रों में लेख लिखने के अलावा आपने भारतीय समस्याओं पर कई छोटी-छोटी पुस्तिकायें भी लिखीं। क्रिमिनल प्रोसीजर, आर्बिट्रेशन कोर्ट, एग्रिकल्चर बैंक और ग्राम्य-पंचायत आदि विषयों पर आपके पैम्फलेट बहुत अच्छे हैं। एक पुस्तक का नाम है "स्कैल्टन एण्ड दी जुबिली फीस्ट।" कांग्रेस के संस्थापक मि० ह्यूम का जीवन चरित भी आपने लिखा है। माण्ट फोर्ड सुधारों के लिए ८० वर्ष की वृद्धावस्था में भी आपने खूब आन्दोलन किया। वृद्ध शरीर और जीर्ण स्वास्थ्य उस मेहनत का साथ नहीं दे सके।

भारत के लिए आमरण सेवाव्रत का अनुष्ठान करने वाले इस अलौकिक महापुरुष का देहावसान १९१८ की २५ मार्च को होगया।

बिशन नारायण दर

[१८६४—१६१६]

छब्बीसवां अधिवेशन, कलकत्ता—१९११

"बिशन नारायण मेरे राजनैतिक और साहित्यिक गुरू थे। वह अंग्रेज़ी साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित थे। यूरोप के इतिहास का उन्होंने गहरा अध्ययन किया था। रोम, यूनान और खासकर फ्रांस की राज क्रान्ति का इतिहास उनकी ज़बान पर था। विद्यार्थियों को वह हमेशा राजनीति में हिस्सा लेने की सलाह देते थे। उन्हें दुःख था कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को राजनीति और नागरिक शास्त्र पढ़ाने का कोई प्रबन्ध नहीं है।

"कांग्रेस के जन्म के समय युक्त-प्रान्त में कोई राजनीतिक जीवन न था। वह नींद में बेखबर था। कांग्रेस के चौथे अधिवेशन में पंडित अयोध्यानाथ और पण्डित विशम्भरनाथ बड़े पशोपेश के बाद शरीक हुए। पण्डित मदनमोहन मालवीय उस समय एक अनजान अवस्था में थे। प्रान्त की ऐसी परिस्थिति में पण्डित बिशन नारायण इंग्लैण्ड से लौटते ही कांग्रेस के आन्दोलन में कूद पड़े। युक्त-प्रान्त से वे ही सबसे पहले कांग्रेस के प्रतिनिधि थे। १८८७ में लखनऊ से स्वर्गीय

गंगाप्रसाद वर्मा ने 'एडवोकेट' नामक अंग्रेज़ी अर्ध-साप्ताहिक-पत्र निकाला। पण्डित जी ही उसके पहले सम्पादक थे। कांग्रेस की राज-नीति पर वह उस पत्र में बड़े ज़ोरदार लेख लिखते थे। वह युक्त-प्रान्त के राजनीतिक आदर्शों के जन्मदाता थे, उसके बाद दूसरे नेताओं ने उनके काम को आगे बढ़ाकर प्रसिद्धि प्राप्त की।" माननीय श्री तेज-बहादुर सप्रू ने इलाहाबाद में एक सार्वजनिक सभा में ऊपर के शब्दों में पण्डित विशननारायण दर का परिचय दिया था।

आपका जन्म सन् १८६४ में युक्त-प्रान्त के बाराबंकी ज़िले में हुआ था। आपका खानदान लखनऊ के काश्मीरी ब्राह्मणों में बड़ा प्रतिष्ठित समझा जाता था। आपके पितामह पण्डित हरीराम दर संस्कृत के विद्वान् और फारसी के आलिम थे। जीविका की तलाश में वह अपनी जन्मभूमि काश्मीर छोड़कर लखनऊ आये। उनकी विद्वत्ता का स्वागत हुआ। वह कलकत्ता में अवध दरबार की ओर से शाही अखबार-नवीस मुकर्रर हुए। आपके पिता भी एक सरकारी पद पर थे। कलकत्ता हाई कोर्ट के पहले हिन्दोस्तानी जज पण्डित शम्भूनाथ दर आपके ही चाचा थे।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। अपने खानदान के रिवाज के अनुसार आपको शुरू में उर्दू और फारसी की ही शिक्षा दी गई। घर की तालीम खत्म होने पर आपको मिशन हाई स्कूल में अंग्रेज़ी पढ़ने के लिए भरती कर दिया गया। जब आप अंग्रेज़ी मिडिल में पढ़ते थे, तभी कोर्स की किताबों के अलावा, आपने स्माइल की 'सेल्फ हेल्प' और 'करेक्टर' नामक पुस्तकें पढ़ीं। आपके कोमल दिमाग पर

इन पुस्तकों का बड़ा असर हुआ। जब आप एंट्रेंस में पहुंचे आपको कार्लाइल की मशहूर पुस्तक 'हीरो एण्ड हीरो वरशिप' मिल गई। उस पुस्तक से भी आपके चरित्र निर्माण में बड़ी सहायता मिली। एन्ट्रेंस की परीक्षा पास करने के बाद आप लखनऊ के कैनिंग कालेज में एफ० ए० में भरती होगये। कालेज में अंग्रेज़ी भाषा से आपका प्रेम बढ़ गया। अपनी कालेज की किताबों के अतिरिक्त आपने मशहूर अंग्रेज़ी लेखक हर्बर्ट स्पेन्सर, ह्यूम, ड्रेपर, स्टुअर्ट मिल आदि की रचनाओं का अध्ययन किया। मिल की जनतंत्रात्मक रचनाएं आपको बहुत प्रिय थीं। कालेज में ही आपने अंग्रेज़ी साहित्य, दर्शन, राजनीति, मनोविज्ञान आदि का अच्छा अध्ययन कर लिया था। आप कालेज के समस्त विद्यार्थियों में अपने अध्ययन और विद्वत्ता के लिए मशहूर थे। कैनिंग कालेज के प्रिन्सिपैल उन दिनों डाक्टर ह्वाइट थे। थोड़े ही दिनों में आप ह्वाइट के अत्यन्त प्रिय शिष्य बन गये।

अंग्रेज़ी साहित्य के गहन अध्ययन ने आपके दिल में विलायत जाने की उमंग भर दी, किन्तु विलायत जाना उन दिनों आसान काम न था। भारतीय समाज समुद्र-यात्रा को महान् पाप समझता था। माता पिता को राजी करना बड़ा कठिन था, किन्तु बिशननारायण इरादा करके छोड़ देनेवाले जीव न थे। ज्यों-त्यों करके अपनी माँ को राजी कर लिया और एक दिन इलाहाबाद जाने के बहाने विलायत जाने के लिए बम्बई रवाना होगये। लन्दन पहुंचकर आपने बैरिस्टरी पढ़ने का निश्चय किया और मिडिल टेम्पल में नाम लिखा लिया। क़ानून का अध्ययन तो आपका नाममात्र को ही होता, अधिक समय तो

हक्सले, टिंडल, डारविन, लैकी, बर्क, कार्लाइल, ड्रेपर, मिल आदि मशहूर लेखकों की रचनाएँ पढ़ने में बीतता। अंग्रेज़ी शायरी से भी आपको विशेष दिलचस्पी थी। शेक्सपियर, बायरन, शैली, कीट्स, टेनीसन के हज़ारों पद्य आपको कण्ठाग्र थे।

जिन दिनों आप लन्दन में थे उन्हीं दिनों विलायत के राजनीतिक रंगमंच पर ग्लैडस्टन का बोलबाला था। उनकी उदार राजनीति ने इंग्लैण्ड के वातावरण में एक नई विचार धारा बहाई थी। अनुदार विचारों पर जनसत्तात्मक विचार विजय पा रहे थे। आपके युवक-हृदय पर इन राजनीतिक हलचलों का गहरा असर हुआ। विलायत में ही स्वर्गीय लालमोहन घोष और श्री नारायण चन्दावरकर से आपका परिचय हुआ। वे दोनों सज्जन पार्लमेंट के मेम्बरों को भारत की राजनीतिक स्थिति का दिग्दर्शन कराने गये थे। आपके भावुक हृदय पर इस परिचय का अत्यधिक असर हुआ। तीन साल बीत जाने पर यथा समय आपको बैरिस्टरी का सर्टिफ़िकेट मिल गया और सन् १८८७ के प्रारम्भ में आप स्वदेश लौट आये।

आप जब स्वदेश लौट कर आये तो काश्मीरी समाज में काफी आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। आपही पहले काश्मीरी युवक थे जिन्होंने विलायत यात्रा की थी। कुछ मालदार काश्मीरियों ने धर्म का झण्डा फहरा दिया और 'धर्म संकट में है' की दोहाई शुरू कर दी, इस दल ने आपको जाति-च्युत कर दिया। कुछ नवयुवकों ने पंडित जी का साथ दिया। दो पार्टियां बन गईं। एक का नाम था 'धर्म सभा' और दूसरी का 'बिशन सभा'। स्वर्गीय पं० मोतीलाल नहरू नौजवानों की

पार्टी में थे और उनके बड़े भाई वंशीधर जी पुरानी पार्टी में। बिशन पार्टी का खयाल था कि समुद्र यात्री प्रायश्चित करके शुद्ध हो सकता है, किन्तु समाज के कठमुल्ले कोई समझौता करने को तैयार न थे। बिशन-पार्टी ने यह तय किया कि इस पार्टी का कोई भी स्त्री-पुरुष, लड़का या लड़की पुरानी पार्टीवाले का छुआ पानी तक न पिये, यद्यपि चमार-पासी का छुआ खाने-पीने में उसे सकोच न था। इस आपसी बहिष्कार के कारण जल्दी ही सुलह हो गई।

सामाजिक झगड़ो से फुर्सत पाकर आप उसी वर्ष सन् १८८७ में मद्रास कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में सम्मिलित हुए। उस समय आप केवल २३ वर्ष के थे। युक्त प्रान्त की ओर से कांग्रेस में सम्मिलित होनेवाले आप ही पहले प्रतिनिधि थे। इस छोटी अवस्था में आपने वहां जो वक्तृता दी थी, उसे सुनकर ह्यूम साहब ने कहा था कि "किसी दिन यह युवक राजनीति का धुरन्धर नेता होगा।"

पंडितजी ने बैरिस्टरी पास तो कर ली थी किन्तु बैरिस्टरी की ओर उनकी कोई विशेष रुचि नहीं थी। उनका अधिक समय साहित्य सेवा और राजनीति में बीतता था। उनके हृदय में आत्म-सम्मान की आग थी। १८९४ के कांग्रेस-अधिवेशन में शस्त्र क़ानून को मिटाने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पर बोलते हुए आपने कहा था—"यह गुलामी का ऐसा बन्धन है जिसे हमने निरंकुश से निरकुश स्वेच्छाचारी के समय में भी नहीं पहना। मुसलमानी काल में भी शस्त्र क़ानून नहीं था।" १८९७ की कांग्रेस में बोलते हुए आपने कहा था—"सरकार कहती है कि मुल्क में भयानक अशान्ति और राजद्रोह है और उसका

दमन आवश्यक है।' इसका यह अर्थ है कि पचास वर्ष का ब्रिटिश शासन व्यर्थ गया। जैसे-जैसे शिक्षा की प्रगति होती है, वैसे-वैसे हम अंगरेज़ों के सम्पर्क में ज़्यादा आते जाते हैं और जितना अधिक हम उनके सम्पर्क में आते हैं उतनी ही उनके प्रति हमारी नफ़रत बढ़ती जाती है।" १८९९ की लखनऊ कांग्रेस की रिपोर्ट की भूमिका में आपने लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन का जिक्र करते हुए लिखा है—"विस्मृत भूतकाल की खाक पर, एक ऐसे स्थान में, जहां हमारे पूर्वज राष्ट्रीयता और राजनैतिक झगड़ों से बेखबर खुशी से जीवन व्यतीत करते थे, आज अनेकों जातियों मज़हब और सम्प्रदाय के लोग मिलकर एक भवन निर्माण कर रहे हैं, जहां मराठे और बंगाली, पंजाबी और मदरासी हिन्दू और मुसलमान, सिख और ईसाई, जैन और पारसी एक आशा, एक विश्वास और एक भविष्य की कल्पना लेकर एकत्रित हुए हैं। इस विशाल पंडाल के सुन्दर सभा मंडप के नीचे बैठ कर कवि के उस सुनहले स्वप्न-जगत की वे सृष्टि कर रहे हैं जिसमें विविध भाषाओं और जातियों के लोग प्रेम की एक छत्र-छाया में विचरण किया करेंगे।" कांग्रेस को सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य बनाने की ओर पंडितजी का विशेष ध्यान था। उन्होंने लिखा था—"यदि यथेष्ट कार्यकर्ता हों तो कांग्रेस को चन्दे में हमेशा छोटी रकमें जमा करनी चाहिएँ। इस कार्यक्रम से हम जनता के अधिक निकट जा सकेंगे और सर्वसाधारण को कांग्रेस की राजनीति की ओर आकर्षित कर सकेंगे।" अप्रेल १९११ में बरेली में होनेवाली प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के आप सभापति निर्वाचित हुए और उसी वर्ष दिसम्बर में कलकत्ता कांग्रेस के सभापति भी चुने

गये। कांग्रेस के सभापति के पद से दी गई आपकी वक्तृता बड़ी मार्मिक थी। उसमें आपने कहा था—"हर प्रगतिशील संस्था में एक जोशीली जमात होती है और उससे संस्था को लाभ ही होता है। मैं जानता हूं कि नरम प्रकृति कभी-कभी कार्यहीनता बन जाती है और खतरे से बचने की भावना भय में परिणत हो जाती है। मेरा विश्वास है कि भारत को साहसी और जोशीले व्यक्तियों की आवश्यकता है। हमें छिन्न-भिन्न आशाओंवाले किंकर्तव्य विमूढ़ लोगों की ज़रूरत नहीं है। हमें ऐसे साहसी और उत्साही वीरों की आवश्यकता है जिनकी हर सांस में विद्रोह हो, और जिनका जीवन एक तूफ़ान हो।"

देश की दुर्दशा का चित्र खींचते हुए आपने कहा था—"सोचिए, सभ्यता के पैमाने में हम कहां खड़े होते हैं? जब कि हर हज़ार पीछे केवल चार स्त्री और अठारह पुरुष शिक्षित हैं, जब कि करोड़ों इन्सानों को हम अछूत समझते हैं, जब कि हमारे यहां पांच वर्ष से भी कम आयु की लाखों विधवाएं हैं, जब कि हम समुद्र-यात्रा को महान् पातक समझते हैं, जब कि हिन्दू यह नहीं समझते की साढ़े छः करोड़ मुसलमान उन्हींके बन्धु हैं और मुसलमान यह नहीं समझते कि चौबीस करोड़ हिन्दुओं की क़िस्मत के साथ उनकी क़िस्मत नत्थी है, तब स्वराज्य का नाम लेने से भी क्या लाभ? राजनैतिक स्वराज्य के लिए आप बेशक प्रयत्न करें, किन्तु याद रखिए जब तक आप अपनी सामाजिक अवस्था को उन्नत नहीं बनाते, तब तक आप देश का वास्तविक कल्याण नहीं कर सकते।" इन पंक्तियों के कहने वाले के हृदय में कितनी आग होगी, इसकी कल्पना तो कीजिए।

लखनऊ म्युनिसिपैलिटी के आप कई वर्षों तक सदस्य रहे। १९१४ में आप इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गये किन्तु बाद में अपनी अस्वस्थता के कारण इस्तीफ़ा दे दिया। अनिवार्य शिक्षा के आप प्रबल समर्थक थे।

आप लेखक और कवि भी बड़े ज़बर्दस्त थे। आपकी लिखी हुई चीज़ों ने बड़ी ख्याति पाई थी। साइन्स आफ़ दी टाइम्स, दि डिके आफ़ जीनियस इन इण्डिया, एजूकेशन इन इण्डिया, दी फार्मेशन आफ़ ओपीनियन, क्रिटीसीज़्म आफ़ उर्दू लिटरेचर आदि आपकी मशहूर रचनाएं हैं। सर रासबिहारी घोष, गोपाल कृष्ण गोखले, फ़ीरोजशाह मेहता, विलियम डिगवी आदि आप से बड़े प्रभावित थे। गोखले कहा करते थे कि विद्वत्ता में भारत में दो ही आदमी असीम हैं, एक विशन-नारायण दर और दूसरे रासबिहारी घोष। आपकी स्मरण शक्ति अपूर्व थी। उर्दू शायरों में आपको 'आतिश' 'ग़ालिब' और 'अनीस' बहुत पसन्द थे। स्वयं भी शेर और रुबाइयां लिखते थे और मुशायरों में शरीक होते थे। आपकी कविता का एक नमूना यह है—

"असर हो सुनने से कानों को, या न हो, लेकिन—
जो फ़र्ज था वह अदा कर चुकी ज़बां अपना।
जब न सूझी राह हक़, गुमगश्त गाने दहर को—
शेख़ कोई हो गया कोई बिरहमन हो गया।
नियते पाक ही काफ़ी है तहारत के लिए—
न वज़ू चाहिए ज़ाहिद, न तयम्मुम मुझको।
है बेकारी भी, इस खुम ख़ाने आलम में बाकारी—

जो खाली बैठे हैं वे उम्र का पैमाना भरते हैं।
बच्चों को माँ की गोद भी मकतब से कम नहीं—
इस मद्रसे में हाजते लौ-व-क़लम नहीं।"

एक बार कुतुब मीनार देखने आप गये। देखकर आपने एक चौपदा लिखा—

"दुनिया की अजीब हमने हस्ती देखी,
पहुंचे जो बुलन्दी पै तो पस्ती देखी,
मीनार से कुतुब के जो की हमने निगाह,
उजड़ी हुई दिल्ली की ये बस्ती देखी।

इस प्रान्त और इस देश को आपसे बड़ी आशाएं थीं, किन्तु दुर्भाग्य से चालीस वर्ष की अवस्था में ही आप तपेदिक के शिकार हो गये। इस मर्ज ने आपके सारे अरमान चूर कर दिये। स्वास्थ्य के लिए वर्ष में ७-८ मास का समय आपका अल्मोड़ा में बीतता। नियम और संयम के ही कारण इस भयंकर बीमारी को आप १२ वर्ष तक खींच ले गये। इस भयंकर बीमारी का आक्रमण भी आपकी मानसिक शांति को भंग नहीं कर सका। आप सदा हंसते दिखाई देते थे। अध्ययन भी पूर्ववत् जारी रहा। किन्तु जनता की असली सेवा की इच्छा मन की मन में ही रह गई। पण्डित मोतीलाल जी आपको 'सेज आफ अल्मोड़ा' कहा करते थे।

गंगाप्रसाद वर्मा और इक़बाल नारायण मसालदान आपके अन्यतम मित्रों में से थे। इन दोनों की मृत्यु ने आपका सारा उत्साह भंग कर दिया। १६१६ में जब लखनऊ में कांग्रेस होने को थी तो आप

स्वागतसमिति के स्वागताध्यक्ष चुने गये थे। ४ नवम्बर को आप लखनऊ लौटे। स्टेशन से पालकी में आप घर लाये गये। उसी समय लोगों ने देख लिया था कि मृत्यु ने आपके सौम्य मुख पर अपनी छाप लगा दी है। अवस्था दिन ब दिन खराब होती गई और १९ नवम्बर १९१६ को प्रातःकाल आपने अपने अभागे देश से बिदा ले ली। मृत्यु के समय आपकी अवस्था ५२ वर्ष की थी। आप अपने पीछे अपनी कोई सन्तान नहीं छोड़ गये, किन्तु क्या यह कीर्ति कुछ कम है कि अपने प्रान्त के कांग्रेस प्रेमियों के सबसे पहले पथ-प्रदर्शक आप ही थे।
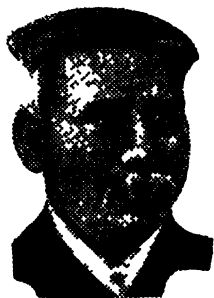
रघुनाथ नरसिंह मुधोलकर

[१८५७—१९२१]

सत्ताइसवां अधिवेशन, बांकीपुर—१९१२

पिछले दिनों, जबकि सब एकमात्र राजनीति का ही ध्यान करते थे, तब उसके साथ-साथ औद्योगिक प्रगति और समाज-सुधार पर भी उतना ही ज़ोर देनेवालों में श्रीयुत रघुनाथ नरसिंह मुधोलकर का स्थान बहुत ऊंचा है। किसानों के भारी ऋण और गरीबी एवं आर्थिक उन्नति और कला-कौशल की शिक्षा के मामलों में आप विशेष रुचि रखते थे।

१६ मई १८५७ को धूलिया (खानदेश) में आपका जन्म हुआ था। आपके पिता का नाम था श्री नरसिंहराव वह खानदेश के ज़िला जज की अदालत में मुहाफ़िज़ दफ्तर थे। पितामह भी खानदेश के मामलतदार (तहसीलदार) रहे थे। वैसे आपका मूल निवास दक्षिण महाराष्ट्र था और आपके पूर्व-पुरुष मराठा-साम्राज्य के समय पेशावर के दरबार में वकालत करते थे। प्रारम्भिक शिक्षा आपकी धूलिया में हुई। कुछ समय एरण्डोल में रहे, जब कि आपके पिता वहाँ सब-रजिष्ट्रार थे। कहानी और इतिहास की विशेष कर मराठा-इति-

हास की पुस्तकों का आपको बहुत शौक था। दस वर्ष की आयु में सबसे बड़े भाई बलवन्तराव आपको बरार ले गये, जहाँ वे हेडमास्टर थे और फिर शिक्षा-विभाग के डिप्टी इंस्पेक्टर हो गये थे। वहाँ आपकी अंग्रेज़ी शिक्षा शुरू हुई और तीन बरस वहाँ बिताकर हाई स्कूल की पढ़ाई के लिए धूलिया लौट आये। आप तेज़ विद्यार्थी थे। परीक्षाओं में प्रथम आते और पुरस्कार लेते रहे। १८७३ में धूलिया हाई स्कूल से मैट्रिक पास किया। १८७४ में बम्बई के एलफिंस्टन-कालेज में भर्ती हुए। यहां से १८७७ में बी० ए० पास किया। उसके बाद शीघ्र ही एलफिंस्टन कालेज के 'फेलो' नियुक्त हुए और इतिहास, तर्कशास्त्र एवं राजनैतिक अर्थशास्त्र पढ़ाने लगे। १८८० में एल० एल० बी० पास किया। इसके बाद बरार में जाकर वकालत शुरू की, जहां वकालत करनेवाले सर्वप्रथम एल-एल० बी० आप तथा आपके साले श्री बी० ए० दिवेकर ही थे। पहले १८८१ में अकोला में जमे। वहां एक साल में ही बहुत तरक्की कर ली। बाद में जुडीशियल कमिश्नर की अदालत अमरावती चले जाने पर, १८८२ में, आप भी अमरावती चले गये। कोई चौथाई सदी तक वहां वकालत की और खूब धन और यश अर्जन किया।

कमाई के साथ-ही-साथ प्रान्त व देश के सार्वजनिक जीवन में भी भाग लेना शुरू कर दिया। जहां और लोग एकमात्र राजनीति का ही ध्यान करते थे, आपने औद्योगिक प्रगति एवं समाज-सुधार पर भी उतना ही ज़ोर दिया। इस दिशा में आपने अमली क़दम यह रक्खा कि कुछ मित्रों के सहयोग से बरार ट्रेनिंग कम्पनी लिमिटेड की स्थापना की और

स्वयं उसके मंत्री बने। वस्तुतः आपका पहला सार्वजनिक काम यही था, जिसमें आगे चलकर आपने काफी सफलता प्राप्त की। राजनैतिक लोकमत तैयार करने के लिए पत्र निकालने का विचार सूझा और 'विदर्भ' नाम का पत्र निकाला, जो १६ वर्ष से अधिक समय तक जनता की सेवा करता रहा। इसमें प्रकाशित होनेवाले अंग्रेज़ी लेख ज्यादातर आपके ही होते थे। १८८५ में बरार में डफ़रिन-फण्ड की स्थापना में आपने भाग लिया और उसके जीवन-सदस्य बन गये। बरार के सार्वजनिक जीवन को बम्बई-प्रान्त की बराबरी पर लाने के लिए जिन्होंने प्रयत्न किया उनमें आप मुख्य हैं। १८८६ में बरार-सार्वजनिक-सभा की स्थापना मुख्यतः आपके प्रयत्न से हुई थी और श्री एम० बी० जोशी के साथ आप १८६८ तक उसके मंत्री रहे। उसके द्वारा विभिन्न विषयों पर सरकार को जो आवेदन पत्र भेजे गये वे सब आप के तैयार किये होते थे।

म्यूनिसिपल और प्रान्तीय कार्य में आप सदा मुस्तैदी से संलग्न रहे। १८ वर्ष तक अमरावती सिटी म्यूनिसिपैलिटी के सदस्य रहे और समाचार पत्रों व सरकार को दिये जानेवाले आवेदन पत्रों द्वारा प्रान्तीय मामले उठाते रहे। नये सिरे से पैमाश होकर मालगुज़ारी का नया बन्दोबस्त होने से १८६० से १६०० के बीच के वर्षों में बरार में बहुत हलचल मची। पैमायश-अफ़सर ने बम्बई के सर्वे एण्ड सेटलमेण्ट का अनुसरण करके कर में बहुत ज्यादा वृद्धि का प्रस्ताव किया। इसका ज़ोरों से विरोध हुआ और १८६१-६२ में हज़ारों की उपस्थिति में सभायें हुईं, जिनमें आपके और श्री जोशी के भाषण हुए। यही नहीं

बल्कि आपने एक विद्वत्तापूर्ण आवेदनपत्र तैयार किया, जिसमें नई पैमायश तथा मालगुज़ारी वृद्धि की दलीलों का खोखलापन बताया और तब भारत-सरकार ने पैमायश-अफ़सर व स्थानिक सरकार के प्रस्तावों में आंशिक संशोधन किये। किसानों के भारी ऋण-भार पर भारत-सरकार के होम-डिपार्टमेण्ट ने जो नोट तैयार किया, उस पर 'सार्वजनिक सभा' की सम्मति लगभग ८० फुल्सकेप पृष्ठों में तैयार की। इस सम्बन्ध में आपकी स्थिति पूँजीपतियों और उनके समर्थकों द्वारा आम तौर पर ग्रहण की जानेवाली स्थिति से भिन्न है। आपने महाजनों तथा व्यवसाइयों द्वारा काश्तकारों के शोषण को आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से बड़ा ख़तरा माना और प्रस्तावित उपाय से असहमति दरसाते हुए ज़मीन पर काश्तकारों का स्वामित्व रहने की आवश्यकता बताई। संकुचित क़ानून की अपेक्षा शिक्षा, हितकर मालगुज़ारी-नीति और पर्याप्त रूप में सस्ती पूंजी मिलने पर आपका अधिक विश्वास था। बरार में कौंसिल नहीं थी, पर जब कोई क़ानून बनाया जाता तो उस पर विचार करने के लिए सरकार उप कमेटियां बना देती थी। आपको उनमें ज़रूर रक्खा जाता था। उस समय बरार के लिए जो भी क़ानून बनते, वे 'फ़ारेन जूरिस्डिक्शन एक्ट' के मातहत प्राप्त अधिकार द्वारा कौंसिल-सहित ब्रिटिश-भारत के गवर्नर-जनरल के हुक्म से बनते थे, क्योंकि बरार को ब्रिटिश भारत का अंग नहीं माना जाता था। आपने इस स्थिति को देश के सामने रक्खा, कांग्रेस तथा प्रान्तीय परिषदों के अधिवेशनों में आपने प्रस्ताव पेश किये और आज हम देखते हैं कि बरार की स्थिति पहले से कहीं श्रेष्ठ है।

कांग्रेस में आप पहले-पहल इलाहाबाद में होनेवाले चौथे अधिवेशन (१८८८) में शामिल हुए, जो मि० जार्ज यूल के सभापतित्व में हुआ था और पुलिस-सम्बन्धी प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए उसमें आपने कहा था—"पुलिस के सिपाही का तो फ़र्ज़ है कि वह प्रजा का प्रेम जीते लेकिन अब वह कैसी घृणा का पात्र बन गया है !" शीघ्र ही कांग्रेस में आपने अपना प्रमुख स्थान बना लिया और उसके आप उत्साही कार्यकर्त्ता बन गये। सिर्फ़ १६०२के अधिवेशन को छोड़कर, जिसमें एक घरेलू आपत्ति-वश उपस्थित नहीं हो सके थे, आप सब अधिवेशनों में भाग लेते रहे। १८६० में इंग्लैण्ड जानेवाले शिष्ट-मण्डल में आप भी थे और अपने साथी श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा एर्डली नॉर्टन के साथ आपने भी १८६२ के शासन-सुधारों की भूमिका बहुत कुछ तैयार की। बरार के कांग्रेसी साथियों के सहयोग से १८६७ में कांग्रेस को अमरावती में आमंत्रित किया और अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी उसे सम्पन्न किया। इसी बीच १८६६ में वर्षा न होने से मध्यप्रान्त, उत्तर-भारत और दक्षिण-भारत में भारी अकाल पड़ा; जिसका असर बरार पर भी हुआ। उस समय अकाल-पीड़ितों को बाज़ार-भाव से कम दामों पर अनाज देने और ग़रीबों के लिए भोजनालय खोलने की योजना श्री० एम० वी० जोशी के साथ आपने तैयार की और सरकारी अधिकारियों के सहयोग से उस पर अमल किया। मार्च १८६७ में बरार में अकाल फण्ड की शाखा खुली और एक अन्य भारतीय के साथ आप उसके मंत्री नियुक्त हुए। आपके काम की सरकार तक ने तारीफ़ की और १८६८ में आपको 'रायबहादुर' का खिताब दिया। १८६६—१६०० में

फिर अकाल पड़ा, जो आधुनिक काल में भारत का सब से बड़ा अकाल कहा जाता है। तब भी आप आगे आये और फिर अकाल-फ़एड के मंत्री नियुक्त हुए। कांग्रेस-विधान बनाने में भी आपका हाथ रहा है। उसके लिए १८९८ में बनी उपसमिति के आप मंत्री थे और आपके बनाये नियमों को बहुत थोड़े हेर-फेर के साथ १८९९ में लखनऊ में स्वीकार किया गया था। बरार में महारानी विक्टोरिया का स्मारक बनाने में आपने इस शर्त पर सरकार से सहयोग किया कि उसे टेक-निकल इएडस्ट्रियल स्कूल का रूप दिया जाय। उसमें बहुत विघ्न पड़े, पर आपके सतत उद्योग से उसमें आंशिक सफलता मिल ही गई। १९०७ में आप रायपुर में होनेवाली तृतीय बरार व मध्यप्रान्तीय परिषद के सभापति हुए। पं० अयोध्यानाथ के स्वर्गवास पर आपसे कांग्रेस का संयुक्त-प्रधानमंत्रित्व ग्रहण करने के लिए कहा गया, पर आपने उसी प्रकार नम्रता-वश इन्कार कर दिया जैसे १८९१ में समाज-सुधार-सम्मेलन के सभापति होने से किया था। बरार-प्रान्तीय कांग्रेस के मंत्री आप बराबर रहे। १९१२ में बांकीपुर में होनेवाले अधिवेशन के सभापतित्व का सम्मान आपको देशवासियों ने प्रदान किया। १३ जनवरी १९२१ को आपका देहावसान हो गया। आज आप हमारे बीच नहीं रहे, पर आपकी स्मृति आज भी यह प्रेरणा कर रही है कि राजनीति के साथ-साथ देश की औद्योगिक और सामाजिक स्थिति के विकास पर भी हमें ध्यान रखना चाहिए।

सैय्यद मुहम्मद बहादुर

[१८६६—१६१६]

अट्ठाइसवां अधिवेशन, कराची—१९१३

"आपको मत न देना मदरास की जनता के प्रति अपराध और विश्वासघात करने के समान होगा। आपने जनता की जो सेवा की है, दूसरा कोई व्यक्ति उसके सौवें हिस्से के समान भी सेवा न कर सकेगा। कौंसिल के लम्बे अरसे की सेवा में आपने एक भी शब्द ऐसा नहीं कहा, जो अर्थहीन या महत्वहीन हो अथवा जनता के हितों के लिए न कहा गया हो।" नवम्बर १६०७ में दीवान बहादुर श्री रघुनाथराव सी० आई० ई० ने नवाब सैय्यद मुहम्मद बहादुर की इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल की उमीदवारी का समर्थन करते हुए ऊपर के शब्द कहे थे। नवाब सा० पक्के राष्ट्रवादी, दृढ़ देशभक्त और परखे हुए लोकसेवक थे। आपका जन्म सैदापेट-अडयार (मदरास) में सन् १८६६ में एक पुराने सम्मानित परिवार में पैगम्बर हज़रज मुहम्मद के वंश की ५६ वीं पीढ़ी में हुआ था। आपके पितामह नवाब पीर असदुल्लाखां चेतपुर के जागीरदार और नवाब सफदर अलीखां बहादुर के दीवान थे। मैसूर रियासत के प्रसिद्ध हैदर अली से भी आपकी

रिश्तेदारी थी। आपकी दादी शाहज़ादी शाहरुख़ बेगम टीपू सुलतान के चतुर्थ पुत्र शाहजादा सुलतान यासीन की पुत्री थी। आपके पिता आनरेबल मीर हमायूँ जाह बहादुर सी० आई० ई० भी मदरास के सुप्रतिष्ठित नागरिक थे। १८६७ में उनको सरकार ने मदरास लेजिस्लेटिव कौंसिल में नामज़द किया था। उसके बाद मृत्युपर्यन्त वह उसके सदस्य रहे। १८९३ में जब पहली बार प्रान्तीय कौंसिल के सदस्यों को सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए प्रतिनिधि चुनने का अधिकार प्राप्त हुआ था, तब वह उसके प्रतिनिधि चुने गये थे, किन्तु चुनाव के बाद ही उनका देहान्त हो गया था। १८८० में उनको सरकार ने सी० आई० ई० का ख़िताब दिया था।

नबाब साहब की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध घर पर ही किया गया था। जल्दी ही आपने अंग्रेजी में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली। १८९६ में मदरास शहर के आप शैरिफ बनाये गये थे। आप पहले मुसलमान शैरिफ थे। १८९७ में आपको 'नबाब' और 'खां बहादुर' के खिताब दिये गये थे। १९०० और १९०२ में आप दो बार मदरास लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गये थे। १९०३ में आप अपने पिता के समान मदरास प्रेसिडेंसी की ओर से सुप्रीम कौंसिल के सदस्य चुने गये। कौंसिल में आपने जिन बिलों पर हुई बहस में विशेष भाग लिया, उनमें कुछ ये हैं—आफिशियल सिक्रेट बिल, यूनिवरसिटी बिल, कोअपरेटिव क्रेडिट सोसाइटीज़ बिल और यूनीवरसिटी वैलिडेशन बिल। जून १९०८ के शिमला-अधिवेशन में एक्सप्लोसिव बिल और इन्साइटमेण्ट टू मरडर्स बिल के बारे में आपने जो भाषण दिये थे,

उनसे आपकी अगाध विद्वत्ता और उस समय की परिस्थिति के आपके गहरे अध्ययन का पूरा परिचय मिलता है। मिण्टो-मार्ले-रिफार्म से पहले और बाद में भी दो-दो बार आप मदरास प्रेसिडेंसी की ओरसे वाइस-राय की कौंसिल के सभासद चुने गये थे। १९१७ में आप व्यक्तिगत कारणों से उससे अलग हो गये। जनता के अधिकारों के लिए आप कौंसिल में निरन्तर वकालत करते रहे और उसकी भलाई के लिए सदा सतर्क रहे।

आप १८९४ में कांग्रेस में शामिल हुए और मृत्यु पर्यन्त उसके दृढ़ समर्थक रहे। आप पहले भारतीय और बाद में मुसलमान थे। १८९८ के अधिवेशन में आपने लार्ड कर्जन के स्वागत के प्रस्ताव का अनुमोदन किया था। १९०१ में इण्डियन कांग्रेस कमेटी के सदस्य चुने गये थे। १९०३ में मदरास में हुई कांग्रेस के आप स्वागताध्यक्ष हुऐ थे। तब आपने कहा था कि "शासन-सुधारों के सम्बन्ध में उन्नति और प्रगति के मार्ग पर तब तक आगे नहीं बढ़ा जा सकता, जब तक कि इस विशाल देश में रहनेवाली हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियां समान हित के लिए एक होकर काम नहीं करतीं।" १९०४ में आप कांग्रेस का विधान तैयार करनेवाली कमेटी के और १९०६ में कांग्रेस स्टेंडिंग कमेटी के सभासद् चुने गये। १९०६ में दादाभाई आपसे मिल कर बहुत प्रसन्न हुए थे। उस समय मुसलमानों से कांग्रेस में शामिल होने के लिए आपने बहुत जोरदार अपील की थी। १९०८ में मदरास में हुई कनवेंशन कांग्रेस के सभापतित्व के लिए डा० रासबिहारी घोष के नाम का प्रस्ताव आपने ही उपस्थित किया था। १९१३ में कराची में

हुए कांग्रेस अधिवेशन के आप सभापति चुने गये थे। उस समय दिया हुआ आपका विस्तृत भाषण हिन्दू-मुसलमानों की एकता की अपील से भरा हुआ था। साम्प्रदायिकता से आप बिलकुल ऊपर उठे हुए थे। आप दृढ़ देश भक्त थे। राष्ट्रीयता आपके सब भाषणों में ओतप्रोत थी। हिन्दू-मुस्लिम-एकता का प्रतिपादन करते हुए आपने यह सलाह दी थी कि दोनों जातियों के नेताओं को समय-समय पर एकत्र होकर सार्वजनिक हित के सब प्रश्नों पर मिल कर काम करने का मार्ग ढूँढते रहना चाहिए। भारत मन्त्री की कौंसिल में चुने हुए प्रतिनिधि रखने पर आपने ज़ोर दिया, जिसके लिए १८५८ से आन्दोलन हो रहा था। कौंसिलों म्युनिसिपैलिटियों, प्रारम्भिक तथा औद्योगिक, शिक्षा, जमीन बन्दोबस्त, पब्लिक सर्विस कमीशन और सेना के भारतीकरण आदि विषयों की चर्चा आपने विशेष रूप से की थी। एकता के लिए इन शब्दों में अपील करते हुए आपने अपना भाषण समाप्त किया था कि "आओ, हम सब हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई भाई-भाई की तरह कंधे से कंधा मिला कर अपने ध्येय पर विश्वास रखते हुए आगे बढ़ चलें। ठोकरें खाना और त्याग करना तो अनिवार्य है।" इसी ध्येय से प्रेरित होकर आप सदा काम करते रहे। १९१६ में लखनऊ कांग्रेस में हिन्दू-मुस्लिम-पैक्ट (कांग्रेस-लीग-योजना) आपके ही परिश्रम का परिणाम था। १९१३ में मिण्टो-मार्ले-सुधारों के सम्बन्ध में साक्षी देने के लिए सरकार ने आपको निमन्त्रित किया था।

कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य अनेक सार्वजनिक संस्थाओं से भी आपका विशेष सम्बन्ध था। मदरास के सेन्ट्रल मुहम्मद एसोसियेशन

और दक्षिण भारत के मुहम्मदन एजूकेशन एसोशियेशन के आप उपाध्यक्ष थे। मदरास महाजन सभा के १८६२ में ट्रस्टी और १६०४ से १६१७ तक अध्यक्ष थे। मदरास एथलैटिक एसोसियेशन की प्रबन्ध कमेटी के सदस्य और १६१३ में स्थापित नेशनल फण्ड एण्ड इण्डस्ट्रियल एसोसियेशन के आप ट्रस्टी थे।

१६१६ में आपको आर्थिक कष्टों के कारण सार्वजनिक जीवन से विरक्त हो जाना पड़ा और रामपेटा (मदरास) में ५० वर्ष की आयु में १२ फरवरी को १६१६ को आपका देहावसान हो गया और मुसलिम विचार-धारा के प्रवाह को उलटी दिशा से रोककर राष्ट्रीयता की ओर लाने के लिए अहोरात्र यत्न करनेवाला न केवल दक्षिण किन्तु समस्त भारत और कांग्रेस का एक सच्चा राष्ट्रवादी सेवक उठ गया।

भूपेन्द्रनाथ वसु

[१८५६—१९२४]

उन्तीसवां अधिवेशन, मद्रास—१९०४

अपने समय के सर्वाधिक प्रतिभाशाली और बंगाल में चाणक्य के नाम से प्रसिद्ध श्री भूपेन्द्रनाथ वसु का जन्म कृष्णनगर समाज के सुप्रतिष्ठित खानकुल के कायस्थ-परिवार में १८५६ के जनवरी मास में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा का आरम्भ बंगला की शिक्षा के साथ हुआ। १८७५ में इङ्गलिश हाई स्कूल से मैट्रिक पास करके १८८० में प्रेसिडेंसी कालेज से आपने बी० ए० पास किया। घरवालो के आग्रह से पढ़ाई छोड़ कलकत्ता के सुप्रसिद्ध सालिसिटर निमाईचरण वसु की फर्म में सालिसिटर का काम सीखना शुरू कर दिया और उस काम में लगे हुए ही आपने १८८१ में एम० ए० और बी० एल० की परीक्षायें पास कीं। १६ मार्च १८८४ में आपने स्वतन्त्र रूप से सालिसिटर का काम शुरू किया। अपनी योग्यता और अध्यवसाय के कारण अपने व्यवसाय में चमकने में आपको अधिक समय नहीं लगा। बी० एल० वसु एण्ड कम्पनी के आप ही प्रधान थे। हाई कोर्ट के जजो और जनता दोनों का आपने स्नेह और विश्वास जल्दी ही सम्पादन कर लिया। ।३३ वर्षों तक आप अपने इसी व्यवसाय में लगे रहे।

आपकी पारिवारिक प्रतिष्ठा का दर्जा भी बहुत ऊँचा था। सम्मिलित परिवार के आदर्श का पालन वसु-परिवार में पूरी तरह अब तक हो रहा है। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल, नम्र और मिलनसार था। आप समाज-सुधार-प्रेमी भी थे। 'एज ऑफ कन्सेएट बिल' का समर्थन करने के कारण सनातनी आपसे बुरी तरह नाराज हो गये थे। अपने भतीजों और अनेकों सम्बन्धियों को शिक्षा के लिए आपने विरोध होते रहने पर भी विलायत भेजा था। फिर भी आपको विलायतीपन की बू छू तक न गई थी। प्राचीन मर्यादा का पालन आप पूरी तत्परता के साथ करते थे। पोशाक, भोजन, रहन-सहन आदि में आप सोलह आना बंगाली थे। आपके विस्तृत परिवार में एक भी अन्तर्जातीय विवाह नहीं हुआ। परदे की प्रथा तक आपके परिवार से दूर नहीं हुई।

वंग-भंग के आन्दोलन के दिनों में आपने अपने को सार्वजनिक जीवन के साथ तन्मय कर दिया था। घर-घर घूमकर आप स्वदेशी एवं बहिष्कार का प्रचार किया करते थे। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के उन दिनों में आप परम सहायक थे। बरीसाल की उस कांफ्रेंस में भी आप शामिल हुए थे, जो सर वैम्फील्ड फुलर के हुक्म पर जबरन भंग कर दी गई थी। बंगाल नेशनल बैंक के सस्थापकों में आप प्रमुख थे और बहुत समय तक उसके संचालक भी रहे थे। सर अलैक्-जैण्डर मैकेंजी के समय में नये म्यूनिसिपल एक्ट के विरोध में जिन अट्ठाइस सदस्यों ने त्यागपत्र दे दिये थे, उनमें आप भी एक थे। उसी घटना को लेकर श्री अमृतलाल बोस ने "शाबास अठाइस" नाम से एक नाटक लिखा था, जो कलकत्ता में कई बार कई स्थानों पर खेला

गया था। उस समय आपके उस साहसपूर्ण कार्य की बहुत प्रशंसा की गई थी।। बंगाल लेजिस्लेटिव कौंसिल के भी आप कई वर्ष तक सभासद रहे थे। सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए आप सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मुकाबले में खड़े हुए थे और सफल भी हुए थे। वहां 'ब्राह्मो मैरिज एक्ट' को स्वीकृत कराने के लिए आपने विशेष यत्न किया था।

कांग्रेस के साथ उसकी स्थापना के समय से ही आपका सम्बन्ध था। जब कलकत्ता में १८८६ में कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन हुआ था, तब आप स्वयंसेवक दल के अधिनायक थे। उसके बाद कलकत्ता में होने वाले अधिवेशन की स्वागत समिति के मन्त्रियों में से एक थे। १९११ में स्वागताध्यक्ष हुए थे और १९१४ में मदरास में हुए अधिवेशन के सभापति हुए। बहुत पहले मैमनसिंह में हुई बंगाल प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् के भी आप अध्यक्ष हुए थे। आप स्वेच्छा से राजनैतिक कार्यों में भाग लिया करते थे। आप उच्चकोटि के वक्ता थे। आपकी यह दृढ़ धारणा थी कि कांग्रेस को सम्राट की विरोधी संस्था होकर काम करना चाहिए। कांग्रेस के सभापति पद से दिये भाषण में आपने भारत की स्वशासन-सम्बन्धी मांग और यूरोप के महायुद्ध का उल्लेख करते हुए कहा था कि पश्चिम से उठती हुई विशाल जीवन की विस्तृत लहर को पूर्व की ओर आने से रोका नहीं जा सकता। भारत में अंग्रेज़ी शासन का अर्थ यदि नौकरशाही का गोला-बारूद है, सदा की पराधीनता तथा संरक्षण है और भारत की आत्मा पर बढ़ता हुआ भारी भार है, तो यह सभ्यता के लिए भयानक अभिशाप और मनुष्यता के लिए भारी कलंक है।

इतने पर भी आप उग्र विचारों के राजनीतिज्ञ कभी नहीं हुए। माडरेट दल के लोगों में भी आप सबसे अधिक माडरेट थे। माण्टेगु ने आपके इस माडरेटपन से पूरा लाभ उठाया और आपके साथ ऐसा स्नेह-सम्बन्ध बनाया कि आपको जनता की ओर से हटाकर बिलकुल सरकार के साथ मिला लिया। आप उनके दाहिने हाथ बन गये। माण्टफोर्ड-शासन-सुधारों सम्बन्धी अनेकों जटिल समस्याओं को आपने ही सुलझाया था। ली कमीशन के आप अकेले ही भारतीय सदस्य थे। उसके लिए आप लोकापवाद के भी शिकार हुए। पर उसकी आपने तनिक भी परवा नहीं की। १९१७ में भारत-सचिव की कौंसिल का आपको सदस्य नियुक्त किया गया था।

शिक्षा के क्षेत्र में आपने सराहनीय कार्य किया। सर आसुतोष मुकर्जी के बाद कलकत्ता युनिवरसिटी का आपको वाइस चांसलर बनाया गया था। मृत्यु के कुछ सप्ताह पहले तक आप उस कार्य की जिम्मे-दारी बड़ी योग्यता और तत्परता के साथ निभाते रहे थे। १९२३ में बंगाल सरकार की शासन-सभा के भी आप सदस्य नियुक्त किये गये थे।

ली-कमीशन का कार्य करते हुए दिल्ली में ही आप बीमार पड़ गये थे। वृद्धावस्था के अन्तिम दिनों में आपकी सब सन्तानों का एक-एक करके देहान्त हो गया। एक पुत्र और एक पुत्री शेष थीं। मृत्यु ने उनको भी उठा लिया। इन दुर्घटनाओं का आपके वृद्ध शरीर और मस्तिष्क पर बहुत बुरा असर पड़ा और आप भी कुछ दिन बीमार रह कर १६ दिसम्बर १९२४ को कलकत्ता में स्वर्गधाम सिधार गये।

सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह

[१८६४—१६२८]

तीसवां अधिवेशन, बम्बई—१९१५

ऊँची से ऊँची सरकारी मान-प्रतिष्ठा सबसे पहले प्राप्त करनेवाले लार्ड (आनरेबल-सर) सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह का जन्म वीरभूम (बंगाल) जिले के रायपुर गांव के एक सम्पन्न और कुलीन घराने में जून १८६४ में हुआ था। आपके पिता ईस्ट इण्डिया कम्पनी में मुन्सिफ थे, बाद में सदर अमीन बना दिये गये थे, आप दो ही वर्ष के थे कि आपके पिता का देहान्त हो गया। चार भाइयों में आप सबसे छोटे थे। सबसे बड़े भाई वीरभूम में सरकारी वकील थे। दूसरे भाई घर की जमींदारी संभालते थे, तीसरे भाई मेजर ऐन० सी० सिंह आइ० एम० एस० थे। तीनों भाइयों की जल्दी ही मृत्यु हो गई।

माता ने आपकी और आपके सब भाइयों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा वीरभूम जिला स्कूल में हुई। आप बड़े होशियार, प्रतिभा-सम्पन्न और कुशाग्र बुद्धि थे। पूरी मेहनत और ध्यान से आप पढ़ते थे। १८७७ में आपने मैट्रिक पास किया। प्रेसिडेंसी कालेज कलकत्ता से पहले विभाग में एफ० ए० पास किया। १८८० में आपका विवाह हुआ। उसी वर्ष आपका भाग्य कुछ ऐसा

चमका कि उसने सारा जीवन ही बदल दिया। ईरस्किन एण्ड कम्पनी में आपके पिता ने बहुत सा रुपया जमा किया हुआ था। बड़े भाई ऐन० पी० सिंह को उस रुपये का पता था। दोनों ने मिलकर सारे सम्बन्धियों और घरवालों के विरोध करते रहने पर भी इंग्लैण्ड जाने का निश्चय कर लिया। १८८१ में दोनो भाई घर से निकल पड़े। डायमण्ड हारबर तक घरवालों ने पीछा किया, पर आप हाथ न लगे और लुक छिपकर जहाज पर सवार हो गये। वहां आपने रोमन और लैटिन का अभ्यास किया। डा० हण्टर की कृपा से रोमन-लॉ, जूरिस्प्रूडेंस, कांस्टीट्यूऐण्ट लॉ और इण्टरनेशन लॉ के अध्ययन के लिए आपको चार वर्षों के लिए ५० पौंड का वार्षिक वजीफ़ा मिल गया। इसी प्रकार तीन वर्षों के लिए १००पौण्ड का लिनकोन का वजीफ़ा भी आपको मिल गया। १८८६ में बैरिस्टरी का सर्टिफिकेट प्राप्त करने के बाद आपने सारे यूरोप का दौरा किया और कई युरोपियन भाषायें सीख लीं।

१८८६ में स्वदेश लौटकर २३ वर्ष की आयु में आप ने कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत करनी शुरु की। थोड़े ही समय में सचाई, अध्यवसाय और धैर्य से आपने वकालत में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त कर ली। कुशाग्रबुद्धि और प्रतिभाशाली होने के कारण आप कानून की बारीकियों को खूब समझते थे और कानून की पेचीदगीयों को भी सहज में सुलझा लेते थे। १८९४ में आपकी वकालत खूब चमकी और १८९९ में चोटी के वकीलों में आप की गिनती होने लगी। १९०३ में भारत सरकार के आप स्थायी वकील नियुक्त हुए। १९०६ में अस्थायी और १९०८ में स्थायी एडवोकेट-जनरल और अप्रेल १९०९ में गवर्नर जन-

रल की कौन्सिल के सदस्य बनाये जानेवाले पहले भारतवासी आप ही थे। उसके बाद आपने कलकत्ता हाईकोर्ट में फिर से वकालत शुरु की। कहा जाता है कि उस समय आपकी मासिक आय तीस चालीस हज़ार रुपया थी।

१८९४ में पहली बार आप कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। १८९६ में कलकत्ता में कांग्रेस के बारहवें अधिवेशन में आपने देशी नरेशों को ऐसे पब्लिक ट्रिब्यूनल के सामने दोषी प्रमाणित किये बिना गद्दी से अलग करने का विरोध किया, जिस पर सरकार और राजाओं का एक समान विश्वास न हो। उसके बाद भी कई अधिवेशनों में आप कांग्रेस में शरीक हुए, किन्तु नरम दलवालों के विचार भी आप को उग्र मालूम होते थे। इसीलिए कांग्रेस में आपकी लोगों से बहुत कम बनती थी। १९१५ में बम्बई में हुए कांग्रेस के अधिवेशन के आप सभापति चुने गये। वहां आपका राजकीय स्वागत हुआ। सभापति के पद से जो आपने भाषण दिया था, वह नरमदलवालों को भी बहुत ढीला मालूम हुआ। लार्ड मिण्टो आपको नरम विचारों वाला कांग्रेस-मैन कहा करते थे। बम्बई कांग्रेस में ही कांग्रेस के प्रति जनता की रुचि फिर से जाग्रत होने लगी थी। इसी अधिवेशन में ऐक कमेटी मुकर्रर की गई थी, जिसको कांग्रेस और मुसलिम-लीग में एकता का भार सौंपा गया था। विशेष बात यह हुई थी कि महात्मा गांधी विषय समिति में नहीं चुने जा सके और सभापति ने उनको अपनी ओर से मनोनीत किया था। इस अधिवेशन के बाद आपने कांग्रेस में कभी कोई हिस्सा नहीं लिया।

१९१७ में महाराजा बीकानेर के साथ आप इम्पीरियल कान्फ्रेंस में भारत के प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये। वहीं युद्ध-सम्मेलन में भी सम्मिलित कर लिये गये। १९१७ में आप बंगाल सरकार की एक्ज़ीक्यूटिव कमेटी मेम्बर मुक़र्रर हुए, किन्तु १९१८ में आप फिर इम्पीरियल वार केबिनेट के मेम्बर बनकर विलायत चले गये। युरोप के युद्ध के बाद १९१९ में आप अकेले ही सन्धि-सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से शामिल हुए थे उसी वर्ष लायड जार्ज ने आपको अपने मंत्री-मण्डल में अण्डर सेक्रेटरी आफ़ स्टेट फ़ार इण्डिया (भारत-उपसचिव) बनाकर शामिल कर लिया। आप पार्लमेंएट के मेम्बर नहीं थे। इसलिए बैरन (लार्ड) बनाकर हाउस आफ़ लार्ड्स में जगह दी गई। फ्रीमैन आफ़ दि सिटी आफ़ लन्दन बनने का सौभाग्य भी सबसे पहले आपको ही प्राप्त हुआ था। आप ही पहले भारतीय थे जिनको १९१९ में भारत के एक प्रान्त (बिहार) का गवर्नर बनाया गया, किन्तु अस्वस्थता के कारण आपने शीघ्र ही इस्तीफ़ा दे दिया। १९२६ में प्रीवी कौंसिल की जुड़ीशल कमेटी के मेम्बर होनेवाले भी आपही पहले भारतीय थे।

आप सदा ही नरम विचारों के रहे। ब्रिटिश शासन की संरक्षता में ही आपको भारत का कल्याण दिखाई देता था। समाचार पत्रों के सिरों पर सदा लटकी रहनेवाली प्रेस एक्ट की नङ्गी तलवार का निर्माण सबसे पहली बार सरकार ने आपसे ही करवाया था। वायसराय की कौंसिल के जब आप कानूनी सदस्य थे, तब उसकी सृष्टि हुई थी। आपके ही कारण स्वर्गीय गोखले ने भी उसका समर्थन कियाँ था। १९२८ की ५ मार्च को आपका देहावसान हो गया।

अम्बिकाचरण मजूमदार

[१८५१—१९२२]

इकतीसवाँ अधिवेशन, लखनऊ—१९१६

पूर्व बंगाल के वृद्ध पितामह श्री अम्बिकाचरण मजूमदार का जन्म फरीदपुर जिले के सेन्दिया गांव के वैद्य परिवार में ६ जनवरी १८५१ को हुआ था। आपके पिता श्री राधाचरण मजूमदार फ़ारसी तथा संस्कृत के उद्भट विद्वान् और धार्मिक विचारों के अत्यन्त प्रभाव शाली व्यक्ति थे। अपनी ईमानदारी, बहादुरी और सरलता के लिए वे मशहूर थे। माता सुभद्रादेवी भी विलक्षण प्रतिभा और असाधारण ज्ञान रखनेवाली नारी थी। अम्बिका बाबू में माता और पिता दोनों के स्वभाव का सम्मिश्रण था। इसलिए बचपन से ही आप में स्वाभिमान, अपनी बात के लिए हठ और अन्याय के लिए क्रोध तथा विरोध की भावना उत्पन्न होगई थी।

सात वर्ष की आयु में अपने गांव की संस्कृत की पाठशाला में आपकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ था। सहज में ही आप गुरुजनों के कृपा-भाजन बन जाते थे। आपका यह स्वभाव आपके चरित्र-निर्माण में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। दुष्ट-स्वभाव के बालक गुरूजी का लाडला

शिष्य होने से आपसे बिगड़े रहते थे। एक बार एक षड्यन्त्र रचकर आप पर उन्होंने झूठा दोषारोप किया और आपको सजा दिलवा दी। आप उस अन्याय को सहन न कर सके और पाठशाला जाना ही छोड़ दिया। अनुनय, विनय और धमकी पर भी आप फिर पाठशाला नहीं गये। कुछ दिन घर पर पढ़ने के बाद पास के एक गांव खलिया के ऐंग्लो-वर्नाक्यूलर-स्कूल में आप भर्ती हुए। विद्यार्थियों में अग्रणी स्थान प्राप्त करने और अपने गुरुओं का कृपा-भाजन बनने में आपको अधिक समय नहीं लगा। पर, वहां भी ऐसी ही एक घटना घट गई, जिससे स्वाभिमानी बालक ने स्कूल जाना बन्द कर दिया। सेन्दिया से खलिया जाने के लिए एक नदी नाव पर से पार करनी पड़ती थी। एक दिन नाव न मिलने से स्कूल पहुंचने में देरी हो गई। मुख्याध्यापक को देरी का कारण समझाने का यत्न किया। पर, परिणाम कुछ न निकला। स्वाभिमानी बालक के पास उस अन्याय का एक ही प्रतिकार था। उसनें दूसरे दिन से स्कूल जाना छोड़ दिया। घरवालों ने बालक को अवारागर्द समझ पढ़ाने की चिन्ता करनी ही छोड़ दी। पर माता का दिल न माना। माता ने उसको बारीसाल जिला स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया। वहां प्रधानाध्यापक श्री गौरनारायण राय का प्रिय शिष्य बनने में अधिक समय नहीं लगा। उनकी संगति से अंग्रेज़ी साहित्य में अभिरुचि पैदा हुई। १८६६ में फर्स्ट डिविजन में मैट्रिक पास करके छात्रवृत्ति प्राप्त की। कलकत्ता प्रेसिडेंसी कालेज में उच्च शिक्षा का अध्ययन शुरू किया। वहां भी आपने प्रो० प्यारीचरण सरकार की कृपा सहज में सम्पादन कर ली। सरकार केवल योग्य

शिक्षक ही न थे, किन्तु सादा जीवन और उच्च विचार की साक्षात् मूर्ति भी थे। उनकी संगति से अम्बिकाचरण कालेज की कुसंगति और कुसंस्कारों से बचे रहे। १८७१ में आई० ए० और १८७३ में बी० ए० पास करके मेट्रोपालिट इन्सटीट्यूट में शिक्षक नियत हो गये। वह इन्स्टीट्यूट बाद में कालेज बन गया।

छात्रावस्था में अम्बिका बाबू के जीवन का जो भविष्य इतना संदिग्ध था, वह अब स्थिर होगया। कालेज में स्वनामधन्य श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के सम्पर्क में आने से उसमें और भी अधिक दृढ़ता पैदा होगई। १८७५ में आपने कानून का अध्ययन शुरू किया और उसी वर्ष एम० ए० पास करके अगले वर्ष कानून की परीक्षा भी पास कर ली। दो वर्ष तक आप मेट्रोपालिटन इन्स्टीट्यूट के प्रधानाध्यापक रहे। फिर आपको श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के सहवास का अहोभाग्य प्राप्त होगया। दोनों में इतनी घनिष्टता पैदा हो गई कि एक परिवार का-सा सम्बन्ध होगया। इन्स्टीट्यूट में दोनों ने एक वाद-विवाद-सभा की स्थापना की। सुरेन्द्र बाबू उसके अध्यक्ष थे और आप उपाध्यक्ष। उन्हीं दिनों में आप एक बार एक मकान की छत पर से गिर पड़े थे। एक पैर में उससे कुछ विकार पैदा होगया। वह आजन्म बना रहा।

१८७६ में आपने फरीदपुर में वकालत शुरू की। सफल वकील होने के साथ-साथ सार्वजनिक जीवन में भी आपने अपना विशेष स्थान बना लिया। अपने अथक परिश्रम, अदम्य उत्साह और स्वाभिमानी वृत्ति के कारण आपको लोकप्रिय बनने में अधिक समय नहीं लगा। फरीदपुर में आपने 'पब्लिक एसोसियेशन' की स्थापना की, जो पूर्व बंगाल की

उल्लेखनीय सर्वप्रधान राजनैतिक संस्था है। सन् १८८४ में जब लार्ड रिपन ने 'लोकल सेल्फ गवर्न्मेंन्ट' की नीति की घोषणा की, तब उसके अनुसार १८८६ में फरीदपुर में म्यूनिसिपैलिटी कायम करने के लिए आपने अथक परिश्रम किया। इसके द्वारा आपने शहरनिवासियों की इतनी अधिक सेवा की कि आप लगातार बीस वर्षों तक उसके अध्यक्ष रहे। १६१८ में राजेन्द्र कालेज स्थापित होने पर उसके लिए भी आपने लगकर विशेष यत्न किया। १८८५ और १६०६ में देश में भयानक दुर्भिक्ष पड़ने पर दुर्भिक्ष पीड़ितों की यथासाध्य सेवा और सहायता करने में आपने कुछ भी उठा न रखा था। ऐसी ही अन्य अनेक लोक-सेवाओं के कारण श्रीमती नायडू के शब्दों में 'आप फरीदपुर के और फरीदपुर आपका' कहा जाता था।

बंगाल में सार्वजनिक राष्ट्रीय जीवन का प्रारम्भ कांग्रेस की स्थापना से भी पहले हो चुका था। १८८३ में सर्व प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन (नेशनल कांफ्रेंस) होकर न्याय-विभाग और शासन-विभाग को अलग अलग करने की मांग की जाने लगी थी। आप उन सम्मेलनों और कांग्रेस की स्थापना होने पर उसमें भी बराबर सम्मिलित होते रहते थे। १६०२ में सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल में वकीलों को जिला जज के आधीन करने के बारे में एक बिल पेश हुआ था, जिसका आपने इतना विरोध किया था कि वह पास न हो सका। फरीदपुर में जूरी द्वारा मुकदमों पर विचार करने की प्रथा १६१६ में आपके ही प्रयत्नों से शुरू की गई थी। ढाका डिवीज़न की म्यूनिसिपैलिटियों की ओर से आप दो बार लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभासद चुने गये थे।

वंग-भंग के प्रचण्ड आन्दोलन में आपका प्रमुख हाथ था। १६०५ से १६११ तक के स्वदेशी तथा बहिष्कार आन्दोलन के आप प्राण रहे थे। पूर्वीय बंगाल के ज़िले-जिले में घूमकर आपने उस आन्दोलन को जागृत, संगठित और सुविस्तृत किया था। ६ अगस्त १६०५ में बंग भंग के विरोध में कलकत्ता के टाउन-हाल में जो विराट्-सभा हुई थी, आपही उसके सभापति हुए थे। उसी दिन से बंगाल में स्वदेशी तथा बहिष्कार के आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ था। इसलिए बंगाल के राजनैतिक इतिहास में वह दिन स्वर्णाक्षरों में लिखा जानेवाला (रेड लैटरर्स डे) कहा जाता है। उसके साथ आपके नाम के संयुक्त होने से आपका नाम भी उस आन्दोलन के साथ-साथ अमर हो गया है। आपने अपने इस विश्वास को सारे बंगाल में फैला दिया था कि "देश घोर गरीबी में तबाह हो रहा है। उससे उद्धार पाने का एक ही उपाय है कि हम अपने स्वदेशी व्यवसाय को प्रोत्साहन तथा आश्रय दें और स्वदेशी के रंग में रंग जांय। इसके लिए यह जरूरी है कि विदेशी का बहिष्कार किया जाय। तभी स्वदेशी का विकास हो सकेगा और देश राजनैतिक दृष्टि से कुछ आगे बढ़ सकेगा।

१६१६ में लखनऊ में हुए कांग्रेस के ऐतिहासिक अधिवेशन के सभापति होने का सौभाग्य आपको ही प्राप्त हुआ था। एक दूर जिले के साधारण वकील को इतना ऊँचा सम्मान दिये जाने का यह पहला ही अवसर था। निश्चय ही वह आपकी लोक-सेवा का उपयुक्त पुरस्कार था। इसी अधिवेशन में सूरत के बाद नरम और गरम दलों के सब लोग एक बार फिर एक जगह इकट्ठे हुए थे। लोकमान्य ने इसी

अधिवेशन में भारतीय राष्ट्र को अपने इस महा-मन्त्र की दीक्षा दी थी कि "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं उसे लेकर ही रहूंगा।" कांग्रेस-लीग-पैक्ट के नाम से प्रसिद्ध हिन्दू-मुस्लिम-समझौता, जिसकी प्रायः चर्चा होती रहती है, इसी अधिवेशन में हुआ था। महात्मा गांधी उस समय दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह में लगे हुए थे। आपके अपने भाषण में उसकी चर्चा करते हुए गान्धीजी के विजय लाभ करने और बहुत बड़ा नेता होने की भविष्यवाणी की थी। १८९४ में बर्दवान में और १९१० में कलकत्ता में बंगाल-प्रान्तीय-राजनैतिक-सम्मेलन आप के ही सभापतित्व में हुए थे। १९१७ में दिल्ली में हुई इम्पीरियल वार कांफ्रेंस में आप बंगाल के प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए थे। "दी इण्डियन एवोल्यूशन" नाम की आपकी लिखी हुई पुस्तक उत्कृष्ट, सुन्दर, उपयोगी और प्रामाणिक है।

वृद्धावस्था के कारण आपका शरीर दिन पर-दिन रोगग्रस्त रहने लगा। २९ दिसम्बर १९२२ को और पूर्व बंगाल का राष्ट्रीय महारथी अपने प्रदेश को रुलाकर चला गया। कलकत्ता में आपकी स्मृति में 'अम्बिका मेमोरियल हाल' और 'अम्बिका पब्लिक लायब्रेरी' स्थापित हैं। फरीदपुर का ही नहीं, किन्तु समस्त पूर्व बंगाल का सारा ही राष्ट्रीय और सार्वजनिक जीवन आपका अचल कीर्ति स्तम्भ है।

एनी बेसेण्ट

[१८४६—१६३३]

बत्तीसवां अधिवेशन, कलकत्ता—१९१७

विलक्षण व्यक्तित्व, अपूर्व प्रतिभा, अगाध पाण्डित्य और अद्भुत कार्यशक्ति की पुञ्ज श्रीमती एनी बेसेण्ट का जन्म एक साधारण कुल में लन्दन में पहली अक्तूबर १८४७ को हुआ था। लन्दन में जन्म लेकर भी आपने भारत को अपना घर बना लिया था और उसकी सेवा में अपने बाल पका दिये थे, आपका जीवन अत्यन्त घटनापूर्ण और अत्यन्त विरोधी दिशाओं में बहनेवाली धाराओं का स्रोत है। इतनी दीर्घ आयु और वृद्धावस्था में भी उस स्रोत का प्रवाह बंद नहीं हुआ और न वह धीमा ही पड़ा, अपितु पूरे वेग के साथ उस का प्रवाह निरन्तर बना रहा। लिखने, बोलने तथा विचारने और संगठन आन्दोलन तथा नेतृत्व करने की अलौकिक शक्ति न मालूम आपके किस पुण्य-संचय का शुभ-परिणाम थी? जिधर मुँह फेरती थी उधर ही बिजली की तरह फैलती हुइ संजीवनी शक्ति का संचार कर डालती थीं। मृत शरीर में भी जीवन पैदा करने का जादू आपने अपने जीवन में कितनी ही बार कर दिखाया। भारतवासी आपकी सेवाओं के लिए सदा आपके कृतज्ञ रहेंगे।

आपके पिता डाक्टर विलियम पेजवुड आयरिश थे, लेकिन लन्दन में व्यवसाय करते थे। आपका जन्म का नाम वुड था। कुमारी वुड ने अध्यापिका मैर्चेंट से विविध विषयों की शिक्षा प्राप्त की थी। अध्ययन काल में ही अध्यापिका ने आपके हृदय में विद्या और ज्ञान के लिए जो अगाध प्रेम और रुचि पैदा कर दी थी, वह आपके जीवन के अन्तिम दिन तक बनी रही। अध्ययन काल में फ्रेंच, जर्मन आदि भाषाओं का भी आपने ज्ञान प्राप्त कर लिया था। १८६७ में कुमारी वुड का फ्रैंक बेसेण्ट नाम के पादरी से विवाह हो गया, लेकिन वह सम्बन्ध स्थायी न रह सका। आप स्वतंत्र विचारों की थीं। ईसाई धर्म की रूढ़ियों में आपका विश्वास न था। दूसरी ओर पति कट्टर पादरी था। वह प्राचीन प्रथाओं और रूढ़ियों का प्रबल समर्थक था। पति-पत्नी में अक्सर विवाद रहने लगा। इससे एनी बेसेण्ट का जीवन और भी दुःखमय हो गया। उसी समय अपनी कन्या की बीमारी से ईश्वर के अस्तित्व में, उसकी दयालुता और न्याय में भी सन्देह उत्पन्न हो गया। आप अपने हृदय में बार-बार यह प्रश्न करने लगीं कि "क्या हम लोग उस सर्वशक्तिमान् के लिए बिलकुल खिलौना ही हैं, जो हमारे दुःख से प्रसन्न होता है।" गम्भीर चिन्तन और मनन के बाद आप नास्तिक हो गईं और नास्तिकवाद का प्रचार करने लगीं। इससे पति-पत्नी का सम्बन्ध और भी कटु हो गया। पति ने पत्नी पर गिरजा जाने और प्रार्थना आदि करने का दबाव डाला, लेकिन आपने अपनी आत्मा के विरुद्ध कुछ भी करने से स्पष्ट इनकार कर दिया। फलतः १८७४ में पति-पत्नी एक दूसरे को तलाक देकर अलग-अलग हो गये।

पारिवारिक जीवन से निश्चिन्त होकर एनी बेसेण्ट ने अपने को सम्पूर्ण रूप से सार्वजनिक जीवन में लगा दिया। स्वतंत्र प्रकृति, प्रखर-प्रतिभा, अद्भुत साहस तथा अध्ययनशील होने के कारण आपने रूढ़ियों व अन्ध विश्वासों को तोड़ दिया और जिधर सत्य दीख पड़ा, उधर ही झुक गईं। १८७४ से १८८६ तक आप चार्ल्स ब्रेडला की स्वतंत्र हलचलों में उनका साथ देती रहीं और यह कहना अत्युक्ति न होगा कि चार्ल्स ब्रैडला को जो सफलता मिली, उसका अधिकांश श्रेय आपकी प्रकाण्ड विद्वत्ता, लेखन-शक्ति, प्रचार और लगन को है। अनेक शहरों में आपके ईश्वर विरोधी विचारों से उत्तेजित होकर जनता ने आप पर पत्थर तक फेंके। अखबारों व सभाओं में तीव्र आलोचना हुई, लेकिन उन सब बाधाओं से आप हतोत्साह न होकर और भी दुगने उत्साह से काम करने लगीं। सन् १८७४ में आप पर संतति-निग्रह-संबंधी पैम्फलेट प्रकाशित करने का अभियोग लगाया गया। न्यायाधीश ने उस अभियोग से तो आपको बरी कर दिया, लेकिन धर्मच्युत होने का अपराध लगा दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि आपको अपनी पुत्री से हाथ धोना पड़ा। वह पति को मिल गई। इस अभियोग से मुक्त होने पर आपने 'न्यू माल्थ्यूज़ियन लीग' नाम की संस्था द्वारा और भी जोरों से संतति-निग्रह का प्रचार शुरु किया। आपका कहना था कि जन-संख्या जिस अनुपात में बढ़ रही है, उस अनुपात में भोजन पदार्थों की वृद्धि नहीं हो रही। इसलिए मनुष्य को कृत्रिम साधनों से संतति-निग्रह करना चाहिए।

सन् १८८९ में आपकी मुलाकात थियोसोफी की प्रवर्तिका मेडम ब्लैवेट्स्की से हुई। इस मुलाकात ने आपके जीवन पर गहरा प्रभाव

डाला। भौतिक जीवन ही सब कुछ नहीं है, आध्यात्मिक जीवन उससे भी महत्वपूर्ण और वास्तविक है,-इस सत्य को अनुभव करते ही आपने नास्तिकवाद और न्यू माल्थसवाद आदि को, जिन पर दृढ़ रहकर आपने इतना कष्ट-सहन किया था, एक दम छोड़ दिया। आपने अत्यन्त निर्भीकता के साथ अपना भ्रम स्वीकार किया। नास्तिकों की नेत्री एनी-बेसेण्ट आस्तिकों की नेत्री बन गईं।

उसके बाद आप बहुत कम वर्ष इंग्लैण्ड में रहीं। लेकिन इंग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन में आपने अपना एक विशेष स्थान बना लिया। वहांके अनेक आन्दोलनों में प्रमुख भाग लिया। अपने नास्तिक मित्र चार्ल्स ब्रैडला को पार्लमेण्ट में प्रविष्ट कराने के लिए आपने घोर आन्दोलन किया। नास्तिक होने से चार्ल्स ब्रैडला पार्लमेण्ट में ईश्वर की शपथ लेने से इनकार करते थे। इसीलिए उन्हें वहां बैठने नहीं दिया जाता था। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने सरकार को बाधित करने के लिए एक विशाल दल संगठित किया, जिसके सदस्यों ने सेविंग बैंकों और उन वस्तुओं का बहिष्कार किया, जिन पर सरकारी टैक्स लगा हुआ था। अन्त में चार्ल्स ब्रैडला का पार्लमेण्ट में बैठने का अधिकार स्वीकार किया गया। जीते हुए पशु-पक्षी आदि के चीरफाड़ के विरोधी आन्दोलन में भी आपका मुख्य भाग था। मज़दूरों की दयनीय दशा देखकर आपका हृदय विचलित हो गया। आप साम्यवादिनी बन गईं और फ़ेबियन सोसाइटी में सम्मिलित हो गईं। उसकी ओर से आपने मज़दूरों के लिए तुमुल आन्दोलन किया। ग़रीब मज़दूरों को पुलिस व मिल-मालिकों के पंजे से बचाने के लिए आपने 'सोशलिस्ट डिफेंस एसोसि-

येशन' कायम किया। 'लिंक' नामक पत्र भी आपने निकालना शुरू किया। भारत और आयर्लैण्ड के स्वातंत्र्य-आन्दोलन के साथ भी आप की पूरी सहानुभूति थी। इन सब विविध सार्वजनिक आन्दोलनों के साथ साथ इंग्लैण्ड के विद्वत्समाज में भी आपकी विशेष प्रतिष्ठा थी। आपका अध्ययन और अनुशीलन अगाध था। विविध भाषाओं और विविध विषयों की आप पण्डिता थीं। थियोसोफ़ी में प्रवेश करने के बाद अध्यात्मशास्त्र आपका सबसे प्रिय विषय हो गया।

थियोसोफ़ी की प्रवर्तिका मैडम ब्लैवेट्स्की के देहान्त के बाद उस सोसायटी का समस्त भार आपके सबल एवं समर्थ कन्धों पर आ पड़ा। उस महान् उत्तरदायित्व को आपने अन्ततक बड़ी योग्यता से निभाया। इसके लिए आपको प्रायः समस्त युरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया व एशिया का भ्रमण करना पड़ा और इंग्लैण्ड का सार्वजनिक जीवन छोड़ कर आपने विश्व के विशाल क्षेत्र में प्रवेश किया। कुछ समय बाद आप भारत आगईं और यहीं से थियोसोफ़िकल सोसाइटी का काम सम्पूर्ण देशों में चलाने लगीं। थियोसोफ़ी का यह मन्तव्य है कि संसार में जितने धर्म समय-समय पर आविर्भूत हुए हैं, उन सबने संसार का कुछ न कुछ कल्याण ही किया है। सब धर्मों में सत्य है। ईश्वर का अस्तित्व है और वह कल्याणकारी है। मनुष्य की आत्मा अमर है। न्यायपूर्ण ईश्वरीय नियमों का संसार पर शासन है। हिन्दू दर्शनों की आध्यात्मिकता की ओर थियोसोफी का बहुत झुकाव है। इस नवीन धर्म ने संसार के बड़े-बड़े विचारकों और वैज्ञानिकों को अपनी ओर सहज में आकर्षित कर लिया। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने हिन्दू धर्म का गम्भीर

अध्ययन कर बीसियों विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों से युरोपियन विद्वानों की आँखें खोल दीं। वे हिन्दू-धर्म व भारतीय संस्कृति का परिचय प्राप्त कर चकित रह गये। पश्चिम की चकाचौंध में पड़े बीसियों भारतीय विद्वान् भी अपने धर्म व अपनी संस्कृति के विशुद्ध रूप को समझने लगे। फिर तो आपने अपना समस्त जीवन भारत के ही अर्पित कर दिया। आप अपनी सम्पूर्ण शक्ति, विद्वत्ता, प्रतिभा और प्रभाव को लेकर भारत की सेवा में लग गईं। शिक्षा आपका प्रिय विषय था और आपने अनेक भारतीय मित्रों की सहायता से ७ जुलाई सन् १८६८ को बनारस में 'सैण्ट्रल हिन्दू स्कूल' खोला, जो बाद में कालेज और फिर हिन्दू युनीवरसिटी के रूप में परिणत हो गया। उसको 'इण्डियन यूनिवरसिटी' बना देने के लिए आप बहुत उत्सुक थीं। सरकार के पास इस सम्बन्ध में आपने आवेदन-पत्र भी भेज दिया था। १६०६ में आपने इंगलैण्ड जाकर भारत-मन्त्री से भी इस सम्बन्ध में बातचीत की थी। उधर मालवीय जी भी हिन्दू विश्वविद्यालय की योजना बनाने में लगे हुए थे। यह निश्चय हुआ कि दोनों योजनायें मिला दी जावें। आपके खोले हुए कालेज को ही १६१६ में हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप दे दिया गया।

ऐसा क्रियाशील और शक्तिशाली व्यक्ति भारत के राजनैतिक आन्दोलन से पृथक नहीं रह सकता था। १६१३ से आपने इसमें कुछ दिलचस्पी लेनी शुरू की और इसी उद्देश्य से 'कामनवील' नामक साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया। एक साल बाद १४ जुलाई १६१४ को 'मदरास स्टैण्डर्ड' नामक दैनिक पत्र मोल लेकर 'न्यू इण्डिया' नाम से

एक दैनिक पत्र भी निकालना शुरू कर दिया। तब 'न्यू इण्डिया' भारत का सब से अधिक लोकप्रिय पत्र था। उक्त दोनों पत्रों ने भारत के राजनैतिक वातावरण में प्रचण्ड जागृति पैदा की थी।

कांग्रेस में आपने आना-जाना शुरू कर दिया था। सब से पहला महत्वपूर्ण कार्य आपने कांग्रेस के गरम और नरम दलों को मिलाने का किया। १६१४ में यद्यपि श्री गोखले व लोकमान्य तिलक में समझौता न होसका, तथापि आप प्रयत्नशील रहीं। १६१६ में दोनों विरोधी नेता एक प्लैटफार्म पर बैठे। उसके बाद समस्त भारत का राजनैतिक नेतृत्व सम्पादन करने में आपको अधिक समय न लगा। वस्तुतः आपने नये विचार, नये दृष्टिकोण, नये साधन और नई शक्ति के साथ संगठन का एक बिलकुल नया ढंग लेकर कांग्रेस के क्षेत्र में पदार्पण किया था। आपके महान् व्यक्तित्व की छाप पहले ही सारे जगत् पर लग चुकी थी। पूर्व और पश्चिम प्रायः सभी देशों में लाखों की संख्या में आपके भक्त एवं अनुयायी विद्यमान थे। इसलिए आपको भारतीय राजनीति को एक नवीन जीवन प्रदान करने में अधिक कुछ भी समय नहीं लगा। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रभृति कांग्रेसी नेता यूरोपीय महासमर में की गई भारत की सेवाओं के पुरस्कार में सरकार से राजनैतिक अधिकारों की मांग करते थे; लेकिन आपने इस दीन भावना का तीव्र विरोध किया और कहा कि "भारत को राजभक्ति के लिए पुरस्कार देने की बात कही गई थी। लेकिन भारत अपने पुत्रों के रक्त और पुत्रियों के गर्वपूर्ण आंसुओं के साथ कोई सौदा या मोल-तोल करना पसन्द नहीं करता। वह तो एक राष्ट्र की हैसियत से न्याय पाने के अधिकार का

दावा करता है। वह बतौर पुरस्कार के नहीं, किन्तु अधिकार के साथ न्याय चाहता है।"

कांग्रेस का कार्य जिस मन्द गति से चल रहा था, उससे आप सन्तुष्ट नहीं थीं। आपमें बिजली की-सी शक्ति समाई हुई थी। आप कांग्रेस को क्रियाशील जीती-जागती संस्था बनना चाहती थीं। आपने इसी विचार से पहली सितम्बर १९१६ को होमरूल लीग की स्थापना की। होमरूल लीग का काम जोरों के साथ होने लगा। सारे देश में होमरूल लीग की शाखाओं का जाल बिछ गया। सब जगह वासन्ती देवी का नाम गूंजने लगा। आपने देश में एक नवजीवन का संचार कर दिया। सरकार घबरा गई। उसने एक साथ सब हथियार आपके विरोध में उठा लिये। बरार और बम्बई प्रान्त में आपका प्रवेश बन्द कर दिया गया। आपके 'न्यू इण्डिया' और 'कामनवील' से जो होम रूल का प्रचार करने के सर्वश्रेष्ठ साधन थे, ज़मानतें मांगी गई। २०००० रु० तक की ज़मानत ज़ब्त कर ली गई। अन्त में १५ जून १९१७ को आप वाडिया और अरण्डेल के साथ गिरफ्तार कर ली गईं। होमरूल आन्दोलन प्रचण्ड आग की तरह चारों ओर फैलता चला गया। आपके सम्बन्ध में देश में इतना उत्साह भर गया कि आपको छुड़ाने के लिए कांग्रेस कमेटी ने सत्याग्रह करने पर विचार किया। मदरास में तो सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय भी होगया। मदरास हाई कोर्ट के पेंशनयाफ्ता जज सर सुब्रह्मण्य ऐयर, हिन्दू-संपादक श्री कस्तूरी रंगा ऐयर और श्री सी० पी० रामस्वामी ऐयर सत्याग्रह के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करनेवालों में अगुआ थे। सत्याग्रह प्रारम्भ

होने ही वाला था कि मि० मांटेगू की प्रसिद्ध घोषणा हुई। उससे राज-नैतिक वातावरण में शान्ति छा गई और सत्याग्रह का विचार स्थगित होगया। फिर भी सरकार के अन्याय का मुंहतोड़ जवाब देने के लिए देश ने उसी वर्ष कलकत्ता में होनेवाली कांग्रेस का आपको सभापति चुना। कांग्रेस के अधिवेशन से पहले आप छोड़ भी दी गईं। आपका भाषण भारत के स्वशासन पर लिखा गया एक बहुत ही सुन्दर निबन्ध है। आपके सभापतित्व में कांग्रेस का अधिवेशन तीन दिन का कोई मेला होकर नहीं रह गया था। आपही सर्वप्रथम सभानेत्री थीं जिन्होंने साल भर तक अपने पद की ज़िम्मेवारी निबाहने का दावा किया था। आपही पहली महिला थीं जिनको भारतीय राष्ट्र ने सम्मान के सब से ऊंचे आसन पर बिठाया था। भारतीय महिला समाज में उससे अपूर्व जागृति पैदा हुई। होमरूल लीग आन्दोलन में सम्मिलित होकर स्त्रियों ने पहले-पहल भारत के राजनैतिक जीवन में प्रवेश किया।

१९१६ से १९१८ तक सारे देश में आप ही आप थीं। श्रीयुत गोखले और श्री फीरोजशाह मेहता का देहान्त हो चुका था। लोक-मान्य तिलक अत्यन्त वृद्ध हो चुके थे। स्वास्थ्य भी उनका ठीक न रहता था। सर दीनशा ईदलजी वाचा को बुढ़ापे ने आ घेरा था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के विचारों पर भी ज़ंग चढ़ना शुरू हो गया था। गान्धीजी भारतीय राजनीति का अभी अध्ययन कर रहे थे। लाला लाजपतराय अमेरिका में निर्वासित का-सा जीवन बिता रहे थे। माल-वीयजी के लिए देश को किसी नये मार्ग पर ले जाना सम्भव नहीं था, और वे अपने हिन्दू विश्वविद्यालय की धुन में लगे हुए थे। अप्रतिद्वन्दी

नेता की तरह आपने देश के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। महान् व्यक्तित्व, अदम्य साहस, अद्भुत कार्यशक्ति और विलक्षण प्रतिभा आदि के जो गुण एक नेता में चाहिएँ, उनकी आपमें कुछ कमी नहीं थी। सेवा की भावना भी आपमें ओत-प्रोत थी। विचार भी अत्यन्त अधिक उग्र थे। लेखनी और वाणी दोनों से आप आग बरसाती थीं। सरकार के अधिकारी और कांग्रेस के तत्कालीन नेता दोनों ही लोकमान्य तिलक के प्रति सशंक रहते थे, किन्तु आपने निर्भय होकर सदा ही उनका साथ दिया।

१९१८ में आपने एक ऐसे बिल की मांग की, जिसके अनुसार १९२३ या अधिक से अधिक १९२८ तक भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया जाय और बीच के इन पांच या दस वर्षों में भी शासन की बागडोर क्रमशः भारतीयों के हाथों में आती चली जाय। १९१९ में महात्मा गांधी के रौलेट बिल के विरोध में शुरू किये गये सत्याग्रह-आन्दोलन से मतभेद होने और नये शासन-सुधारों से सरकार के प्रति आशावादी बन जाने के कारण देश के नेतृत्व की बागडोर आपके हाथों में से निकल गई। इसलिए उसके बाद का आपका जीवन कांग्रेस की दृष्टि से बहुत महत्व-पूर्ण नहीं रहा।

कांग्रेस से अलग होकर भी अपने तरीके से आपने राष्ट्रीय प्रगति का काम जारी रक्खा। कुछ वर्षों बाद १९२५ में आपने 'कामनवेल्थ आफ इण्डिया बिल' नाम से भारत का एक शासन-विधान बनाया और उसे पार्लमेंट से पास कराने के लिए कई बार इंग्लैण्ड भी गईं। इस बिल का उद्देश्य था भारत में औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना।

यह बिल पार्लमेंट में पेश ही होकर रह गया। १९२७ में मदरास में हुए कांग्रेस-अधिवेशन में पुनः सम्मिलित हुईं और पूर्ण स्वराज्य के ध्येय का समर्थन किया। १९२८ में साइमन-कमीशन के बहिष्कार के देशव्यापी आन्दोलन में आपने भी सहयोग दिया। सत्याग्रह आदि तीव्र उपायों से आप बिलकुल सहमत न थीं। इसलिए ८१ वर्ष की अवस्था में भी आप कलकत्ता-कांग्रेस में सम्मिलित हुईं और अपना मतभेद स्पष्ट शब्दों में उपस्थित किया।

अत्यन्त वृद्ध हो जाने के कारण राजनीति से उदासीन होकर भी आप थियोसोफ़िकल सोसायटी का नेतृत्व करती रहीं। श्री कृष्णमूर्ति के नेतृत्व में आपने एक नया पन्थ भी चलाया था, जिसे बाद में श्री कृष्णमूर्ति ने स्वयं ही तोड़ दिया। अडयार (मद्रास) में थियोसोफ़िकल सोसायटी का जो केन्द्र आपने स्थापित किया है, उसीको आपका स्मृति-स्तम्भ समझना चाहिए।

३० सितम्बर १९३३ को आपका देहावसान हुआ और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति रखनेवाला एक महान् व्यक्ति संसार से उठ गया।

सैयद हसन इमाम

[१८७१—१९३३]

विशेष-अधिवेशन, बम्बई—सितम्बर १९१८

"अपने प्रेम में पहला स्थान भारतमाता को दो, दूसरा अपने प्रान्त को और उसके बाद जो चाहो सो स्थान अपनी जाति को दो। यह याद रखो कि तुम पहले हिन्दुस्तानी हो, बाद में कुछ और।" "हम न हिन्दू हैं और न मुसलमान। हम हिन्दुस्तानी हैं और बिहारी हैं।" बिना किसी सन्देह और संकोच के हिमालय की चोटी से अपनी इस राष्ट्रीयता की घोषणा करने वाले राष्ट्रवादी मुसलमानों को जन्म देने का बिहार को विशेष गौरव प्राप्त है। उनमें सैयद हसन इमाम का अपना विशेष स्थान है। पटना जिले के नेवड़ा गांव के मुगल-साम्राज्य में प्रतिष्ठा प्राप्त सैयद परिवार में ३१ अगस्त १८७१ को आपका जन्म हुआ था। पटना और आरा में आपकी अधिकांश शिक्षा हुई। इतिहास और अंग्रेज़ी साहित्य में आपकी अधिक रुचि थी। १४ वर्ष की आयु में आपने अंग्रेज़ी भाषा के अधिकांश कवियों के ग्रन्थ पढ़ लिये थे और स्कूल में पढ़ते हुए कालेज की सभाओं के विवाद में भाग लेना शुरू कर दिया था। अपनी माता की प्रेरणा से आप २४ जुलाई १८८९ को विद्याध्ययन के लिए विलायत गये। वहां श्रीयुत सच्चिदानन्द सिंह के

साथ आप सहोदर भाई की तरह रहते थे। रात-दिन पढ़ाई में निमग्न रहते और लन्दन की पैडिंगटन पार्लमेंट के विवादों में माने हुए नेता की तरह भाग लिया करते थे। समाचार पत्रों में आपके भाषणों की प्रशंसा हुआ करती थी। उसी समय सार्वजनिक कार्यों में आपका अनुराग पैदा होगया था। इण्डियन सोसायटी के, जिसके दादाभाई नौरोजी सभापति थे, आप मन्त्री थे। लन्दन की अन्जुमन इस्मालिया के भी आप मन्त्री थे। विलियम डिग्वी के प्राइवेट सेक्रेटरी का काम भी आपने कई मास तक किया था। १८९१ में सेन्ट्रल फिंसवरी से दादाभाई जब पार्लमेंट के लिए खड़े हुए थे, तब घर-घर घूम कर उनके लिए आपने मत-संग्रह करने का काम बड़ी योग्यता और लगन के साथ किया था। १८९२ में बैरिस्टरी पास करके आप भारत लौटे। बड़े भाई अली इमाम भी बैरिस्टर थे। बैरिस्टरी द्वारा दोनों भाइयों ने खूब धन और सम्मान प्राप्त किया। प्रान्त के बहुत बड़े-बड़े और पेचीदा मामलों में प्रायः दोनों भाई दोनों ओर से मुकदमा लड़ा करते थे। आपको बैरिस्टरी में अपनी धाक जमाने और नेतृत्व क़ायम करने में अधिक समय नहीं लगा। १९१० में आप कलकत्ता चले गये। वहां हाई कोर्ट में आपने इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त की कि १९१० में आप वहां के जज बना दिये गये। बिहार में हाईकोर्ट की स्थापना होने पर प्रान्त के हर एक जिले से आपको उसका जज बना देने की मांग हुई। लैफ्टिनेंट गवर्नर सर चार्ल्स बेली के यह धमकी देने पर कि यदि वैसा किया जायगा तो वे त्याग-पत्र दे देंगे, जनता की मांग पूरी न हो सकी। आपके फैसले विद्वत्तापूर्ण होते थे और कानून की पेचीदगियों तथा बारीकियों

के सम्बन्ध में प्रमाण माने जाते थे। १९१३ में आपका स्वास्थ्य इतना बिगड़ गया कि आप एक बार हाई कोर्ट की सीढ़ियों पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। युरोप की यात्रा से भी कुछ लाभ नहीं हुआ। तब आप कलकत्ता से पटना चले आये और यहां पहले के समान सफलता पूर्वक बैरिस्टरी करने में लग गये। पटना हाई कोर्ट का जज बनने के लिए आपसे कई बार अनुरोध किया गया, किन्तु आप सार्वजनिक कार्यों में इतना अधिक फंस चुके थे कि उसको स्वीकार करने से आपने इन्कार कर दिया।

अपने धन्धे में आपने जिस प्रकार अधिकतम सफलता और उच्चतम पद प्राप्त किया था वैसे ही सार्वजनिक जीवन में भी आपने अधिकतम सफलता और उच्चतम पद प्राप्त किया। देश-हित के लिए आप के हृदय में सर्वोपरि स्थान था। जातिगत या साम्प्रदायिक दृष्टि से अधिकारों के बटवारे के आप सदा विरोधी ही रहे और कांग्रेस के अधिवेशनों में भी विशेष उत्साह के साथ भाग लेते रहे। १९१० में इलाहाबाद में हुई कांग्रेस में आपने जिला और म्यूनिसिपल बोर्डों में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व का घोर विरोध किया था। सार्वजनिक संस्थाओं और कार्यों में हिंदू-मुसलमान का विचार किये बिना आप मुक्त हस्त से दान दिया करते थे। अलीगढ़ और बनारस की युनिवरसिटियों को आपने एक समान दान दिया था। सहायता की आशा से आने वाला कोई भी विद्यार्थी आपके यहां से निराश नहीं लौटता था। बिहार नेशनल कालेज पर आर्थिक संकट आने पर आप उसको हज़ारों की सहायता किया करते थे और कई वर्षों तक एक हज़ार रुपया वार्षिक देते रहे

थे। १६०६ में गया में आप बिहारी विद्यार्थी-सम्मेलन के चतुर्थ अधि-वेशन के सभापति हुए और १६१७ में जब होमरूल आन्दोलन जोरों पर था और एनी बेसेन्ट के नजरबन्द किये जाने पर देश में असन्तोष की आग भभक उठी थी, तब आप बिहार-प्रान्तीय-राजनैतिक-सम्मेलन के अध्यक्ष हुए थे। सितम्बर १६१८ में बम्बई में कांग्रेस के विशेष अधिवेशन का समय भी वैसा ही नाजुक था। माण्टफोर्ड-सुधारों को लेकर देश बड़ी द्विविधा में पड़ा हुआ था। १६१६ में लखनऊ-कांग्रेस में स्थापित हुई एकता छिन्न-भिन्न हो गई थी। उस समय देश की नज़र आप पर गई। उस अधिवेशन के सभापति होने का गौरव आपको प्राप्त हुआ और आपके व्यक्तित्व से आकर्षित होकर नरम दल के रूठे हुए लोग भी उसमें शामिल हुए।

राष्ट्रीय-महासभा का समापतित्व आपको अनायास ही प्राप्त नहीं हुआ था। सार्वजनिक क्षेत्र में आपने कट्टर राष्ट्रवादी के जिस रूप में प्रवेश किया था, उसको आपने अन्त तक निबाहा। हाई कोर्ट के जज होने के बाद आप भी अपने बड़े भाई अली इमाम के समान अधिकारी वर्ग में ऊंची से ऊंची प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकते थे। आप जान-बूझकर उससे दूर रहे। जिन महापुरुषों के त्याग, साधना और राष्ट्रनिष्ठा से बिहार का निर्माण हुआ है, उनमें सैय्यद हसन इमाम का स्थान बहुत ऊंचा है। १६०३ में पटना में श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के आगमन और कांग्रेस आन्दोलन का विरोध करने के लिए मुसलमानों की एक सभा हुई थी। उस सभा का प्रतिवाद करने में आपने जिस साहस, धैर्य और हिम्मत का परिचय दिया था, वह कभी फीका या हलका नहीं

पड़ा। १६११ में आप अलीगढ़ कालेज के ट्रस्टी और चन्दा जमा करने के लिए बनाई गई बिहार-कमेटी के सभापति बनाये गये। हर रविवार का सारा दिन आप उस काम के अर्पण करते थे। ढाका में मुस्लिम-लीग का सङ्गठन होने पर श्रीयुत मज़रुल-हक़ के साथ आप उसमें शामिल होने के लिए वहां गये थे। उस समय उसको साम्प्रदायिकता से दूर रखने में आपने कोई बात उठा न रखी थी। 'बिहारी' पत्र का संचालन जिस बोर्ड ने किया था, उसके आप अध्यक्ष थे। १६१६ में 'सर्चलाइट' को जन्म देने में भी आपका प्रेरक हाथ था और वर्षों तक उसके सब लेन-देन का जिम्मेवार आपने अपने को ही बनाया हुआ था। होमरूल-लीग का डेपूटेशन आपके नेतृत्व में विलायत भेजा गया था और १६१६ में खिलाफत डेपूटेशन में भी जिसमें आगा खां, छोटानी और डा० अन्सारी थे, आपको शामिल कर लिया गया था। १६२४ में ली कमीशन के सामने आपने जो साक्षी दी थी, उसमें राष्ट्रवादी भारतीयो के दृष्टिकोण को आपने बहुत खूबी के साथ उपस्थित किया था।

आप जैसे कट्टर राष्ट्रवादी थे, वैसे ही पक्के समाज-सुधारक भी थे। आपका यह स्पष्ट मत था कि "हमारी बहुत-सी कठिनाइयो का कारण हमारी हीन सामाजिक अवस्था है। राजनीतिक प्रगति से यदि पहले नहीं तो कम-से-कम उसके साथ तो सामाजिक प्रगति का काम होना ही चाहिए।" विद्यार्थी सम्मेलन के सभापति के भाषण में आपने कहा था कि "अछूतों को अनादि कालीन हीन अवस्था में और स्त्रियों को निराशापूर्ण उपेक्षा तथा विवेकहीन पराधीनता में रखने से हमारी

प्रगति का चक्र सीधा न घूम कर उलटा घूमने लगेगा। स्त्रियों का वर्तमान अवस्था से उद्धार किये बिना हमारे समानता के दावे को कौन स्वीकार करेगा ?" विचार, उच्चार और आचार में आप एक-से थे। इसलिए आप पहले बिहारी थे, जिन्होंने स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान दिया था और लड़कों के साथ लड़कियों को भी घर वालों के विरोध की परवा न कर सुशिक्षित किया था और उनको अपने साथ आप विलायत भी ले गये थे। आपकी ही प्रेरणा से टिकारी के महाराज ने अपनी तीन करोड़ की जायदाद का स्त्री-शिक्षा के लिए ट्रस्ट बना दिया था, जिसके आप एक प्रभावशाली सदस्य थे।

इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेने पर भी आपके जीवन और रहन-सहन में बहुत सादगी और सरलता थी। प्रायः बिहारी वेश-भूषा में आप पहले-दूसरे दर्जे में यात्रा किया करते थे। मदोन्मत्त गोरे सरकारी अफ़सर आपके साथ बैठने में अपनी हेठी समझ आपका अपमान किया करते थे। तब आप अपने स्वाभिमान तथा स्वदेशाभिमान के लिए ऐसे अड़ जाते थे कि रेलवे स्टेशनों पर एक भयानक काण्ड उपस्थित हो जाता था और आपका अपमान करनेवालों को आप से माफ़ी तक मांगनी पड़ती थी।

१९२० में सत्याग्रह के प्रतिज्ञा-पत्र पर सबसे पहले हस्ताक्षर करने वालों में आप एक थे। वह आपके लिए देश-सेवा की ऐसी पुकार थी, जिसको अनसुनी करना आपके लिए सम्भव नहीं था। देश के प्रति कर्तव्य-पालन की दृष्टि से आपने उसको स्वीकार किया था। १९३० के नमक-सत्याग्रह के भी आप समर्थक थे। ५०० रु० महीने

की सहायता उसके लिए आपसे मिलती रही। आपकी युरोपियन पत्नी श्रीमती नटी इमाम और लड़की महमूदा ने प्रान्त के राष्ट्रीय आन्दोलन में जान फूँक दी थी। आप दोनों का सारे प्रान्त का दौरा, श्रीमती नटी की गिरफ़्तारी और मुक़द्दमा प्रान्त के राजनैतिक इतिहास की गौरवपूर्ण घटनायें हैं।

१९३३ में एकाएक हृदय की गति बन्द हो जाने से आपका देहान्त हो गया, किन्तु आपकी जगाई हुई राष्ट्रीय भावना आपके प्रान्त में आज भी जाग्रत है और सदा ही जाग्रत रहेगी।
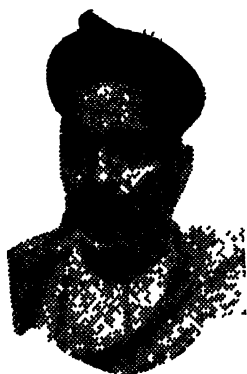
बाल गङ्गाधर तिलक

[१८५६—१९२०]

मनोनीत सभापति, दिल्ली—१९१८

महात्मा गांधी के अलावा इस पराधीन देश की स्वतन्त्रता के लिए सब से अधिक तप और त्याग करनेवाला तथा जनता के हृदयों का सम्राट बनने वाला यदि कोई व्यक्ति हुआ है तो वह स्वर्गीय लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक थे। आपने देश के लिए उस समय बार-बार जेल के कष्टों को सहा था, जब कि आजकल की तरह देश-भक्तों के लिए जेल जाना साधारण बात नहीं हुई थी। १९१८ में देहली में हुई कांग्रेस के सभापति चुने जाने के बाद भी आप उसका सभापतित्व नहीं कर सके, किन्तु फिर भी विविध सार्वजनिक सेवाओं के कारण आपका व्यक्तित्व इतना व्यापक, महान् और महत्वपूर्ण है कि राष्ट्रपतियों की नामावली में से केवल इसलिए इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि आप किसी अधिवेशन के सभापति नहीं हुए थे। वह दैवयोग की एक अनहोनी-सी घटना थी। "राष्ट्रदेवो भव" की शिक्षा-दीक्षा देनेवाले आप सबसे पहले राष्ट्र-गुरु हैं। युग-निर्माता और

राष्ट्र-विधाता होने से आपका स्थान सभी राष्ट्रपतियों से कहीं अधिक ऊंचा है। 'लोकमान्य' तथा हृदय-सम्राट् होने का सम्मान और किस नेता को प्राप्त हुआ है?

आपका जन्म रत्नागिरी में २३ जुलाई १८५६ को हुआ था। आपके पिता गङ्गाधर रामचन्द्र तिलक कोकण में रत्नागिरी ज़िले के निवासी थे। पहले वह वहीं एक स्कूल में अध्यापक थे, बाद को थाना और पूना जिलों में स्कूलों के असिस्टेन्ट डिप्टी इन्स्पेक्टर हो गये थे। गणित और व्याकरण के वह बड़े विद्वान थे। आपका नाम रक्खा तो बलवन्तराव गया था, परन्तु घर में बोल-चाल का नाम 'बाल' होने के कारण अन्त में प्रसिद्ध भी वही हो गया। बचपन में पिता घर पर ही संस्कृत के श्लोक कण्ठस्थ कराते रहते थे और इसीको आपके शिक्षण का प्रारम्भ समझना चाहिए। जब पिता पूना चले गये तब उन्होंने आपको नियमपूर्वक पूना सिटी स्कूल में भरती करा दिया। वहीं से १८७२ में मेट्रिक पास करके १८७६ में प्रथम श्रेणी में आनर्स के साथ डेक्कन कालेज से बी० ए० पास किया। विद्यार्थी अवस्था में भी आपका स्वभाव बहुत हठी परन्तु चतुर था। अध्यापकों के साथ बहुधा पढ़ाई-लिखाई की बातों पर झगड़ा हो जाया करता था। कालेज-जीवन में व्यायाम करना, कुश्ती लड़ना, अन्य विद्यार्थियों को भी इसके लिए उत्साहित करना और जो विद्यार्थी बहुत शृङ्गार अथवा नाज़-नखरा करते उन्हें तङ्ग करना आपके विद्यार्थी-जीवन की विशेषतायें थीं। इन्हींके कारण आपके साथियों ने आपका नाम 'डेविल' और 'ब्लण्ट' रख छोड़ा था। १८७७ में आपने गणित में एम० ए० की परीक्षा दी,

परन्तु सफल न हो सके। १८७६ में एल-एल० बी० की परीक्षा पास की, परन्तु वकालत नहीं की। कालेज में ही इनकी मित्रता महाराष्ट्र के प्रसिद्ध समाज-सुधारक आगरकर से हो गई थी और दोनों ने निश्चय किया था कि हम अपना जीवन सरकारी नौकरी आदि न करके देश-सेवा में अर्पण कर देंगे।

बाल गङ्गाधर तिलक और आगरकर में बहुत विचार के बाद यह निश्चय हुआ कि देश को सबसे अधिक आवश्यकता शिक्षा की है। इसलिए दोनों ने पहले शिक्षा का ही काम हाथ में लिया। दोनों ने स्वर्गीय चिपलूणकर शास्त्री की सहायता से १ जनवरी १८८० को १६ विद्यार्थी लेकर 'न्यू इङ्गलिश स्कूल' की स्थापना की। तीन मास में ही इस स्कूल के विद्यार्थियों की संख्या ५०० हो गई। १८८४ में तो इस स्कूल की विद्यार्थी-संख्या एक हज़ार से भी ऊपर थी और मैट्रिक की परीक्षा में इस स्कूल के ८१ प्रतिशत विद्यार्थी पास हुए थे। इसी स्कूल के अनेक अध्यापकों ने ही मिल कर २४ अक्टूबर १८८४ को डेक्कन एज्यूकेशन सोसायटी का सङ्गठन किया और २ जनवरी १८८५ को इसी सोसायटी की तरफ़ से पूना के प्रसिद्ध फ़र्ग्यूसन कालेज की नींव डाली गई। ये शिक्षण-संस्थायें निरन्तर उन्नति करती जा रही थीं, परन्तु साथ ही कार्यकर्त्ताओं में कार्य-प्रणाली की अनेक बातों पर मतभेद भी बढ़ता जा रहा था। मुख्य मतभेद इस बात पर था कि तिलक आदि कुछ सज्जन तो कहते थे कि कार्यकर्त्ताओं को वृत्ति-मात्र लेकर अपना सब समय, शक्ति और बुद्धि संस्था की ही सेवा में लगा देनी चाहिए। उन्हें यदि ऊपर से कुछ आमदनी हो तो वह संस्था को ही दे देनी

चाहिए। दूसरा पक्ष यह था कि संस्था का कार्य कर चुकने पर फालतू समय में कार्यकर्त्ताओं को अन्य काम करने की छूट होनी चाहिए। इस प्रकार के मतभेदों के कारण १४ अक्तूबर १८९० को तिलक इन शिक्षण-संस्थाओं से अलग हो गये।

सन् १८८१ में ही तिलक और आगरकर दोनों मित्रों ने मिलकर 'केसरी' और 'मरहटा' नामक मराठी तथा अंग्रेजी भाषाओं के दो साप्ताहिक पत्र निकाले। पत्रों की नीति का निर्धारण ये दोनों मित्र और चिपलूणकर शास्त्री मिलकर करते थे। तीनों ही मिलकर उनका सम्पादन करते थे। परन्तु तिलक समाज-सुधार के मामलों में जल्दी करने के पक्षपाती नहीं थे और शेष दोनों सम्पादक उग्र समाज-सुधारक थे। इस कारण प्रायः यह मत-भेद बना रहता था। उधर शिक्षा-संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं में मत-भेद था ही। इस कारण १८९१ में तिलक दोनों पत्रों की सारी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर मित्रों से अलग हो गये। उस समय 'मरहटा' पर ७०००) रु० का ऋण था। मित्रों से अलग होकर तिलक को आजीविका की चिन्ता हुई। 'केसरी' और 'मरहटा' से आजीविका का प्रश्न हल नहीं हो सकता था। 'मरहटा' तो घाटे में चलता ही था, 'केसरी' से जो थोड़ी-बहुत आय होती थी वह अंग्रेज़ी साप्ताहिक का ऋण उतारने में और उसका घाटा पूरा करने में चली जाती थी। अतः आजीविका का प्रश्न हल करने के लिए आपने एक लॉ-क्लास खोली और अन्य दो मित्रों के साझे में एक जिनिंग फैक्टरी चलाई। फैक्टरी से न लाभ हुआ न हानि। वह कुछ वर्ष चलकर बंद हो गई। परन्तु लॉ-क्लास से लगभग १५०) रु० मासिक आय होने

लगी। इस क्लास में पढ़ाने का काम कुछ अन्य मित्र भी करते थे। यह क्लास सन् १८६६ तक चलती रही। उसके बाद दोनों पत्रों का तथा अन्य सार्वजनिक कार्य बहुत हो जाने के कारण यह बन्द कर देनी पड़ी।

लॉ-क्लास बन्द कर देने के बाद लोकमान्य तिलक का मुख्य कार्य लोक-सेवा ही रह गया और उनकी लोक-सेवा के मुख्य साधन उनके दोनों पत्र 'केसरी' और 'मरहटा' थे। उन्हींके कारण आप इतने लोक-प्रिय हुए, और आपको अपने जीवन में बार बार जो कष्ट उठाने पड़े वह भी इन्ही पत्रों के कारण। 'केसरी' इतना लोक-प्रिय पत्र था कि वह एक समय तीस सहस्र की संख्या में छपता था और भारतवर्ष में मराठी पढ़ सकने वाला शायद ही कोई ऐसा घर था, जिसमें 'केसरी' न जाता हो।

'केसरी' के कारण आपपर पहला मुकद्दमा सन् १८८२ में चला था। उस समय पत्र के सम्पादक आप और स्व० आगरकर दोनों थे। इस कारण मुकद्दमा भी दोनों पर ही चला। आपने कोल्हापुर रियासत के सम्बन्ध में कुछ लिखा था, जिसको वहां के दीवान श्री बरवे ने मान-हानिकारक मानकर सम्पादक-द्वय पर मुकद्दमा चलाया। सम्पादकों ने यद्यपि मित्रों के अनुरोध से श्री बरवे से क्षमा मांगली थी, परन्तु उन्होंने मुकद्दमा नहीं उठाया और दोनों को १७ जुलाई को चार-चार मास सादी क़ैद की सज़ा हुई। इस सजा से जनता में सम्पादकों की इज्जत बढ़ गई और जब वे जेल से छूटे, तब हजारों की संख्या में लोगों ने जेल के फाटक पर एकत्र होकर दोनों का स्वागत किया।

सन् १८८८ में 'केसरी' ने एक बड़ा महत्वपूर्ण आन्दोलन उठाया। वह 'क्राफ़र्ड' प्रकरण के नाम से प्रसिद्ध है। क्राफ़र्ड नाम का एक अंग्रेज़ सिविलियन रत्नागिरी का कमिश्नर था। वह अपने मातहतों की मारफत रिश्वत लिया करता था। सरकार ने उसपर तथा उसके मातहत कई भारतीय तहसीलदारों आदि पर लगाये गये आरोपों की जाँच के लिए एक कमीशन बिठाया। इस कमीशन ने यह सोचकर कि यदि क्राफर्ड को अपराधी ठहराया तो सारी अंग्रेज़ जाति की बदनामी होगी, उनको तो छोड़ दिया और उनके साथी भारतीय अभियुक्तों को अपराधी ठहरा दिया। लोकमान्य ने इस अन्याय के विरुद्ध अपने 'केसरी' द्वारा और सार्वजनिक सभाओं द्वारा बड़ा आन्दोलन किया। मि० डिग्बी और ब्रेडला आदि ब्रिटिश पार्लमेन्ट के सदस्यों से पत्र-व्यवहार करके इस विषय को पार्लमेण्ट में भी उठवाया। इस प्रकरण से इङ्गलैण्ड की जनता में बहुत जाग्रति हुई।

सन् १८६३ और १८६४ में आपने जनता को जागृत तथा सङ्गठित करने के दो काम और किये। प्राचीन हिन्दू संस्कृति के आप बहुत प्रेमी थे। आपने लोगों में भी इसके प्रति प्रेम बढ़ाने के लिए गणेश-उत्सव सार्वजनिक रूप से मनाने की परिपाटी चलाई। यह प्रथा इतनी लोकप्रिय हुई कि आज तक गणेश-पूजा महाराष्ट्र का सबसे प्रमुख उत्सव बना हुआ है। अनेक स्थानों पर मुसलमान भी यह उत्सव मनाते हैं। दूसरा उत्सव उन्होंने राजनैतिक जागृति के लिए शिवाजी-उत्सव के नाम से आरम्भ किया। इस उत्सव में राजनैतिक विषयों पर विचार और विवाद आदि होते थे। यह उत्सव यद्यपि अब

उतना प्रचलित नहीं रहा, परन्तु उस समय तो यह बङ्गाल सरीखे दूरस्थ प्रान्त में भी मनाया जाने लगा था और अनेक वर्षों तक मनाया जाता रहा।

१८९५ में लोकमान्य बम्बई प्रान्तिक लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य चुने गये। कौंसिल में आप लोक-पक्ष का समर्थन बड़ी योग्यता तथा निर्भीकता से करते थे। १८९६ में महाराष्ट्र में अकाल पड़ा। आपने 'केसरी' द्वारा तो अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए आन्दोलन किया ही, ग्राम-ग्राम में कार्यकर्ता भेजकर भी लोगों की अन्नादि द्वारा सहायता की, उन्हें संगठित होकर परस्पर सहायता करने का उपदेश दिया और स्थान-स्थान पर सस्ते अन्न की दुकानें खुलवाईं। इस मामले में सरकार की उदासीनता की उन्होंने अपने पत्र में बड़ी तीव्र आलोचना की।

अभी अकाल शान्त नहीं हुआ था, कि अगले ही वर्ष १८९७ में सारे प्रान्त में बड़े ज़ोर का प्लेग फैल गया। सरकार ने प्लेग का प्रसार रोकने के लिए 'क्वारण्टीन' (जहां रोगियों को अथवा सन्दिग्ध रोगियों को अन्य लोगों से अलग करके रखा जाता है) बिठाईं और लोगों को अपने घरों से निकालने के लिए पुलिस के अतिरिक्त गोरे सैनिकों से भी काम लिया। ये पुलिस-मेन और सैनिक ग्रामीण जनता से बड़ा दुर्व्यवहार करते थे। लोगों से पैसे ऐंठने के लिए उन्हें नाना प्रकार से सताते थे, उनका असबाब आदि बेमतलब फेंक देते थे, घरों में घुसकर चोरी कर लेते थे, और कहीं-कहीं तो स्त्रियों से छेड़छाड़ करने की भी शिकायतें सुनी गई थीं। इन सब कारणों से जनता में सरकारी कार्य-कर्ताओं के विरुद्ध इतने तीव्र भाव फैले कि चापेकर नामक एक मन-

चले युवक ने २२ जून १८६७ की रात को प्लेग-कमेटी के चेयरमैन मि० रैएड का खून कर दिया। इससे सर्वत्र बड़ी सनसनी फैल गई, और सरकार ने इसका यह अर्थ लगाया कि 'केसरी' में लिखे हुए लोकमान्य के लेखों का ही यह परिणाम है। फलतः उसने कुछेक लेख चुनकर लोकमान्य पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया और १४ सितम्बर १८६७ को १८ माह कैद की सज़ा दे दी। सज़ा के विरुद्ध अपील करने का भी यत्न किया गया, परन्तु सफलता नहीं मिली।

लोकमान्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करते हुए अपनी विद्वत्ता की छाप अनेक विद्वानों के मन पर बिठा चुके थे। उन्हीं दिनों इन्होंने ज्योतिष-शास्त्र के आधार पर 'ओरायन' नाम से एक निबन्ध लिखा था, जिसमें वेदों की प्राचीनता सिद्ध की गई थी। यह निबन्ध ओरिएण्टल सोसायटी में पढ़े जाने के लिए लिखा गया था और बाद को १८६२ में उसी संस्था की तरफ से पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ था। इस निबंध द्वारा इंग्लैएड के मैक्समूलर आदि विद्वानों के मन में तिलक के लिए बहुत आदर भाव बैठ गया था। उन्होंने तथा भारतस्थ उनके अनेक भारतीय तथा युरोपियन मित्रों ने तिलक को छुड़वाने का बहुत यत्न किया। इसका फल यह हुआ कि सज़ा की पूरी अवधि से ६ मास पूर्व ही आप छोड़ दिये गये।

जेल से छूटने के कुछ ही समय बाद आपके एक धनी मित्र सरदार बाबा महाराज का निःसन्तान ही देहान्त हो गया। उन्होंने अपनी सम्पत्ति का एक ट्रस्ट बना दिया। आप भी ट्रस्टियों में से एक थे। ट्रस्टियों ने सरदार की युवती विधवा ताई महाराज को एक लड़का

गोद दिया। आपके विरोधियों ने ताई को भड़का दिया और आप पर उससे यह आरोप लगवाया कि आपने लड़का उसकी इच्छा के विरुद्ध उसे ज़बरदस्ती गोद दिलवाया है। सरकार ने इसी आधार पर आप पर जाली दस्तावेज़ात बनाने का मुकदमा चलाया। परन्तु उसमें आप निरपराध सिद्ध हुए। उलटा सरकारी अधिकारियों पर ऐसा करने का आरोप प्रमाणित हुआ। आपको फंसाने की सरकारी अधिकारियों की यह चाल बेकार गई।

आप कांग्रेस में भी आगे आ चुके थे। कांग्रेस के नियन्त्रण में यद्यपि आपका हाथ न था, तथापि आपकी आवाज़ उसमें सुनी जाती थी। १६०५ में जब वंग-भंग होकर राजनैतिक आन्दोलन में चेतनता आई तब आपके नेतृत्व में उग्र राजनैतिक विचारों के युवक-दल ने कांग्रेस पर अधिकार करने का यत्न किया। दो-तीन वर्ष तक कांग्रेस के अधिकारी चालबाज़ी से उस दल की उपेक्षा करते रहे। आखिर सन् १६०७ में सूरत की कांग्रेस में दोनों दलों में झगड़ा होकर आपका उग्र दल कांग्रेस से अलग होगया।

१६०८ के जून में सरकार ने आप पर फिर राजद्रोह का मुकदमा चलाया। 'केसरी' के कुछ लेखों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया कि ये राजद्रोह तथा हिंसा के पोषक हैं। आपको छः वर्ष के लिए कालापानी और १०००रु० जुरमाने की सजा हुई। आपने अपने वक्तव्य में कहा था—"जूरी ने यद्यपि मेरे विरुद्ध राय प्रगट की है, पर मेरा अन्तरात्मा कहता है कि मैं पूर्णतः निर्दोष हूं। मानवी शक्ति से दैवी शक्ति अधिक समर्थ है। कदाचित् ईश्वरीय संदेश ऐसा ही है कि मेरे

स्वतन्त्र रहने की अपेक्षा मेरे कारागृह में रहने और कष्ट भोगने से ही मेरा अंगीकार किया हुआ कार्य आगे बढ़ेगा।" ध्येय-निष्ठा और आत्म-विश्वास का कैसा सुन्दर उदाहरण है! लोकमान्य के नाम से आराम-कुर्सियों के राजकारण में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री माननेवाले कष्ट-सहन के इस उज्ज्वल आदर्श को आंखों से कैसे ओझल कर सकते हैं! हाईकोर्ट में फुल बेंच के सामने अपील सुनी गई, पर सजा बहाल रही और आपको मांडले के किले में नजरबन्द रक्खा गया। अपना अमर और अलौकिक ग्रन्थ 'गीता-रहस्य' आपने मांडले की नजरबन्दी में ही लिखा था और तभी १९१२ में आपकी पत्नी का देहान्त हो गया था।

१९१४ में माण्डले से मुक्त होकर आप स्वदेश लौटे। परन्तु कुछ ही समय विश्राम करने के बाद आपने श्रीमती एनी बेसेण्टके साथ मिलकर 'होमरूल'-आन्दोलन आरम्भ कर दिया। महाराष्ट्र के गांव-गांव घूम-कर आपने 'होमरूल' (स्वराज्य) लीग कायम कीं और लोगों को 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और हम उसे लेकर रहेंगे' का सन्देश सुनाया। इसी दौरे में बेलगांव में एक लेक्चर पर फिर राजद्रोह का मुकद्दमा चला। ज़िला-मजिस्ट्रेट ने आपको अपराधी ठहरा दिया था, परन्तु हाईकोर्ट से निरपराध सिद्ध हुए।

१९१६ में आप अपने अनुयायियों सहित कांग्रेस में फिर सम्मिलित हुए। यह वर्ष केवल कांग्रेस के दो दलों में मेल की दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं था, मुसलमानों के साथ भी इसी वर्ष मेल होकर एक पैक्ट किया गया, जिसका आज तक साम्प्रदायिक मामलों में बहुधा उल्लेख किया जाता है।

वह ज़माना यूरोपीयन महायुद्ध का था। सरकार सेना के लिए बहुत बड़ी संख्या में रंगरूट न केवल स्वयं ही भर्ती कर रही थी, बल्कि देश के रईसों, ज़मींदारों और नेताओं को भी इस कार्य में सहायता देने के लिए प्रेरित कर रही थी। बम्बई में इसी कार्य के लिए प्रांत के प्रमुख व्यक्तियों की एक विशेष कान्फ्रेन्स की गई थी। आप भी उसमें सम्मिलित हुए थे। आपने उस कान्फ्रेंस में यह कहकर सबको आश्चर्य में डाल दिया कि सरकार हमें स्वराज्य देने का वचन दे तो हम रंगरूट भर्ती करने में उसकी सहायता कर सकते हैं। ऐसे विकट समय में अपना कार्य साध लेने का साहस और दूरदर्शिता आपसे पूर्व और बाद को भी आज तक किसी भारतीय नेता ने नहीं दिखाई। इसी बात को लेकर आपका गान्धीजी से मतभेद भी हो गया था। गान्धीजी इस प्रकार की शर्त लगाना अधर्म समझते थे और आप उसे धर्म बतलाते थे।

जब आप माण्डले में नज़रबन्द थे तभी सर वैलेण्टाइन शिरोल नाम के एक अंग्रेज़ ने 'इण्डियन अनरेस्ट' नाम की पुस्तक लिखी थी और उसमें आप पर भी अनेक अपमानजनक आक्षेप किये थे। आपने सन् १९१८ में विलायत जाकर सर शिरोल पर मानहानि का मुकद्दमा चलाया। भारत-सरकार ने उसमें इतनी दिलचस्पी ली कि सर शिरोल की सहायता के लिए यहांसे तमाम सरकारी कागज़ात लेकर एक विशेष अफ़सर विलायत भेजा गया। दोनो देशों में इस मुकदमे की इतनी चर्चा हुई कि इसे अंग्रेज़ों ने अपनी और अपने देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। इसी कारण मुकद्दमे का फैसला लोकमान्य के विरुद्ध किया गया।

मुकदमे मे निबटकर लोकमान्य ने अपना समय इंग्लैण्ड में भारतीय स्वराज्य के लिए आन्दोलन करने में लगाया। उन दिनों माण्टेगु-चेम्सफोर्ड शासन-विधान ब्रिटिश पार्लमेंट के सामने पेश था। उसमें भी आवश्यक सुधार करने के लिए आन्दोलन किया। भारतीय कांग्रेस की लन्दन-शाखा में बड़ी अव्यवस्था थी उसका पुनः संगठन किया और वहां की लेबर पार्टी के अनेक नेताओं की भारत में विशेष रूप से दिलचस्पी उत्पन्न की और उस पार्टी को भारत के लिए आन्दोलन, करने को पचास हजार रुपये दिये। उसके बाद लोकमान्य जब स्वदेश लौटने को हुए तब उनके भक्तों ने सोचा कि यहां आते ही उनका स्वागत, उनकी साठवीं वर्ष-गांठ के उपलक्ष्य में उनको एक लाख रुपये की थैली भेंट करके किया जाय। इतनी बड़ी धन-राशि केवल एक मास में एकत्र हो गई। इस एक ही घटना से उनकी लोकप्रियता का अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। जनता की श्रद्धा की इस भेंट को स्वीकार करके आपने उसे पुनः होमरूल लीग को ही दान कर दिया।

तभी देहली में १९१८ में हुई कांग्रेस के आप सर्वसम्मति से सभापति चुने गये थे। किन्तु उपरोक्त मुकद्दमे के लिए इंग्लैण्ड चले जाने के कारण आप सभापति न हो सके थे।

माण्टफोर्ड-सुधार-योजना के सम्बन्ध में कार्य-शैली स्थिर करने के लिए आपने 'डेमोक्रेटिक स्वराज्य पार्टी' बनाई ही थी कि जून (१९२०) मास के अन्त में किसी मुकद्दमे के सम्बन्ध में बम्बई आने पर ऐसे बीमार पड़े कि फिर उठ न सके और ३१ जुलाई की रात को आपका 'सरदार-गृह' में देहावसान हो गया। जुलाई का सारा महीना, विशेष

कर अन्तिम ८-१० दिन देशवासियों ने ऐसी चिन्ता, व्यग्रता और उद्विग्नता में बिताये जैसे कि अपने ही घर में घर का कोई अपना आदमी बीमार पड़ा हो। सर्व-साधारण के साथ अपनेको तन्मय करके 'लोक-मान्य' और 'हृदय-सम्राट' दोनों शब्दों को सार्थक करनेवाले भगवान तिलक के लिए वैसा होना स्वाभाविक ही था। कैसा विचित्र संयोग था, मानों लोकमान्य ने स्वयं ही महात्माजी के लिए अपनेको निछावर कर दिया था! पहली अगस्त को राष्ट्रीय हड़ताल मनाने का निश्चय किया जा चुका था। उस हड़ताल की तैयारियों में लगे हुए देशवासी बड़े सबेरे ही यह मर्मान्तक वेदनापूर्ण समाचार सुनकर निस्तब्ध रह गये। राष्ट्रीय हड़ताल मातम की हड़ताल में परिणत हो गई। वैसा सार्वजनिक मातम इस देश में पहले कभी भी नहीं मनाया गया था।
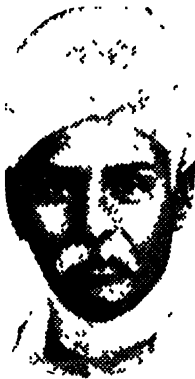
मदनमोहन मालवीय

[जन्म—२५ दिसम्बर १८६१]

चौबीसवां अधिवेशन, लाहौर—१९०९

तेंतीसवां अधिवेशन, दिल्ली—१९१८

"महामना मालवीयजी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं, जो साबरमती के सन्त के साथ खड़े किये जा सकते हैं। वह सिर से पैर तक हृदय ही हृदय हैं।" इलाहाबाद के 'लीडर' के स्वनामधन्य सम्पादक श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने मालवीयजी के व्यक्तित्व और जीवन का वर्णन ऊपर के एक वाक्य में किया है, जो बहुत सुन्दर और भावपूर्ण है। मालवीयजी का महान् जीवन अनुकूल तथा प्रतिकूल दिशाओं में बहनेवाली विरोधी धाराओं का सम्मिश्रण है। इसीसे वह एक रहस्यपूर्ण समस्या है, जिसका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण बहुत मनोरंजक है। आपका दिल गरम है और दिमाग नरम। जब आपका दिल बोलता है, तब आप आग बरसाने लगते हैं; और जब दिमाग़ बोलता है, तो आप आगे बढ़ते हुए राष्ट्र या समाज का 'ब्रेक' बन जाते हैं। आपके सार्वजनिक जीवन की कहानी दिल और दिमाग़ के संघर्ष का जीवित इतिहास है। दिल जब दिमाग़ को जीत लेता है, तब

आप स्वयं रोते, और दूसरों को रुलाते और अपने सर्वस्व की बाजी लगा, सैकड़ों-हज़ारों के सिर हथेली पर रखवा, आत्मोत्सर्ग का होम रच डालते हैं; और जब दिमाग़ दिल को हरा देता है तब आप किन्तु-परन्तु के चक्कर में पड़ प्रगति के मार्ग पर अग्रसर राष्ट्र को भी पीछे घसीटने लग जाते हैं। फिर भी आपकी महानता निर्विवाद है, लोक-सेवा उत्कृष्ट है, देशभक्ति असन्दिग्ध है, व्यक्तित्व वंदनीय है, जीवन अनुकरणीय है और चरित्र निष्कलंक है।

आपका जन्म इलाहाबाद में २५ दिसम्बर १८६१ को हुआ था। आपके पूर्वज मालवा से आकर इलाहाबाद में बसे थे। वे संस्कृत के उद्भट विद्वान् थे। आपके पिता पं० ब्रजनाथजी ने संस्कृत में कई ग्रन्थ लिखे थे, जिनको बाद में आपने प्रकाशित करवाया था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा सर्वज्ञानोपदेशक संस्कृत पाठशाला में और धर्मवर्द्धिनी-सभा की पाठशाला में हुई थी। गवर्नमेंट हाई स्कूल में पढ़ाई करके १८७६ में कलकत्ता में मैट्रिक की परीक्षा पास की थी। म्योर कालेज अहमदाबाद से १८८४ में बी० ए० किया। एम० ए० की पढ़ाई शुरू करके छोड़ दी और गवर्नमेंट स्कूल में ५०) रु० पर नौकरी कर ली। तीन वर्ष में आपको ७५ रु० मिलने लगे।

कालाकांकर के राजा रामपालसिंह ने अपने यहां से 'हिन्दुस्तान' नाम का एक दैनिक पत्र १८८७ में शुरू किया था। आप अध्यापकी छोड़कर २५०) रु० मासिक पर उसके सम्पादक होगये। आपकी वक्तृत्व-शक्ति, प्रतिभा और योग्यता देखकर ह्यूम सा०, पण्डित अयोध्यानाथ, राजा रामलपालसिंह और पण्डित सुन्दरलाल आदि ने आपको वकालत

पढ़ने के लिए प्रेरित किया। सम्पादकी करते हुए ही आपने १८६१ में वकालत पास करली और १८६३ में वकालत शुरू कर दी। अच्छे-अच्छे मुकदमों को हाथ में लेकर अच्छी आमदनी कर लेते रहने पर भी आपने अपने को वकालत के साथ कभी भी तन्मय नहीं किया। सार्वजनिक जीवन और देश सेवा के कार्य को निभाने के लिए उसको आपने केवल साधनरूप में अपनाया। इस बारे में हाईकोर्ट के एक जज ने ठीक ही कहा था कि 'गेंद आपके सामने पैरों के पास पड़ा था, पर आपने उसे उठाया नहीं।' पण्डित सुन्दरलाल, मोतीलाल जी और सर सप्रू की तरह आपने उसकी एकान्तभाव से सेवा नहीं की।

विद्यार्थी-जीवन से ही आपको सार्वजनिक कामों का विशेष शौक था। 'इलाहाबाद लिटरेरी इंस्टीट्यूट' और 'हिन्दू समाज' की आपने उन्हीं दिनों स्थापना की थी। कांग्रेस में आपने १८८६ में कलकत्ता में हुए उसके दूसरे अधिवेशन से जाना शुरू किया था। वाणी की मधुरता, भाषा के प्रवाह और भावों की प्रखरता के कारण आपको श्रोताओं और नेताओं—दोनों को ही जीतने में और अपना स्थान बना लेने में अधिक समय नहीं लगा। मि० ह्यूम ने उस अधिवेशन की रिपोर्ट में लिखा था कि "जिस भाषण के लिए कांग्रेस के पण्डाल में कई बार तालियां बजीं और जिसको जनता ने बहुत उत्साह के साथ सुना, वह पं० मदनमोहन मालवीय का भाषण था। पण्डितजी की गौरवपूर्ण मूर्ति और हृदयग्राही मधुर भाषण ने वहां बैठे हुए सभी के चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लिया।" कांग्रेस के हर एक अधिवेशन में आप सम्मिलित होते रहे और महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर आपके भाषण

अवश्य होते। चारों ओर उन भाषणों की सराहना होती। १९०७ में सूरत में कांग्रेस में नरम और गरम दल का जब झगड़ा हुआ, तब समझा यह जाता था कि आप गरम-दल का साथ देंगे। पर, लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि आप नरम दल की ओर रहे और सूरत के बाद मदरास में कन्वेंशन कांग्रेस होने के बाद लाहौर में १९०९ में जो नरम दली कांग्रेस हुई उसके आप सभापति हुए। चुने तो गये थे फिरोज़शाह मेहता, किन्तु किसी कारण से उन्होंने अधिवेशन से छः ही दिन पहले इन्कार कर दिया था। ब्रिटिश शासन को भारत के लिए परमात्मा की देन मानकर यावच्चन्द्रदिवाकरौ यहां उसके बने रहने की प्रार्थना करनेवालों में आप उस समय अन्यतम थे। वैसे ही भावों से आपका वह भाषण ओत-प्रोत था। १९०८ में लखनऊ में होनेवाली प्रान्तिक कांफ्रेंस भी आपके ही सभापतित्व में हुई थी। तब से अब तक आपने कांग्रेस के साथ अपने सम्बन्ध को बराबर बनाये रखा है और सेवक, नेता, कर्ता-धर्ता, असहयोगी, सत्याग्रही आदि सभी रूपों में आपने पूरे उत्साह तथा लगन के साथ उसकी सेवा की है। विरोध या मतभेद होकर रूठने पर भी आपने उसका साथ नहीं छोड़ा। दूसरे लोग जहां विरोधी या विरक्त, विद्रोही या उदासीन हो गये, वहां आपने उसकी ममता को बनाये रखा। यही कारण है कि १९१८ में देहली में कांग्रेस के सभापतित्व के जिस आसन पर हृदय-सम्राट लोकमान्य तिलक का अभिषेक होने को था, वहां उनकी अनुपस्थिति में आपका अभिषेक किया गया था और १९३२ तथा १९३३ में देहली तथा कलकत्ता के सरकार द्वारा निषिद्ध अधिवेशनों का सभापतित्व करने के लिए

राष्ट्र की पुकार पर सब जोखम उठाकर आप इस वृद्धावस्था में भी दौड़े हुए गये थे।

कांग्रेस-सेवा की तरह कौंसिलों का कार्यकाल भी आपका अच्छा लम्बा है। पं० विश्वम्भरनाथ की मृत्यु से प्रान्तिक कौंसिल में रिक्त स्थान की पूर्ति आपने १६०२ में की थी। १६३० में आप इम्पीरियल कौंसिल के सदस्य चुने गये थे। तब से १६२६ तक आप उसके निरन्तर सभासद रहे हैं। १६३३ के निर्वाचन में भी आपके निर्विरोध चुने जाने की आशा थी, किन्तु मतदाताओं की सूची में आपका नाम न होने से आप रह गये। व्यवस्थापिका सभाओं में आपका जीवन और कार्य कांग्रेस के जीवन और कार्य के समान ही महत्वपूर्ण और गौरवशाली रहा है। वहां दिये हुए आपके प्रायः सभी भाषण बहुत मार्के के होते थे। सरकार की आलोचना या विरोध करने में आप कभी नहीं चूकते थे। रौलेट एक्ट का विरोध करने और पंजाब के फ़ौजी क़ानून पर रोष प्रकट करते हुए आपने जो भाषण दिये थे, वे इतिहास में सदा ही स्मरण रहेंगे। रौलेट एक्ट के विरोध में अन्य अनेक सदस्यों के साथ आपने भी कौंसिल से त्यागपत्र दे दिया था। उसके बाद फ़ौजी शासन की मार से जब पंजाब मूर्छित हुआ पड़ा था, तब उसकी सुधि लेने के लिए दौड़कर वहां पहुंचनेवालों में पहले आप और स्वामी श्रद्धानन्द जी थे। आपने उन दिनों में मर्माहत पंजाब की जो सेवा की थी, उससे सदा के लिए उसको आपने अपना बना लिया है।

१६२० में कांग्रेस में नया जीवन और देश में नया युग पैदा होने पर आपकी स्थिति प्रायः सदा ही डांवाडोल रही। १६१६ में अमृतसर

में कांग्रेस के अधिवेशन में माण्टफोर्ड-सुधारों को स्वीकार कर सरकार के साथ सहयोग करनेवालों के आप अगुआ थे। गान्धीजी भी आपके साथ थे। सरकार पर उस समय भी आपको पूरा भरोसा और विश्वास था। गान्धीजी का यह विश्वास जल्दी ही हिल गया और सरकार के साथ असहयोग करने की ठानकर उन्होंने देशवासियों में स्वावलम्बन की भावना फूंकनी शुरू कर दी। कांग्रेस ने आप सरीखे नेताओं के विरोध पर भी गान्धीजी का कार्यक्रम स्वीकार कर लिया। अन्त में अधिकांश नेता भी उनके साथ हो गये, किन्तु आपका सरकार में वैसा ही विश्वास बना रहा। सारे देश ने एक व्यक्ति के समान युवराज की भारत-यात्रा का बहिष्कार किया। जहां भी युवराज गये, वहां ही ज़बर-दस्त हड़तालें हुईं और काले झण्डे फहराये गये। ५० हज़ार देशवासी और मोतीलालजी, देशबन्धु और मौलाना आज़ाद सरीखे नेता जेलों में बन्द किये गये। अपनेको कांग्रेसवादी कहनेवालों में केवल माल-वीयजी ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय में युवराज को बुलाकर उनका स्वागत किया था। दिल उस समय दिमाग़ के आधीन था। सब देश एक ओर था और आप दूसरी ओर। माण्ट-फोर्ड सुधारों के अनुसार बनी हुई कौंसिलों का बहिष्कार किये जाने पर भी आप उसमें गये। १९२३ में स्वराज्यपार्टी की स्थापना हुई, कांग्रेस ने कौंसिलों की लड़ाई लड़ना तय किया और १९३० में फिर से सत्याग्रह के मार्ग का अवलम्बन करने के लिए उनको त्याग दिया। उस सब उतार-चढ़ाव का आप पर कुछ भी असर नहीं हुआ। १९२१ से १९३० तक आप अपने ही ढंग से असेम्बली में बने रहे। इसमें सन्देह नहीं कि

आपने वहां सदैव निर्भीक, साहसी और राष्ट्रीय वृत्ति का परिचय दिया। चुनाव में कांग्रेस-स्वराज्य-पार्टी के साथ सहमत न होकर भी वहां आपने उसका पूरा साथ दिया। १६२६ के चुनाव के समय लाला लाजपत-राय के साथ मिलकर आपने ठीक उसी प्रकार नेशनलिस्ट पार्टी बनाई थी, जैसे कि १६३४ में लोकनायक अरणे के साथ मिलकर बनाई। १६२६ और १६३४ के चुनावों में स्वराज्य पार्टी और नेशनलिस्ट पार्टी के संघर्षों को देश के राष्ट्रीय जीवन का दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। १६२६ में दिल ने दिमाग पर एक बार फिर ऐसी विजय प्राप्त करली कि युवराज का स्वागत करनेवाले मालवीय जी भी साइमन-कमीशन के बहिष्कार में सब से आगे रहे। पर, कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव स्वीकृत किये जाने के बाद देश में सत्याग्रह की ज़बरदस्त लहर पैदा होने पर भी आप उससे दूर कुछ समय तक असेम्बली में ही रहे। अन्त में सत्याग्रही बनकर जेल तक जाने की घटनाओं से पहले बीच की कुछ और घटनाओं का सिंहावलोकन कर लेना आवश्यक है।

१६२१-२२ में जब सारा देश असहयोग और सत्याग्रह की आंधी में उड़ा जा रहा था और बिगुल बजने की प्रतिज्ञा में युद्ध के लिए सुसज्ज खड़े हुए सैनिकों के समान बारडोली भारत की थर्मापोली बनने के लिए गान्धीजी के संकेत की प्रतिज्ञा में था, तब ५ फरवरी १६२२ को गोरखपुर में चौरीचौरा का वह काण्ड होगया, जिससे देश की सत्याग्रह की लड़ाई ८-१० वर्ष पीछे पड़ गई। उस समय गांधीजी को सत्याग्रह से पराङ्मुख करने में उनके 'बड़े भाई' मालवीयजी का सबसे बड़ा हाथ था। विच्छृंखल सेनाओं के नैतिक पतन के समान देश का भी राष्ट्रीय

दृष्टि से नैतिक-पतन होगया । साम्प्रदायिक विच्छृंखलता चारों ओर छा गई । जहां-तहां हिन्दू-मुस्लिम दंगे होने लगे । मालवीयजी में हिन्दू आस्तिकता कूट-कूट कर भरी हुई है । हिंदू-संस्कारों का दिमाग़ पर आधिपत्य है । राष्ट्रवादी होते हुए भी आप पूरे और सोलह आना हिंदू हैं । आपके जन्म और शिक्षण के साथ हिन्दूपन के प्रबल संस्कारों का जो रंग आप पर चढ़ चुका है, वह उग्र राष्ट्रीयता के छा जाने पर भी धीमा या फीका नहीं पड़ता । आपका वही स्वरूप आपको हिन्दू महासभा की ओर खींच लाया । आपका एक पैर कांग्रेस में रहता है, तो दूसरा हिन्दू महासभा में । दिल और दिमाग़ के इस संघर्ष ने आपको १९२२ में हिन्दू महासभा के साथ तन्मय कर दिया । कई वर्षों तक आप उसके सर्वेसर्वा रहे । स्वामी श्रद्धानन्द, लाला लाजपतराय और आप उन दिनों में हिन्दू महासभा के प्रमुख कर्णधार थे । स्वामी जी महासभा को समाज-सुधार-सम्बन्धी कार्यों में लगाकर हिन्दू समाज को संगठित, सम्पन्न तथा बलवान् बनाना चाहते थे और आप तथा लाला जी उसको हिन्दुओं की प्रातिनिधिक-राजनैतिक-संस्था बनाने में लगे हुए थे। १९२६ में जब आप दोनों ने महासभा को नेशनेलिस्ट पार्टी की ओर से लड़ी जानेवाली असेम्बली के चुनाव की लड़ाई का साधन बना लिया । आपकी उस समय की मनोवृत्ति का ही यह परिणाम है कि हिन्दू महासभा समाज-सुधारक संस्था न बनकर संकुचित-साम्प्रदायिक-राज-नैतिक संस्था बन गई और उसका लक्ष्य एकमात्र हिन्दुओं के नाम से चुनाव की लड़ाई लड़ना रह गया । इसीसे १९२३--२४ के दिनों के मालवीयजी आज भी हिन्दू महा-सभा के सभापति हैं ।

आपके इस स्वरूप की सबसे बड़ी देन बनारस का 'हिन्दू विश्व-विद्यालय' है। बहुत पहले ही से आपका विचार हिन्दुओं की शिक्षा के सम्बन्ध में ऐसा ही कोई काम करने का था। इलाहाबाद में आपने हिन्दू-बोर्डिङ्ग-हाउस बहुत पहले खोला था। विश्वविद्यालय के लिए वैसे आपने १६०४ से आन्दोलन शुरु कर दिया था, किन्तु १६११ में उसके खोलने का आपने दृढ़ निश्चय कर लिया। उसके लिए एक योजना बना, गले में उसके लिए भिक्षा की झोली डाल, आप घर से निकल पड़े। साधारण लोगों से लेकर बड़े-बड़े नेताओं और राजा-महाराजाओं तक का सहयोग आपको मिल गया। पांच ही वर्षों में आपने एक करोड़ रुपया जमा कर लिया। ४ फरवरी १६१८ को उसकी आधार शिला रखी गई। सरकारी चार्टर प्राप्त करने पर आपके अच्छे-अच्छे समर्थक भी आपसे अलग हो गये और उसके लिए आपकी कड़ी टीका-टिप्पणी भी की गई। विरोध में चाहे कुछ भी कहा जाय, पर इसमें सन्देह नहीं कि 'हिन्दू-विश्वविद्यालय' मालवीयजी का स्थायी कीर्ति-स्तम्भ है और उस द्वारा इस युग में भी आपने बनारस के शिक्षा-केन्द्र होने के प्राचीन गौरव को पुनर्जीवित कर दिया है।

हिन्दू-समाज के साथ-साथ हिन्दी-भाषा और हिन्दी-साहित्य की भी आपने उल्लेखनीय सेवायें की हैं। वर्तमान-हिन्दी के निर्माताओं में आपकी गणना की जा सकती है। आपके उद्योग से इलाहाबाद में कभी 'प्रयाग-साहित्यिक-सभा' की स्थापना की गई थी। १६०८ में आपने 'अभ्युदय' निकालना शुरु किया था। १६१० में 'मर्यादा' मासिक पत्रिका निकालनी शुरु की थी। अदालतों में सब काम उर्दू

में ही होता था। इससे ग़रीब किसानों को बहुत असुविधायें होती थीं। १६०० में आपने यह क़ानून बनवाया कि अदालतों का काम उर्दू और हिन्दी दोनों में ही हो। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का जन्म आपके ही सभापतित्व में हुआ था। उस पहले अधिवेशन के बाद दूसरी बार भी आप सभापति बन चुके हैं। हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वारा होने वाली हिन्दी की सेवा का सब श्रेय भी आपको ही है।

पं० अयोध्यानाथ जी द्वारा संचालित 'इण्डियन यूनियन' पत्र का भी आपने कई वर्षों तक सम्पादन किया था। इलाहाबाद के सुप्रसिद्ध पत्र 'लीडर' के संस्थापकों में आप अन्यतम हैं।

समाज-सुधार आपके जीवन का मिशन नहीं है, किन्तु फिर भी इस सम्बन्ध में आपका कार्य बहुत ही यशस्वी है। भले ही प्रगतिगामी सुधारक आपको सुधारों के मार्ग में बाधक मानते हों किन्तु पुरातन-पन्थी आप पर बिगड़कर आर्यसमाजी तक होने का दोषारोपण करते रहते हैं। आपका दिल सामाजिक बुराइयों को देखकर जल पड़ता है, किन्तु दिमाग पर पड़े हुए संस्कार आपको एकाएक आगे बढ़ने से रोक देते हैं। आपके सम्बन्ध में यह बिलकुल ठीक कहा गया है कि "आप पुरातन और नवीन, स्थिति और गति को परस्पर बांधनेवाली ज़ंजीर हैं।" आप सनातनी-सुधारक हैं, नवीन सुधारक नहीं। सनातनियों को समाज सुधार की ओर खींचने का उद्योग आप सतत करते रहते हैं। उसके लिए आपको सनातनियों की ओर से प्रतारणा, लांछन और अपमान तक सहन करना पड़ा है। 'अछूत' कहे जानेवालों को मन्त्र दीक्षा देने, मन्दिरों में देवदर्शन का अवसर देने और स्कूलों,

कुओं, तालाबों, उत्सवों, सभाओं आदि में स्पर्शास्पर्श न मानने का आन्दोलन करने में आप बहुत समय से लगे हुए हैं। १६२६ में श्री जमनालाल बजाज के उद्योग से इस कार्य के लिए एक कमेटी बनाई गई थी, आप उसके सभापति थे। हिन्दू महासभा के कई वार्षिक अधिवेशनों में और कई सनातन-धर्म सम्मेलनों में इस आशय के प्रस्ताव आप की ही प्रेरणा से स्वीकृत होते रहे हैं। रजोधर्म से पूर्व कन्या का विवाह होने के यदि आप पूरे विरोधी नहीं हैं, तो उससे पहले उसके द्विरागमन के तो आप निश्चय ही विरोधी हैं। विधवा-विवाह में आप यहां तक आगे बढ़ आये हैं कि बाल-विधवा के पुनर्विवाह में आपको कोई आपत्ति नहीं रह गई है। १६३१ में गोलमेज-परिषद के लिए विलायत जाकर आपने समुद्र-यात्रा का बन्धन भी तोड़ डाला है। हिंदू-समाज से हरिजनों को अलग करने की सरकार की कूटनीति के प्रतिवाद में. सितम्बर १६३२ में गांधीजी ने यरवदा जेल में जब आमरण अनशन करने का निश्चय किया था, तब पूना पहुंचकर पूना-पैक्ट करवाने का यत्न करनेवालों में आप अगुआ थे। उसी समय २५ सितम्बर को बम्बई में आपके सभापतित्व में हिन्दुओं की विराट सभा हुई थी, जिसमें अस्पृश्यता को मिटाने और अछूतों के साथ बिना किसी भेदभाव के समानता का व्यवहार करने की प्रतिज्ञा सारे हिन्दू-समाज की ओर से की गई थी। श्री घनश्यामदास बिड़ला की अध्यक्षता में हरिजनों की सेवा का कार्य करनेवाले जिस 'हरिजन-सेवक-सङ्घ' का जाल इतने थोड़े समय में सारे देश में बिछ गया है, वह उसी सभा में की गई प्रतिज्ञा का फल है। १६३६ के इलाहाबाद के अर्धकुम्भ पर हरि-

जनों को शिवरात्रि पर शिव-मन्त्र की दीक्षा देने का निर्णय सनातन-धर्म-महासभा ने उनके ही सभापतित्व में किया है। इसी सम्बन्ध में बनारस में की गई एक सभा में आप पर सनातनियों की ओर से आक्रमण तक किया गया था। आपका यह निश्चित मत है कि हरिजनों के साथ मनुष्यता का, पूर्ण समानता का, व्यवहार होना चाहिए। यह आशा रखनी चाहिए कि समाज-सुधार के अन्य विषयों पर भी आपका दिल दिमाग पर विजय प्राप्त कर लेगा और आप इस क्षेत्र में भी बहुत आगे खड़े हुए दीख पड़ेंगे। गो-रक्षा और गो-सेवा आन्दोलनके तो आप प्राण रहे हैं। इलाहाबाद की सेवा-समिति आपके सेवा-भाव की जीती जागती एक उत्कृष्ट निशानी है।

१६३० और ३२ के आन्दोलनों में मालवीय जी ने पूरा भाग लिया, इतना कि आप बार-बार जेल गये, आन्दोलन का आपने स्वयं संचालन किया और सरकारी आज्ञाओं की अवज्ञा करके देहली और कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशनों को सफल बनाने की बाज़ी लगा दी। १६३० के सत्याग्रह का आरम्भ १६२६ की लाहौर-कांग्रेस की पूर्ण-स्वाधीनता की घोषणा से हुआ था। वायसराय ने गांधीजी और मोतीलालजी को उस अधिवेशन से पहले देहली में मिलने के लिए बुलाकर उस अवसर को टालना चाहा था। १ नवम्बर १६२६ को असेम्बली में भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य देने की गोलमोल घोषणा भी इसी उद्देश्य से की गई थी। मालवीयजी के दिमाग ने दिल को दबा लिया। सारे राष्ट्र में सत्याग्रह की तय्यारी हो जाने और राष्ट्रवादियों के असेम्बली से चले आने पर भी आप वहां ही बने रहे। सरकार के

साथ सहयोग करने की आपकी भावना नहीं बदली। गान्धीजी ने डांडी-यात्रा के लिए प्रस्थान किया और देश में जहां-तहां सत्याग्रही सेनाओं का 'डबल मार्च' होने लगा। ६ अप्रैल को नमक-कानून तोड़ा गया और सरकार की ओर से दमन का नंगा नाच शुरू हो गया। मालवीय जी का दिल पिघल गया। असेम्बली त्यागकर आप भी मैदान में चले आये। स्वदेशी-प्रचार और विदेशी-बहिष्कार की आपने चारों ओर धूम मचा दी। कार्य-समिति के गैर-कानूनी घोषित किये जाने पर आप अपने से होकर उसके सदस्य हुए। जुलाई के अन्त में उसके अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए आप बम्बई गये। वहां पहली अगस्त को लोकमान्य की बरसी का जलूस पुलिस कमिश्नर की आज्ञा की अवज्ञा करके निकाला गया। आप सबसे आगे थे। जलूस को रोककर पुलिस-कप्तान मि० गाडविन ने कहा—'जलूस आगे नहीं जा सकता।' आपने कहा—'अच्छा, हम यहां खड़े रहेंगे।' 'कब तक?' पुलिस-कप्तान ने पूछा। 'अपने जीवन के अन्तिम दिन तक'—आपने उत्तर दिया। अन्त में आप गिरफ्तार किये गये। १००) रु० जुर्माना या १५ दिन की कैद की सज़ा हुई। आप जेल चल दिये। पीछे किसी ने जुर्माना चुका दिया और आप छोड़ दिये गये। आपने उसको बहुत बुरा माना। उसके बाद गुजरात का दौरा किया। २७ अगस्त १६३० को देहली में कार्य-समिति की फिर बैठक हुई। डाक्टर अन्सारी के यहां कार्यवाही पूरी करके सब सदस्य चाय आदि पीने और गप्प-शप्प मारने में लगे हुए मानो पुलिस के आने की ही प्रतीक्षा कर रहे थे। सरदार पटेल, डा० अन्सारी आदि के साथ आप भी गिरफ्तार किये गये। छः मास की सज़ा हुई, कुछ दिन

देहली जेल में रहे। फिर नैनी जेल भेज दिये गये। जेल में आपके रहन-सहन और भोजन आदि का विशेष प्रबन्ध किया गया था। फिर भी स्वास्थ्य ठीक न रहने से आपको जल्दी छोड़ दिया गया।

गांधी-अरविन-समझौते में आपका भी हाथ था। उसके बाद करांची कांग्रेस में भी आप शामिल हुए। दूसरी गोलमेज़-परिषद के लिए आप भी निमन्त्रित किये गये। गांधी जी के बिना आप जाने को तय्यार न थे। अन्त में २६ अगस्त १६३१ को आप गांधी जी के साथ विदा हुए। वहां सब बातों में आपने गांधीजी का पूरा साथ दिया। सेना की व्यवस्था और संरक्षणों के सम्बन्ध में आपके भाषण बहुत मार्के के हुए। आप युरोप के कुछ स्थानों पर होते हुए १४ जनवरी १६३२ को जब स्वदेश लौटे, तब यहां सत्याग्रह का आन्दोलन जोरों पर था और सब नेता तथा कार्यकर्त्ता जेलों में बन्द किये जा चुके थे। पुलिस के नृशंस आर्डीनेन्स-राज का चारों ओर बोलबाला था। १६३२ में देहली में और १६३३ में कलकत्ता में कांग्रेस के जो निषिद्ध अधिवेशन किये गये। उन दोनों का सभापतित्व करने के लिए जाते हुए पहली बार देहली में जमुना के पुल पर और दूसरी बार आसनसोल में आप गिरफ्तार किये गये थे। पांच-सात दिन से अधिक आपको जेल में नहीं रखा गया।

पूना पैक्ट की चर्चा पीछे की जा चुकी है। नवम्बर १६३२ में आपने हिन्दू-मुसलिम समझौते के लिए भी लगकर यत्न किया। इलाहाबाद में पहले ३ नवम्बर को, फिर १३ दिसम्बर १६३२ को एकता-सम्मेलन के सफल अधिवेशन वयोवृद्ध श्री विजयराघवाचार्य के सभापतित्व में हुए। पंजाब की जटिल-समस्या सुलझा ली गई थी और सिन्ध का

सवाल भी हल हो जाता पर, नौकरशाही की कूटनीति के कारण आपका वह यत्न सफल न हो सका।

१६३४ के प्रलयकारी बिहार-भूकम्प से आहत देशवासियों की सेवा तथा सहायता के लिए आप भी बिहार गये थे और बिहार-केन्द्रीय-सहायक-समिति के फण्ड में दान देने के लिए आपने कई अपीलें भी निकाली थीं।

१८--१६ मई १६३४ को पटना में महासमिति की बैठक होकर पार्लमैण्टरी बोर्ड बनाने का निश्चय किया गया। उसको बनाने का कार्य-भार डा०अन्सारी और आपको सौंपा गया था। साम्प्रदायिक बटवारे के सम्बन्ध में कांग्रेस की उदासीन नीति को लेकर कांग्रेस के साथ आपका और लोकनायक अणे का मतभेद हो गया। समझौते की सब चेष्टायें व्यर्थ सिद्ध हुईं। आप पार्लमैण्टरी बोर्ड से अलग हो गये और नेशन-लिस्ट पार्टी का आपने संगठन किया। बम्बई में आपने अपनी बात कांग्रेस के सम्मुख फिर रखी। पर, कुछ परिणाम न निकला। असेम्बली के चुनाव में भी आपको और आपकी पार्टी को कांग्रेस के मुकाबले में सफलता नहीं मिली। साम्प्रदायिक-समझौते के विरुद्ध देशव्यापी आन्दो-लन करने और उसके विरोध में विलायत एक शिष्ट मण्डल ले जाने का भी आपने यत्न किया। ७५ वर्ष की वृद्धावस्था में शरीर के जीर्ण और स्वास्थ्य के शीर्ण हो जाने से आप इस सम्बन्ध में अपनी आकांक्षा पूरी नहीं कर सके। पिछले कई मासों से तो आपका शरीर और स्वास्थ्य प्रायः गिरा रहता है। निश्चय ही देशसेवा की दृष्टि से भी 'रिटायर्ड' हो जाने का अधिकार आपको बहुत पहले ही मिल चुका है, किन्तु

जिस हृदय में देश की स्वतंत्रता की आग सुलग चुकी है, जो अपना सर्वस्व देश की सेवा के अर्पण कर चुका है और जिसने देशवासियों के दुःख-दर्द तथा मुसीबत में अपनेको भुला दिया है, उसके दिल और दिमाग़ में 'रिटायर' होने का विचार या कल्पना ही पैदा नहीं हो सकती। वस्तुतः मालवीयजी का महान् जीवन एक संस्था है, जिसका सम्बन्ध एक व्यक्ति से न रहकर पैंतीस करोड़ देशवासियों के साथ हो गया है।

डा० पट्टाभि ने कांग्रेस के इतिहास में आपके सम्बन्ध में बहुत सुन्दर शब्द लिखे हैं। उन्होंने लिखा है कि "मालवीयजी बड़े-बड़े तूफ़ानों के समय में भी, प्रशंसा और बदनामी, किसी की भी परवा न करते हुए सदैव कांग्रेस का पल्ला पकड़े रहे हैं। मालवीयजी अकेले ही ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें इतना साहस है कि जिस बात को वह ठीक समझते हैं, उसमें चाहे कोई भी उनका साथ न दे, पर वह अकेले ही मैदान में खम ठोक कर डटे रहते हैं। लोकापवाद के भय से या शिथिलता अथवा अकर्मण्यता के कारण कभी भी आप समय के प्रवाह में नहीं बहे।..............सब मिलाकर आपका स्थान अनुपम और अद्वितीय है।" इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेस के प्रारम्भिक दिनों का स्मरण करानेवाले ऐसे अनुपम और अद्वितीय व्यक्तित्व की देश को आज भी निरन्तर आवश्यकता है। इसीलिए पैंतीस करोड़ देशवासी एक हृदय और एक भावना से आपके दीर्घ जीवन की सदा ही कामना करते रहते हैं।

लाजपत राय

[१८६५—१९२८]

विशेष अधिवेशन, कलकत्ता—१९२०

"लाला जी एक संस्था थे। अपनी जवानी के समय से ही उन्होंने देशभक्ति को अपना धर्म बना लिया था और उनके देशप्रेम में संकीर्णता न थी। वह अपने देश से इस लिए प्रेम करते थे कि वह संसार से प्रेम करते थे। उनकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता से भरपूर थी। उनकी सेवायें विविध थीं। वह बड़े ही उत्साही समाज-सेवक और धर्म-सुधारक थे। ऐसे एक भी सार्वजनिक आन्दोलन का नाम लेना असम्भव है, जिसमें लालाजी शामिल न थे। सेवा करने की उनकी भूख सदा अतृप्त ही रहती थी। उन्होंने शिक्षण-संस्थायें खोलीं, वह दलितों के मित्र बने, जहां कहीं दुःख-दरिद्र होता वहीं वह दौड़ पड़ते थे।" ये शब्द गान्धीजी ने पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय के देहावसान पर 'यङ्ग इण्डिया' में लिखे थे। सचमुच ही लालाजी का जीवन विविध-घटना-पूर्ण था। शिक्षाशास्त्री, समाज-सुधारक, राजनीतिज्ञ, अछूतोद्धारक, लोक-सेवक, उच्चकोटी के वक्ता और लेखक आदि विविध विशेषताओं के आप पुञ्ज थे। आपके पिता लाला राधाकृष्ण

पंजाब के जिला लुधियाना के जगरांव गांव के निवासी थे, परन्तु स्कूलों के इन्स्पेक्टर होने के कारण वह प्रायः जगरांव से बाहर ही रहते थे। लालाजी का जन्म अपनी ननिहाल ढोंडीग्राम में २८ जनवरी १८६५ को हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षण पिता ने अपने पास रखकर निजीरूप से कराया। १८८० में लुधियाना के मिशन स्कूल से एन्ट्रैन्स पास किया और वहीं से छात्रवृत्ति प्राप्त करके लाहौर जाकर एफ० ए० तथा मुख्तारी की परीक्षायें पास कीं। मुख्तारी 'प्रैक्टिस' १८८३ में पहले जगरांव में और फिर रोहतक में की। वकालत की परीक्षा पास करने के बाद आप हिसार में 'प्रैक्टिस' करने लगे। लाहौर में विद्यार्थी-अवस्था में ही आपका परिचय श्री गुरुदत्त विद्यार्थी तथा महात्मा हंसराज आदि से हो गया था और आर्यसमाज की ओर आपके विचारों का झुकाव होकर आपमें समाज सेवा का शौक़ पैदा हो गया था। इसी से शीघ्र ही आप हिसार की म्युनिसिपालिटी के अवैतनिक मंत्री बन गये। उसी समय १८८६ में पंजाब के लेफ्टिनेन्ट गवरनर दौरा करते हुए हिसार पहुँचे। म्युनिसिपालिटी ने उन्हें मान-पत्र देने का निश्चय किया। म्युनिसिपालिटी के प्रेसिडेन्ट हिसार के डिप्टी कमिश्नर मानपत्र अंग्रेज़ी में देने के पक्षपाती थे और आप उर्दू में। अन्त को आप ही जीते और आपने ही उसे पढ़ा भी।

हिसार में आप ६ वर्ष तक रहे। स्वर्गीय श्री गुरुदास जी आदि के अनुरोध से आप १८६२ में लाहौर चले गये और वहीं वकालत करते हुए आर्यसमाज की सेवा करने लगे। १८८६ में दयानन्द एंग्लो-वैदिक कालेज की स्थापना हो चुकी थी। लाहौर आने से पहले

भी आप उसकी थोड़ी-बहुत सेवा करते रहते थे। लाहौर जाकर तो उसकी सेवा अध्यापक और अवैतनिक मन्त्री आदि के रूप में कई वर्ष तक करते रहे। १६०१ में आपने पञ्जाब शिक्षा-सङ्घ की स्थापना की और अपने ग्राम में पिता के नाम पर राधाकृष्ण हाई स्कूल खोलने के अतिरिक्त पंजाब में स्थान-स्थान पर अनेक प्राइमरी पाठशालायें स्थापित कीं।

१८६६ में उत्तरी भारत में, १८६६ में राजपूताना में और १६०७-८ में बिहार में तथा संयुक्त-प्रान्त के दक्षिणी जिलों में भयानक दुर्भिक्ष पड़े। उन सबमें और १६०५ के कांगड़ा-भूकम्प में आपने पीड़ितों की सेवा का बहुत बड़ा काम किया। बिहार-दुर्भिक्ष के आपके कार्य का तो मरदुमशुमारी की सरकारी रिपोर्ट में भी प्रशंसा के साथ उल्लेख किया गया था। सन् १६०१ में भारत सरकार ने जो दुर्भिक्ष कमीशन बिठलाया था, उसके सामने पंजाब सरकार की तरफ़ से गवाही देने के लिए आपको ही भेजा गया था।

कांग्रेस से आपके परिचित होने और उसमें प्रविष्ट होने की कथा बड़ी मनोरञ्जक है। कांग्रेस की स्थापना के समय तो अधिकतर ब्रिटिश अधिकारी उसके पक्षपाती थे, परन्तु दो-तीन वर्ष में ही अनेक अधिकारी उसके विरोधी हो गये थे और उन्होंने जिन भारतीयों को उसका विरोध करने के लिए अपना हस्तक बनाया था, उनमें अलीगढ़ के सर सैयद अहमद भी थे। उनमें लाला जी के पिता की श्रद्धा थी और उनके लेखों और भाषणों आदि को वह स्वयं बड़े शौक़ से पढ़ते तथा लाला जी को भी सुनाया करते थे। जब सर सैयद ने अपना रुख बदला तब उनको बड़ा

आश्चर्य हुआ और पिता-पुत्र दोनों ने लाहौर के उर्दू 'कोहनूर' में तथा अंग्रेज़ी पत्रों में भी सर सैयद के नाम कई खुली चिट्ठियां प्रकाशित करवाईं। उसी समय लाला जी का ध्यान कांग्रेस की ओर गया और १८८८ में आप पहली बार जार्ज यूल की अध्यक्षता में हुई इलाहाबाद की कांग्रेस में सम्मिलित हुए। उस समय आपकी आयु केवल २३ वर्ष की थी। उक्त कांग्रेस में आपने कौंसिल-सुधार के प्रस्ताव पर उर्दू में ही भाषण किया था, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई थी और तभी बड़े-बूढ़ों ने उनको होनहार वक्ता बतलाया था। आपने उस समय यह विचार पेश किया था कि कांग्रेस को शिक्षा और देशी उद्योग-धन्धों की ओर ध्यान देना चहिए। कांग्रेस के साथ होनेवाली औद्योगिक प्रदर्शनियां आपके उस विचार का ही परिणाम हैं। उसके बाद आप कांग्रेस के प्रायः सभी अधिवेशनों में सम्मिलित होते रहे और अन्त तक कांग्रेस में पंजाब के मुख्य प्रतिनिधि आप ही माने जाते रहे। कांग्रेस की ओर से इंग्लैण्ड भेजे गये डेपुटेशनों में आप दो बार सम्मिलित हुए। पहली बार १९०६ में और दूसरी बार १९११ में। पहले डेपुटेशन में आपके साथ श्री गोपाल कृष्ण गोखले भी गये थे। इन डेपुटेशनों के अतिरिक्त भी आप स्वयं १९०२ में और १९१० में इंग्लैण्ड गये और वहां व्याख्यानों, लेखों और मुलाक़ातों द्वारा आपने भारत के लिए सराहनीय काम किया। १९१४ में युरोपियन महायुद्ध आरम्भ हो जाने के कारण आपको स्वदेश लौटने का पासपोर्ट नहीं मिला और आप अमरीका चले गये। १९२० तक वहीं रहकर आपने भारत के लिए बड़ा ज़बरदस्त आन्दोलन किया। वहां 'इण्डियन होमरूल लीग' और

'इण्डिया इनफ़ारमेशन ब्यूरो' नामक संस्थायें स्थापित कीं। प्रथम संस्था के भारतीयों के अतिरिक्त एक सहस्र से कुछ ऊपर अमरीकन भी सदस्य हो गये थे। दूसरी संस्था का उद्देश्य अमरीकन जनता को भारत तथा भारतवासियों के सम्बन्ध में ठीक-ठीक ज्ञान देना था। अमरीका में लालाजी ने 'यंग इण्डिया' नामक एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला था और भारत के विषय में अनेक पुस्तक-पुस्तिकायें भी लिखीं और लाखों की संख्या में उनको मुफ्त बंटवाया। २० फरवरी १९२० को आपको अमरीका से स्वदेश लौटने की आज्ञा मिली।

१९०७--८ में वंग-भंग के कारण बङ्गाल में जो राष्ट्रीय जागृति पैदा हुई थी उसका प्रभाव पंजाब पर पड़ा था। पंजाब में भी कई घटनायें ऐसी हो गई थीं जो उस जागृति में सहायक हुई थीं। जिला मिण्टगुमरी के आस-पास सरकार ने जो नई बस्तियां बसाई थीं, उनमें जमीन लगान आदि को लेकर अनेक झगड़े खड़े हो गये थे। उस जागृति में आगे बढ़कर काम करनेवाले दो प्रमुख व्यक्ति सरदार अजीतसिंह और लाला लाजपतराय थे। मई १९०७ को पंजाब सरकार ने लालाजी को मांडले (बर्मा) के किले में नज़रबन्द कर दिया। ११ नवम्बर १९०७ तक वह वहीं नज़रबन्द रहे। जब आप वहांसे छूटकर आये तब कांग्रेस में गरम और नरम दलों का विरोध उग्र रूप धारण कर चुका था। लाल-बाल-पाल के नाम के गरम दल के जो तीन नेता उस समय देश में सर्वत्र लोकप्रिय हो रहे थे, वे लालाजी, लोकमान्य और विपिनचन्द्र पाल थे। दोनों दलों में विरोध का फल यह हुआ कि १९०७ के अन्त में सूरत में जो कांग्रेस हुई, उसमें झगड़ा हो गया। हाथापाई

के अतिरिक्त कुर्सियों से भी शस्त्र का काम लिया गया। गरमदल उसका सभापति आपको ही बनाना चाहता था। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में गरम-दल कांग्रेस से अलग हो गया। लालाजी उसके बाद भी कांग्रेस में रहकर दोनों दलों में सुलह कराने का यत्न करते रहे, परन्तु सफल न हुए। १६१२--१३ में गांधीजी ने दक्षिण आफ्रीका में जो सत्याग्रह किया था उसके लिए आपने पंजाब में बहुत काम किया। गोखले की प्रेरणा पर आपने सत्याग्रह की सहायतार्थ चालीस हज़ार रुपया पंजाब में जमा किया था।

फ़रवरी १६२० में अमरीका से स्वदेश लौटने के तुरन्त बाद ही आप देश की राजनैतिक सेवा में लग गये। सितम्बर १६२० में गांधी जी के असहयोग आन्दोलन सम्बन्धी प्रस्ताव पर विचार करने के लिए कलकत्ता में कांग्रेस का जो विशेषाधिवेशन हुआ, उसके आप ही सभापति बनाये गये। लड़ाकावृत्ति के होने पर भी असहयोग एवं सत्याग्रह पर आपका विश्वास न था। अपने अन्तिम भाषण में उसके असफल होने की भी बात आपने कह दी थी, परन्तु नागपुर में भी जब कांग्रेस ने उसको स्वीकार कर लिया, तब आप भी जी-जान से उसमें कूद पड़े। किसी भी काम को आधे मन से करना तो आप जानते ही न थे। १६२१ के आरम्भ में देखते-देखते ही पंजाब में आपने सरकारी स्कूल-कालेजों को खाली करा दिया। जिस डी० ए० वी० कालेज की जड़ों को किसी समय आपने अपने पसीने से सींचा था, उसको खाली कराने के लिए आपको उसकी सीढ़ियों पर बैठकर धरना तक देना पड़ा। विद्यार्थियों को सरकारी स्कूल-कालेजों से निकालने के साथ-साथ उनकी

स्वतन्त्र शिक्षा का प्रबन्ध भी लाहौर में एक राष्ट्रीय कालेज खोलकर किया। यह कालेज असहयोग आन्दोलन के बाद भी कई वर्षों तक चलता रहा और उसमें पढ़कर राष्ट्रीय बी० ए० की डिग्री प्राप्त किये हुए अनेक युवक आज भी पंजाब के राष्ट्रीय क्षेत्र में काम कर रहे हैं।

पंजाब में आपके द्वारा होनेवाली राष्ट्रीय जागृति को सरकार अधिक बरदाश्त नहीं कर सकी। ३ दिसम्बर १९२१ को आपको गिरफ्तार करके १८ महीने की कैद और ५०० रु० जुरमाने की सज़ा दे दी गई। थोड़े दिन बाद आप छोड़ दिये गये, परन्तु आप चुप बैठनेवाले नहीं थे। शीघ्र ही फिर गिरफ़्तार कर लिये गये। ९ मार्च १९२२ को आपको राजद्रोह में दो वर्ष की सज़ा हुई। जेल में आपका स्वास्थ्य बहुत खराब हो गया। राष्ट्रीय पत्रों में छुटकारे के लिए बहुत आन्दोलन हुआ। राजयक्ष्मा—तपेदिक़ के भयानक हो जाने पर १६ अगस्त १९२३ को आपको छोड़ दिया गया। कुछ मास आराम करने के बाद आप फिर राजनैतिक कार्य में लग गये। १९२३ के अन्त में कांग्रेस-स्वराज्य दल की ओर से आप भी लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्य निर्वाचित हुए। १९२५ में आपका उस दल से मत-भेद होगया और सन् १९२६ के चुनाव में मालवीयजी के साथ मिलकर आपने नेशनलिस्ट पार्टी की स्थापना की। दलबन्दी के जोश में आप १९२६ के चुनाव में पंजाब के दो निर्वाचन-क्षेत्रों से खड़े हुए और दोनों से ही चुने गये। परन्तु स्वराज्य-दल के उस विरोध के कारण देश के राजनैतिक क्षेत्रो में आप पहले के समान लोकप्रिय नहीं रहे। १९२७ में पं० मोतीलाल जी के साथ फिर आपका मेल होगया और अन्त तक वह मित्रता अधि-

काधिक गहरी होती गई। नेहरू रिपोर्ट के तैयार करने में भी आपने नेहरू जी की बड़ी सहायता की थी। आप दोनों की गहरी मित्रता और सहयोग से देश को बड़ा लाभ होने की आशायें थी परन्तु १९२८ के नवम्बर में ही लालाजी इस लोक को छोड़ गये।

देश की राजनैतिक स्वतन्त्रता के साथ-साथ आपके हृदय में हिन्दू जाति के लिए भी बड़ा दर्द था। दलितोद्धार और शिक्षा-सम्बन्धी आपके काम इसी हिन्दुत्व-प्रेम के परिणाम थे। आर्यसमाज में प्रवेश और डी० ए० वी० कालेज की सेवा भी इसी कार्य के अंग थे। १९०७ में मांडले में नज़रबन्द रहते हुए आपने कई धार्मिक निबन्ध भी लिखे थे। वहां से छूटने के बाद १९०९ में आपने पंजाब में हिंन्दू सभा की स्थापना की। उस समय कुछ आर्यसमाजियों ने उसका विरोध भी किया था। बाद को जब पं० मालवीय जी ने हिन्दू महासभा का संगठन किया, तब हिन्दुओं का बहुत बड़ा भाग लालाजी के पक्ष में हो गया। १९२३ में शुद्धि और तबलीग़ तथा संगठन और तंज़ीम आन्दोलन के कारण हिन्दुओं में जो साम्प्रदायिक जागृति पैदा हुई उसमें आपने पूरी तरह योग दिया। १९२५ में आप हिन्दू महासभा के कलकत्ता में होने वाले स्मरणीय अधिवेशन के सभापति बने। अक्टूबर १९२८ में इटावा में आप युक्त प्रान्तीय हिन्दू कांफ्रेंस के अध्यक्ष हुए थे। १९२६ में स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या होने के बाद हिन्दू जनता की दृष्टि आप पर ही थी। परन्तु शुद्धि तथा संगठन के पक्षपाती होते हुए भी आपके विचारों ने संकीर्ण साम्प्रदायिकता का रूप धारण नहीं किया। आप अन्त तक पृथक निर्वाचन के विरुद्ध सम्मिलित चुनाव-पद्धति के पक्षपाती रहे।

आपकी सार्वजनिक सेवाएँ चौमुखी थीं। राजनीति, समाज-सुधार, शिक्षा और लोक-सेवा के अतिरिक्त दलितोद्धार के लिए भी आपने बड़ा काम किया। सन् १६०० से भी पहले, जब कि कांग्रेस में किसीने इस महत्त्वपूर्ण कार्य की आवश्यकता को अनुभव भी नहीं किया था, तब लाला जी ने सियालकोट के आस-पास मेघ आदि अनेक दलित जातियों की दशा को उन्नत करने का बड़ा काम किया था। उन जातियों की आज की अवस्था को देखकर कोई कल्पना भी नहीं कर सकता कि जब आपने उनके उद्धार का काम आरम्भ किया था तब उनकी दशा क्या रही होगी। लालाजी के देहान्त के बाद, आज भी, उनकी स्थापित की हुई सर्वेंएट्स आफ़ पीपल सोसायटी (लोक-सेवक-मंडल) के सदस्यों का मुख्य काम दलितोद्धार ही बना हुआ है। उक्त सोसायटी को लालाजी ने अमरीका से लौटने के बाद १६२० में स्थापित किया था। उस समय उन्होंने अनुभव किया था कि देश के नवयुवकों में राजनीति तथा अर्थशास्त्र का ज्ञान फैलाने और उनमें सेवा-भाव उत्पन्न करने की अत्यन्त आवश्यकता है। इसी विचार से पहले तिलक स्कूल आफ पॉलिटिक्स के नाम से एक स्कूल खोला और बाद को उसी स्कूल का रूपान्तर यह सोसायटी हो गई। इस सोसायटी के सदस्यों को अपना ज्ञान बढ़ाने में सुगमता हो इसलिए आपने द्वारिकादास लायब्रेरी नाम से एक बड़ा पुस्तकालय भी स्थापित किया था। मृत्यु से कुछ समय पूर्व अपनी माता के नाम पर आपने तपेदिक का एक अस्पताल खोलने के लिए भी एक बड़ी धन-राशि दान दी थी। इन लोकोपकारी कार्यों में आपने अपनी प्रायः सब कमाई लगा दी थी।

आपकी साहित्यिक सेवायें भी उल्लेखनीय हैं। साहित्य को देश सेवा का आपने प्रधान साधन बनाया था। 'मेरी जायदाद मेरी क़लम है'—अपने इस कथन की सचाई को अपने जीवन में आपने पूरा कर दिखाया था। वाणी के प्रवाह की तरह लेखनी के प्रवाह पर भी आपका क़ाबू न था। जैसे वक्ता थे, वैसे ही लेखक भी थे। मेज़िनी, गैरिबाल्डी, शिवाजी, कृष्ण, बन्दा वैरागी, स्वामी दयानन्द, गुरुदत्त विद्यार्थी आदि की जीवनियों द्वारा देशवासियों में देश-सेवा की भावना जगाने का आपने सराहनीय प्रयत्न किया था। अमेरिका रहते हुए आपने जो पुस्तकें लिखी थीं, उनमें 'आर्यसमाज' 'भारत का राजनैतिक भविष्य' और 'यंग-इण्डिया' बहुत सुन्दर और उपयोगी पुस्तकें हैं। मिस मेयो की 'मदर इण्डिया' के जवाब में लिखी गई 'अनहैप्पी इण्डिया' (दुःखी भारत) आपकी सर्वोत्तम रचना है। आपकी लिखी हुई अपनी 'आत्म-कथा' भी बहुत बढ़िया है। शुरू के आर्य समाजी जीवन में आर्यसमाजी पत्रों में आपके बहुत ज़ोरदार लेख निकला करते थे। कुछ पत्रों का उन दिनों में आपने सम्पादन भी किया था। 'तिलक स्कूल आफ पॉलिटिक्स'-की ओर, से उर्दू में दैनिक 'बन्देमातरम्' और अंगरेजी में साप्ताहिक 'पीपुल'भी निकालने शुरु किये थे, जो अब तक लोक-सेवक-मण्डल की ओर से निकाले जा रहे हैं।

आपका स्वभाव बहुत मानी था। स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान की आप मूर्ति थे। आप सब कुछ सह सकते थे, परन्तु अपने अथवा अपनी मातृभूमि के अपमान को सहन नहीं कर सकते थे। आपके जीवन का अन्त भी इसी स्वभाव के कारण हुआ। १९२८ में जब ब्रिटिश सरकार

ने साइमन कमीशन की नियुक्ति की और उसमें एक भी भारतीय को नहीं रखा, तब देश ने एक स्वर से उसके बायकाट का निश्चय किया। भारत में सर्वत्र उस कमीशन का स्वागत काले झण्डों और 'साइमन वापस जाओ' के नारों से किया गया। ३० अक्टूबर १६२८ को वह कमीशन लाहौर पहुंचा। स्थानीय अधिकारियों ने उस दिन वहां दफ़ा १४४ लगाकर सब प्रकार के जलूसों और सभाओं को रोक दिया था। लाहौर स्टेशन के बाहर सशस्त्र पुलिस का पहरा था। आपने उस सब की परवा न करके साइमन कमीशन के बायकाट का जलूस संगठित किया। आप स्वयं उस जलूस के आगे-आगे थे। पुलिस अधिकारियो ने खिजकर उस जलूस पर लाठियों से हमला किया। लालाजी के भी कई लाठियां लगीं। यदि रायज़ादा हंसराज उन लाठियों को अपने ऊपर न ले लेते तो आपको बहुत अधिक चोट लगती। आपके मन और शरीर पर उस अपमान का इतना गहरा असर हुआ कि उसीके कारण १७ नवम्बर के प्रातःकाल ७ बजे आपने इस लोक को त्याग दिया। पंजाबकेसरी के उस अपमान को पंजाब के युवकों ने कितना अनुभव किया था, यह बाद की घटनाओं से स्पष्ट है। असेम्बली में भी कई बार उसकी चर्चा हुई है और अब-तब उसको लेकर सरकारी तथा गैर-सरकारी सदस्यों में नोंक-झोंक होती रहती है। आपका यह कथन इतिहास में सदा ही अमिट अक्षरों में लिखा रहेगा कि कि "मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश-साम्राज्य के कफ़न की कील होगी।" उनके ये शब्द भी भुलाये नहीं जा सकते कि "मेरा मज़हब हक़परस्ती है, मेरी मिल्लत कौम परस्ती है, मेरी इबादत खलकपरस्ती है, मेरी

अदालत मेरा अन्तःकरण है, मेरी जायदाद मेरी कलम है, मेरा मंदिर मेरा दिल है और मेरी उमंगें सदा जवान हैं।" इसमें सन्देह नहीं कि घोर निराशापूर्ण और दुःखपूर्ण अवस्था में भी आपके हृदय में सदा नौजवानों का-सा उत्साह, आशा और आकांक्षा समाई रहती थी।

लाहौर में आपकी स्मृति को कायम करने का सराहनीय उद्योग किया गया है। कम्पनी बाग में आपकी प्रतिमा खड़ी की गई है। और निवास-स्थान पर शानदार 'लाजपतराय भवन' बनाया गया है। 'लोक-सेवक-मण्डल' भी आपका एक स्मारक ही है।

चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य

[जन्म, जून—१८५२]

पैंतीसवाँ अधिवेशन, नागपुर—१९२०

कांग्रेस की सुवर्ण जयन्ती के साथ अपनी सार्वजनिक सेवाओं की सुवर्ण जयन्ती मनाये जाने का अहोभाग्य प्राप्त करनेवाले स्वनामधन्य वयोवृद्ध श्रीयुत चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य का जीवन उस विचार-प्रवाह की अटूट धारा है, जिसका उद्गम आज से ५०--६० वर्ष पहले, कांग्रेस की स्थापना से भी पूर्व, हुआ था और जिसने देश में पूर्ण स्वतंत्रता की उस भावना को जन्म दिया है, जो आज सारे देश में व्याप रही है। ह्यूम को यदि कांग्रेस का पिता कहा जाता है तो आप को उसका पितामह कहना चाहिए, दादाभाई को बड़ी आयु की दृष्टि से 'पितामह' कहा जाता था, किन्तु कांग्रेस को जन्म देकर अब तक उसके साथ अपने सम्बन्ध को निभानेवाले आप सच्चे अर्थों में कांग्रेस के 'पितामह' हैं। प्रारम्भ से ही एक दृढ़, निर्भीक, साहसी, स्वाभिमानी और आत्मत्यागी योद्धा का-सा आपका जीवन रहा है! स्वदेशवासियों के जन्मसिद्ध अधिकारों की पताका को आपने अपने सुदृढ़ हाथों में संभालकर सदा ऊंचे फहराये रखा है। अपने ध्येय में एक निष्ठा और

आचार-विचार में निर्भीकता तथा स्वतंत्रता आपका सबसे बड़ा गुण है। व्यक्तिगत स्वार्थ की कुत्सित भावना का लवलेश भी आपमें नहीं है। कांग्रेस या उसके संचालकों के साथ यदा-कदा तीव्र मतभेद हो जाने पर भी आपने कभी उसका विरोध नहीं किया और उसके विरोध में कभी किसी दूसरी संस्था का साथ भी नहीं दिया। शासन-विधान-सम्बन्धी क़ानून का आपका ज्ञान और सभी देशों की शासन-व्यवस्थाओं का आपका अध्ययन अगाध है। आप इन विषयों के अद्वितीय पण्डित हैं। कांग्रेस में इन विषयों पर आपकी सम्मति सदा ही प्रमाण मानी जाती रही है। विज्ञापनबाज़ी से इतना दूर रहनेवाले हैं कि कांग्रेस के खुले अधिवेशनों के प्लेटफ़ार्म पर सामने आने से भी सदा दूर रहना ही आपने पसंद किया है, किन्तु उसकी अन्तरंग कमेटियों, विषय-समितियों और गुप्त मन्त्रणाओं में आप प्रारम्भ से ही प्रमुख भाग लेते रहे हैं। आपको कांग्रेस का हृदय और दिमाग़ समझना चाहिए।

ऐसे अद्वितीय महापुरूष का जन्म जून १८५२ में चेंगलपेट ज़िले के पोनविलैन्द कलत्तूर गांव में एक बहुत कट्टर वैष्णव परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री सतगोपाचार्य कट्टर पुरातन पन्थी थे और संस्कृत के महान् पण्डित थे। अनेक व्यक्ति अपनी धार्मिक आशङ्काओं की निवृत्ति के लिए उनके पास आया करते थे। वह अपने पुत्र को भी अपने समान संस्कृत का विद्वान गणपाठी या वेदपाठी बनाने के विचार से अंग्रेज़ी आदि कोई भी भाषा नहीं पढ़ाना चाहते थे। इसलिए चौदह वर्ष की आयु तक ब्रह्मचारी वेश में रखकर आपको केवल वेदाध्ययन कराया गया। परन्तु आपकी तीव्र इच्छा अंग्रेजी पढ़ने की

थी और उसके लिए किसी अवसर की तलाश में आप सदा ही रहा करते थे। १५ वर्ष की आयु में आप घर से भागकर अपने गांव के ही पास अपने मामा के यहां उसी तालुका के मुख्य गांव मदुरान्तकम् में चले गये और वहां मामा के लड़कों के साथ अंग्रेज़ी पढ़ने लगे। पचिआप्पा हाईस्कूल में आपने एएट्रेंस की परीक्षा पास की। १८७५ में प्रेसिडेंसी कालेज से सेकएड क्लास हानर्स के साथ बी० ए० पास किया। आपने सब पढ़ाई बिना फ़ीस के पूरी की, क्योंकि सभी परीक्षा में सर्व-प्रथम रहने से आपको प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति मिलती रही। साथ ही 'फ़र्स्ट-ग्रेड प्लीडरशिप' की परीक्षा भी आपने पास की। अपनी प्रतिभा और सफ़ाई के लिए आप प्रसिद्ध थे। प्रिंसिपल डा० डंकन के, जो बाद में शिक्षा-विभाग के डाईरेक्टर हो गये थे, आप बहुत अधिक प्रिय थे। बी० ए० पास करते ही मंगलौर के सेएट एलोपसिंस कालेज़ (मिशन-कालेज) में अध्यापक नियुक्त हो गये और तीन वर्ष तक उसमें अध्या-पक का कार्य करते रहे। प्रिंसिपल में जाति-द्वेष कूट कूट कर भरा हुआ था और अपने मातहत हिन्दू अध्यापकों के साथ उसका व्यवहार बहुत अपमान-जनक होता था। उसको लेकर आपका उसके साथ सदा झगड़ा बना रहता अतः आप १८७८ में त्याग-पत्र देकर उससे अलग हो गये। वस्तुतः नौकरी करने के लिए आप पैदा ही नहीं हुए थे और अपने समस्त जीवन में आपने अपनी स्वतंत्र-वृत्ति को क़ायम रखा। १८७९ में आप ने सालेम में आकर वकालत शुरु की और ५० वर्ष तक वकालत करते रहे। अपनी योग्यता और प्रतिभा के कारण वकालत में जल्दी ही आपने नाम पैदा कर लिया और उसमें आप पैसा भी कमाने लग गये।

१८८२ में आप सालेम म्यूनिसिपैलिटी के सभासद् चुन लिये गये और नागरिक मामलों में दिलचस्पी लेने लगे।

उसी वर्ष सालेम में वे महत्वपूर्ण एतिहासिक घटनायें हुईं, जिनसे श्रीयुत आचार्य चारों ओर प्रसिद्ध हो गये। १८८२ के जुलाई और अगस्त में सालेम में वे सुप्रसिद्ध उपद्रव हुए, जो कि स्थानीय अधिकारियों की लापरवाही और अन्धपक्षपात के दुष्परिणाम थे। १८७२ में सालेम के कलेक्टर ने दो सार्वजनिक सड़कों के उस चौराहे पर मुसलमानों को मसजिद बनाने की आज्ञा दे दी, जहां से हिन्दुओं के जलूस बाजे-गाजे के साथ हमेशा गुज़रा करते थे। हिन्दुओं ने आपत्ति की और आन्दोलन किया, किन्तु कुछ परिणाम न निकला। १८८० में अदालत में मामला लड़ा गया और यह फैसला हुआ कि नमाज के समय के अलावा अन्य सब अवसरों पर हिन्दुओं के जलूस बाजों के साथ निकल सकेंगे। कलैक्टर मि० एच० ई० स्टोक्स इस फ़ैसले को निभाते रहे। १८८३ के मध्य में उनके स्थान पर डी० मैकलीन कलेक्टर हुए। उनके समय में पहले जुलाई १८८२ में उपद्रव हुआ और समझौते की बातचीत शुरु हुई। मुसलमान कलेक्टर के बहकावे में आ गये और समझौता न हो सका। इसलिए अगस्त में फिर उपद्रव हुआ। बहुत से हिन्दुओं के मकान जला दिये गये और मसजिद गिरा दी गई। सरकार ने उपद्रव के कारणों की जांच करने के लिए स्पेशल अफ़सर की नियुक्ति की। कलेक्टर को हिन्दुओं और श्री आचार्य से चिढ़ थी। उसने स्पेशल अफ़सर को भी अपने साथ मिला लिया। यह रिपोर्ट की गई कि मसजिद गिराने में सब दोष हिन्दुओं का है। बहुत से हिन्दू

पहले गिरफ़्तार किये गये और उनको लम्बी-लम्बी सजायें दी गईं। बीस सुप्रतिष्ठित हिन्दुओं के साथ आपको भी षड़यन्त्र में पकड़ा गया। नवम्बर१८८२ में षड़यन्त्र के अपराध में आपको दस वर्ष की और बाकी सबको आजन्म कालापानी की सजा दी गई। बड़ी शान्ति और धैर्य के साथ आपने फ़ैसला सुना और हाईकोर्ट में अपील की। जनवरी १८८३ में आप अपील में बेदाग़ छोड़ दिये गये और हाईकोर्ट ने स्वीकार किया कि उस सब काण्ड में कोई षड़यन्त्र नहीं था।

म्यूनिसिपैलिटी में आपके खरे व्यवहार और स्पष्ट भाषणों ने उसके चेयरमैन (कलेक्टर) मैकलीन को बहुत चिढ़ा दिया। उसकी आलोचना करने में भी आपने कभी संकोच नहीं किया और कभी भी उसको या किसी को भी प्रसन्न करने के लिए अपनी सम्मति को नहीं बदला। मदरास के 'हिन्दु' में विविध सामयिक विषयों पर आप लेख लिखते रहते थे। आपने म्यूनिसिपल चुनाव के लिए 'हिन्दू सभा' का संगठन किया था। हिन्दू-विरोधी सरकारी अधिकारियों की कूटनीति का आप सदा ही भंडाफोड़ करते रहते थे। इस सब पर नाराज़ हो कलेक्टर ने मई १८८३ में आपको म्यूनिसिपिल सभासदी से अलग करा दिया। सरकार से तुरन्त आपने इसका कारण पूछा। सर ग्राण्ट डफ की सरकार ने यह कोरा जवाब देकर चुप्पी साध ली कि उनको इस बारे में कुछ भी जानने का अधिकार नहीं है। इस मामले को लेकर १८८४ के शुरु में आपने भारत-मन्त्री पर नुकसान भरपाई का दावा कर दिया। हाईकोर्ट से फ़ैसला हुआ कि आपके लिए इस मामले द्वारा अपनी प्रतिष्ठा का क़ायम रखना ज़रूरी था और आपको १०० रु० बतौर

हरजाने के दिलवाया गया। सब दलों में आपके इस सत्साहस की बहुत प्रशंसा हुई और आप 'सालेम के वीर' के नाम से चारों ओर प्रसिद्ध हो गये। सरकारी अधिकारियों के स्वेच्छाचार के विरुद्ध ऐसे सत्साहस का परिचय देना उस समय वास्तव में ही एक विलक्षण घटना थी।

उसके बाद आपने अपने विरुद्ध झूठी साक्षी देनेवाले लोगों पर मुक़द्दमे चलाये। सरकार ने उनको दबाने का यत्न किया। जुलाई १८८४ में उन मुक़द्दमों का फैसला हुआ और एक बार फिर आपके चरित्र की उत्कृष्टता प्रकट होगई। दो वर्ष के इस लम्बे अरसे में आप अपनी वकालत नहीं कर सके। सब समय और सब ध्यान आपको उन मुक़द्दमो में ही लगा देना पड़ा। अन्य साथियों की रिहाई के लिए भी आपने यत्न किया। आप इस बारे में ए० ओ० ह्यूम से मिले और उनकी मर्फ़त लार्ड रिपन तक सब बातें पहुँचाई। लार्ड रिपन जब मदरास में आये, तब सालेम के लोगों की ओर से उनकी सेवा में एक प्रार्थना पत्र पेश किया गया, जिसके परिणाम-स्वरूप १८८४ में मदरास सरकार को विवश होकर सब क़ैदियों को छोड़ देना पड़ा।

इस प्रकार आपके सार्वजनिक जीवन के प्रारम्भ में ही उन दिनों में ऐसे साहस, धैर्य, हिम्मत, निर्भयता, और दृढ़ता का परिचय देना असाधारण बात थी। आपसे कम बलवान् व्यक्ति का हृदय ऐसी संघर्षमयी घटनाओं के विचार मात्र से बैठ गया होता।

उन सब घटनाओं की केवल भारत के ही समाचार पत्रे में चर्चा नहीं हुई, किन्तु पार्लमेंट तक में उनके बारे में सवाल-जवाब पूछे गये

थे। कलकत्ता के 'अमृतबाज़ार-पत्रिका' में उस समय के सम्पादक श्रीयुत शिशिर कुमार घोष ने कई मुख्य लेख लिखे और प्रचण्ड आन्दोलन किया था। उस सब संघर्ष में श्री आचार्य के विजयी होने के बाद यह प्रस्ताव पेश किया गया था। कि सालेम में आपकी पीतल की मूर्ति और आपके नाम पर एक विशाल भवन बनाया जाए। इससे मालूम होता है कि उन घटनाओं ने आपको कितना लोकप्रिय बना दिया था। पर जनता में आपका इस प्रकार लोकप्रिय होना सरकारी दृष्टि से आपके लिए कुछ महंगा पड़ा। अधिकारी आपसे नाराज़ होगये और आपको नीचा दिखाने का यत्न करते रहे। आपने उस नाराज़गी की परवा नहीं की और अपने मार्ग या ध्येय से विचलित नहीं हुए। म्यूनिसिपल बोर्ड के अलावा आप कुछ समय तक जिला बोर्ड के भी सभासद रहे।

१८८९ में आप प्रान्तिक कौंसिल के लिए प्रान्त के दक्षिण भाग की म्यूनिसिपैलिटियों और जिला बोर्डों की ओर से चुने गये। १८९३ में जब पहली बार चुनाव का अधिकार दिया गया था, तब भी आप चुनाव के लिए खड़े हुए थे, किन्तु केवल एक वोट से हार गये थे। १८९५ में आप फिर खड़े हुए। तब ज़िले के कलक्टर मि०(बादमें 'सर') ई० फोक्स ने आपकी गैरहाजिरी में जिला बोर्ड के सभासदों पर आपको वोट न देने के लिए दबाव डाला था। फिर भी आप चुनाव में सफल हुए थे। १९०२ तक आप तीन बार लगातार उसके सभासद चुने जाते रहे। बिलों पर विचार करने के लिए बनाई गई प्रायः सभी सिलेक्ट कमेटियों के आप सभासद बनाये जाते थे। आपके भाषणों और विचारों का सभी दृष्टियों के लोग बहुत सम्मान करते थे।

१६१३ में आप इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सभासद चुने गये थे। जब कांस्पिरेसी बिल पेश किया गया, तब सारे देश में उसका विरोध करने वाले आप पहले व्यक्ति थे। वायसराईन लेडी चैम्सफ़ोर्ड, जो उस दिन वहां कौंसिल-भवन में उपस्थित थीं, आपके भाषण से इतनी प्रभावित हुई थीं कि उसने उसी समय पेंसिल से लिखकर एक पत्र द्वारा आपको बधाई दी थी। हिन्दू यूनिवरसिटी बिल का भी आपने विरोध किया था और कहा था कि वह जातिगत कार्य होने से राष्ट्रीयता विरोधी है। आप जाति-विशेष का नाम न देकर अखिल भारतीय यूनिवरसिटी बनाने के पक्ष में थे। १६१६ में जब आप दुबारा खड़े हुए तो चुनाव में सफल नहीं हुए।

१६०० में कालीकट में हुई मदरास प्रान्तिक कान्फ्रेंस के आप सभापति चुने गये थे। फिर १६१८--१६ में माण्टफोर्ड-शासन-योजना पर विचार करने के लिए की गई प्रान्तिक कान्फ्रेंस के विशेषाधिवेशन के सभापति भी आप ही हुए थे। १९०७ में मदरास-सरकार ने मार्लेमिण्टो-शासन-योजना के सम्बन्ध में जब आपकी राय मांगी तब आपने अपने लम्बे वक्तव्य में राजाओं को लेकर बनाई गई एडवाइसरी कौंसिल को एकदम अवांछनीय बताया था। आपका यह मत था कि उससे राजाओं का दर्जा नीचा होता है। कौंसिलों के निर्वाचित सदस्यों की संख्या कम से कम आधी रखने पर आपने जोर दिया था। इम्पीरियल कौंसिल में कई वार सरकार ने आपको अपनी ओर करने के लिए ललचाया। १६१८ में आपको 'दीवान बहादुर' का खिताब दिया गया था, किन्तु आपने उसकी उपेक्षा की और उसको स्वीकार नहीं किया। 'सर' का

ख़िताब भी आपको देने की बात आप तक पहुंचाई गई थी किन्तु आपको ख़िताब लेना पसंद ही नहीं था। आप उस समय भी किसी ख़िताब की रिश्वत लेकर पथभ्रष्ट होनेवाले देशभक्त नहीं थे।

कांग्रेस के साथ आपका सम्बन्ध यद्यपि उसके जन्म के साथ ही हो गया था, किन्तु उसके पहले दो अधिवेशनों में आप इसलिए सम्मिलित न हो सके थे कि उन्हीं दिनों में आपके पिता का श्राद्ध पड़ा करता था। तीसरे अधिवेशन, सन् १८८७, से आपने उसमें सम्मिलित होने का निश्चय करके ऐसा निश्चय कर लिया कि श्राद्ध करवानेवाले लोगो को भी साथ ही ले जाने लगे और जहां कांग्रेस होती वहां ही पिता का श्राद्ध करते थे। तब से अब तक आप कांग्रेस में बराबर सम्मिलित होते रहे हैं, सिवा पिछले कुछ वर्षों के, जब कि आपका स्वास्थ्य लम्बी यात्रा करने योग्य नहीं रहा। मि० ए० ओ० ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना, उसके ध्येय और कार्यशैली आदि के सम्बन्ध में आपसे विचार-विनिमय किया था। १८८७ में कांग्रेस का विधान बनाने के लिए नियुक्त की गई कमेटी के आप सदस्य थे। १८९९ और १९०० में इण्डियन कांग्रेस कमेटी के आप सभासद् बनाये गये थे। १९०५ में आपने उस प्रस्ताव का बड़ी योग्यता के साथ समर्थन किया था, जिससे गोखले, लाजपतराय और विशननारायण दर को शासन-सुधारों के सम्बन्ध में आन्दोलन करने को इंग्लैण्ड भेजने का निश्चय किया गया था। १९०६ में आपने इस्तमरारी बन्दोबस्त (परमेनेण्ट सैटलमेण्ट) का प्रस्ताव पेश किया था। आपने यह विचार प्रकट किया था कि इस देश की ज़मीन का मालिक इंग्लैण्ड का राजा नहीं है, इसलिए जमीन

पर लिए जानेवाला टैक्स 'रैण्ट' (किराया) नहीं हो सकता। बम्बई में कांग्रेस के १९१८ में हुए महत्वपूर्ण विशेषाधिवेशन में और अमृतसर में हुए १९१९ के अधिवेशन में आपने विशेष भाग लिया था। उन अधिवेशनों में आपने विस्तार के साथ जनता के मौलिक नागरिक अधिकारों का विवेचन किया था। १९१८ में देहली में हुए अधिवेशन के सभापतित्व के लिए महामना मालवीय जी के साथ आपका नाम पेश किये जाने पर आपने अपना नाम वापिस ले लिया था। नागपुर में १९२० में हुए ऐतिहासिक अधिवेशन के आप सभापति चुने गये थे। वह अधिवेशन कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। असहयोग आन्दोलन के कार्यक्रम के कारण उस अधिवेशन में उपस्थिति असाधारण थी। नेताओं के पारस्परिक मतभेद ने उसके सभापतित्व की जिम्मेदारी को बहुत गुरुतर बना दिया था। आपका सुविस्तृत भाषण आपके विधान-सम्बन्धी कानून के अगाध ज्ञान का प्रत्यक्ष प्रमाण था। उससे मालूम होता है कि यूरोप और अमेरिका के सब देशों के वैधानिक कानून का आपने कितना गहरा अध्ययन और कितना महान् मनन किया है। उसमें आपने नागरिकता के मौलिक अधिकारों की घोषणा की थी और भारत के लिए औपनिवेशिक विधान तथा चुनाव सम्बन्धी अपनी योजना की चर्चा की थी। पूर्ण स्वतंत्रता की शीघ्रतम प्राप्ति के लिए सरकार से असहयोग करने के सम्बन्ध में आपने कहा था कि "ईमानदारी के साथ दो रायें प्रगट नहीं की जा सकतीं। अपने देश के शासन में अपनी वास्तविक और ठोस सुनवाई करने के लिए हम पिछले पैंतीस बरसों, बल्कि उससे भी अधिक लम्बे समय से प्रार्थना, निवेदन और

आन्दोलन करते आरहे हैं, किन्तु सब व्यर्थ सिद्ध हुआ है।" वायसराय के इस कथन का आपने सप्रमाण और युक्तिपूर्वक खण्डन किया था कि असहयोग गैरकानूनी है। आपने कहा था कि वर्तमान राजनैतिक रोग की असहयोग ही एकमात्र दवा है। आपका यह मत था कि असहयोग के महान् आन्दोलन को धीरे-धीरे पुष्ट करके महान् शक्ति बनाना चाहिए। उसको तुरन्त सर्वसाधारण जनता का आन्दोलन नहीं बना देना चाहिए। इंग्लैण्ड और भारत के पारस्परिक सहयोग को अनिवार्य रूप में आप आवश्यक मानते हैं। भाषण के अन्त में गांधी जी और माण्टेगू से जोरदार अपील करते हुए आपने कहा था कि इस देश का भाग्य इन दोनों के ही हाथों में है।

१९२२ में गया कांग्रेस में आपने बड़े साहस के साथ उस प्रस्ताव का विरोध किया था, जिसमें सिर्फ ब्रिटिश माल के बहिष्कार की बात कही गई थी। अन्त में आप उस विरोध में सफल भी हुए थे। १९२३ की कांग्रेस में आप उपस्थित नहीं हो सके थे, किन्तु आपने हिन्दू-मुसलमानों की एकता के लिए सन्देश भेजते हुए कांग्रेस को यह सलाह दी थी कि उस बारे में गान्धीजी के ही विचारों को पूरे विश्वास और दृढ़ता से काम में लाना चाहिए। १९२७ में आपने मदरास की कांग्रेस में विशेष भाग लिया था और कहा था कि यदि हम अपनी सहायता आप नहीं करेंगे, तो अंग्रेज़ यहां से आप जानेवाले नहीं हैं। जब देशबन्धु ने कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम उपस्थित किया था, तब आप उसके विरोधी थे और आपने यह स्पष्ट ही कहा था कि वैसा करना देश की उन्नति में सहायक न होगा। १९२८ में आपने साइमन-

कमीशन के बहिष्कार का समर्थन किया था। १९२८ में देहली में जो सर्वदल-सम्मेलन हुआ था, उसके आप सभापति थे और उस द्वारा देश के लिए स्वराज्य-विधान बनाने के लिए जो कमेटी नियुक्त की गई थी, उसके आप सभासद् थे। वही विधान बाद में 'नेहरू रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके बनाने में आपका प्रमुख हाथ था और उस पर आपने हस्ताक्षर भी किये थे। अखिल-भारतीय-कांग्रेस-कमेटी के आप बहुत पुराने सभासद् हैं और बहुत ही कम अवसरों पर आप उसकी बैठकों में अनुपस्थित रहे हैं। जून १९२९ में भारतीय-स्वतन्त्रता के प्रश्न को हल करने के बारे में आपने अपनी एक निराली योजना पेश की थी। १९२८ की कलकत्ता-कांग्रेस के बाद से आपकी यह धारणा है कि 'लीग आफ नेशंस' से वस्तुतः भारत को सहायता मिल सकती है। आपका यह विश्वास है कि यदि लीग चीन की तरह हिंदुस्तान के आर्थिक पुनः संगठन में सहायता दे तो उसकी अवस्था इस समय की अपेक्षा बहुत अधिक सुधर जायगी। लीग की मार्फ़त भारत के स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकने में आपकी दृढ़ आस्था है। इंग्लैण्ड से भारत के सर्वथा पृथक होने के आप अब तक भी विरोधी हैं। आपका यह भी दृढ़ मत है कि देसी रियासतों और ब्रिटिश भारत का पारस्परिक सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार निर्धारित होना चाहिए। आप संघ-शासन-विधान के विरोधी हैं। यूनिटरी शासन-विधान में आपका दृढ़ विश्वास है। आप अन्त तक अकेले ही अपनी सम्मति पर दृढ़ रहने वाले व्यक्ति हैं। दो वर्ष पहले मैसोर में भी आपने कहा था कि संघ-शासन-विधान में देशी नरेशों की स्थिति जमींदारों की-सी और उनकी प्रजा की रैयत की-सी हो जायगी।

१९२१ के अगस्त मास में अकोला में हिन्दू महासभा का अधिवेशन आपके सभापतित्व में हुआ था। अपने विस्तृत भाषण में आपने भारतीय समस्या पर विचार करते हुए तीन मुख्य प्रश्न सामने रखे थे। पहला अल्प संख्यक जातियों, विशेषतः हिंदू-मुसलमानों का प्रश्न था, दूसरा प्रश्न था प्रस्तुत संघ-शासन-विधान का, जिसके द्वारा देसी रियासतों को ब्रिटिश भारत के साथ मिलाकर एक सम्मिलित बड़ा भारत बनाया जा रहा था और तीसरा प्रश्न था गान्धी-अर्विन-समझौते में प्रतिपादित संरक्षणों की अनिवार्यता का। आपने कहा था कि एक मात्र आर्थिक सुधारों के जल्दी-से-जल्दी दिये जाने से ही साम्प्रदायिक झगड़ों को दूर कि[illegible] जा सकता है।

१९३२ के नवम्बर में मालवीयजी के उद्योग से इलाहाबाद में हुए एकता-सम्मेलन के आप ही सभापति थे। दूसरी गोल मेज़ परिषद् के बाद यह स्पष्ट हो गया था कि एकता के बिना राजनैतिक सुधारों का प्राप्त करना संभव नहीं है। आपने उस समय कहा था कि यदि हम एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं, तो विवध जातियों को जरूर ही एक होना पड़ेगा। संयुक्त-निर्वाचन-मात्र से उसका श्रीगणेश नहीं हो सकता। 'कम्यूनल एवार्ड' के भी आप विरोधी हैं। आपने जोरदार शब्दों में यह कहा था कि अल्प संख्यक जातियों को बहुसंख्यक जाति से डरना नहीं चाहिए और मिलकर एक दिल से काम करना चाहिए। सब नेताओं से आपने राष्ट्र की उन्नति पर ही ध्यान देने की अपील की थी।

इस वृद्धावस्था में भी आप गत वर्ष मदरास में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में सम्मिलित हुए थे। १९३५ के दिसम्बर

मास में देश की सर्व प्रधान राष्ट्रीय संस्था 'कांग्रेस' की सुवर्ण जयन्ती के साथ आपकी सार्वजनिक सेवाओं की भी सुवर्ण जयन्ती मनाई गई थी, जिसके उपलक्ष में मदरास में सार्वजनिक समारोह का आयोजन करके आपको मान-पत्र अर्पित किया गया था। सभी विचारों और सभी पक्षों के नेताओं ने उपस्थित होकर या सन्देश भेजकर आपका अभिनन्दन किया था। मानपत्र एक बहुत ही सुन्दर 'फ्रेम' में दिया गया था। उस पर १८८५ और १६३४ में हुए कांग्रेस के अधिवेशनों के चित्र बने हुए थे, मध्य में सोने में भारतमाता का चित्र अंकित था और नीचे ह्यूम, गान्धीजी और आपके चित्र थे। हाथी दांत की बढ़िया नक्काशी उस पर बनी हुई थी।

पिछले ३८ वर्षों से आप मदरास युनिवरसिटी की सीनेट के सभासद् हैं।

पचास वर्ष से अधिक समय तक सालेम में वकालत करते रहने के बाद १६३३ में खून के एक मुकदमे में अकृतकार्य होने से वकालत करना ही आपने छोड़ दिया। उसमें तीन अभियुक्तों को फांसी की सजा हुई थी वकालत के दीर्घकाल में यही एक मुकदमा था, जिसमें आप असफल हुए थे। अपने खर्च से आपने अभियुक्तों की ओर से हाईकोर्ट में मुकदमा लड़ा और मदरास-सरकार तथा भारत-सरकार से भी अपील की, किन्तु फांसी की सज़ा बहाल रही। आप पर उसका ऐसा असर पड़ा कि आपने वकालत करना ही छोड़ दिया और समझ लिया कि वृद्धावस्था में आपका दिमाग वकालत के योग्य नहीं रहा। दीवानी मामलों में आपकी अच्छी ख्याति थी। वकालत में भी आप निर्भयता,

सचाई, ईमानदारी, कार्यक्षमता तथा अपने मुवक्किल के लिए दृढ़ता के लिए प्रसिद्ध थे।

आपकी देशभक्ति और आपके सार्वजनिक कार्यों में व्यक्तिगत स्वार्थ की गन्ध भी नहीं है। आपका यदि कभी किसी के साथ मतभेद हुआ, तो वह ईमानदारी, सचाई और निर्भयता के कारण हुआ। आप बहुत शान्त और एकान्तप्रिय स्वभाव के हैं। आपको आगे बढ़ने का शौक नहीं है और आप विज्ञापनबाजी से भी बहुत दूर रहनेवाले हैं। आपको ताश, शतरंज, नाव खेने और किताबें पढ़ने का बहुत शौक है। आप व्यक्तिगत जीवन में पुराने रीति-रिवाजों के पालन करने में पुरातन-पन्थी हैं। आपमें युवकों को उत्साह और वृद्धों की बुद्धि तथा अनुभव का एकत्र सम्मिश्रण है। आप उच्चकोटि के विद्वान् और पहले दर्जे के अतिथि-सेवक हैं। अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में आप सज्जनता की साक्षात मूर्ति हैं।

मुहम्मद अजमल ख़ां

[१८६५—१९२७]

छत्तीसवां अधिवेशन, अहमदाबाद—१९२१

"मुझे दुःख है कि भारत से बिदा होने से पहले मैं आपसे मिल न सका। परमात्मा की कृपा से लौटने पर मेरी यह इच्छा पूरी होगी। मुझसे भारत की अवस्था के सम्बन्ध में यदि कोई कुछ पूछेगा, तो मुझे बहुत अधिक लज्जित होना पड़ेगा। मैं इसके सिवा और क्या कह सकूंगा कि भारत की अवस्था बहुत खराब है, क्योंकि दो महान् और अभागी जातियां आपस में लड़ रही हैं। मैं यह सदा मनाता रहता हूं कि दोनों के बीच की खाई गहरी और चौड़ी करने में लगे हुए लोग भारत पर, एशिया पर और अपनी-अपनी जातियों पर रहम करें, वे ठीक रास्ते पर आयें और निर्जीव कांग्रेस में जीवन पैदा करने में लगें।" १९२५ के अप्रैल मास में स्वास्थ्य-सुधार के लिए हकीमजी को यूरोप जाना पड़ा था। २३ अप्रैल को मार्सलीज से आपने वेदना से भरा हुआ एक पत्र गान्धीजी को लिखा था। उसीकी कुछ पंक्तियां ऊपर दी गई हैं। हकीमजी के गान्धीजी के लिए प्रेम, कांग्रेस

के लिए अनुराग, देश की दुर्दशा के लिए दर्द और हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के लिए चिन्तन की साक्षी ऊपर की पंक्तियों से बढ़कर दूसरी नहीं दी जा सकती। आपका स्वभाव सरल, सादा और मिलनसार था। व्यवहार विनयशील और सज्जनतापूर्ण था। चरित्र बल और धार्मिक श्रद्धा आपमें कूट-कूट कर भरी हुई थी। इन व्यक्तिगत गुणों के कारण सहज ही गान्धीजी की ओर आपका झुकाव हुआ और वह झुकाव आपको राजनीति में बलात् खींच लाया।

आपका जन्म १८६५ में ऐसे घराने में हुआ था, जिसका वंशपरम्परागत धंधा हकीमी ही था और मिश्र आदि मध्य-पूर्व के देशों में भी अपने पेशे की योग्यता और विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध था। आपके दादा हकीम शरीफ़खां और पिता हकीम महमूद खां के समय में जिनका ७४ वर्ष की वृद्धावस्था में देहान्त हुआ था, हकीमी पेशे में इस घराने की प्रतिष्ठा चरम-सीमा को पहुंची हुई थी। उन्हींके समय में उस तिबिया-कालेज की छोटे-से रूप में स्थापना हो चुकी थी, जो देश को हकीमजी की सब से बड़ी और गौरवशाली देन है। पिता और दादा के समय में भी उस स्कूल में देश-विदेशों के छात्र यूनानी की शिक्षा ग्रहण करते थे, किन्तु अपनी योग्यता, अनुभव, परिश्रम, लगन और धुन से एक छोटे से स्कूल को जिस प्रकार आपने इतना महान् बनाया, उसी प्रकार अपने कुल और परिवार की परम्परा को कायम रखकर उसकी प्रतिष्ठा एवं गौरव को भी आपने दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ाया। आपके समय में आपके घराने, कालेज और पेशे की प्रतिष्ठा दादा और पिता के समय की प्रतिष्ठा को भी मात कर गई थी।

आज-कल के किसी स्कूल या कालेज में आपको नहीं पढ़ाया गया था। फिर भी फारसी, अरबी, कुरान, न्याय, भौतिक .विज्ञान, साहित्य ज्योतिष, गणित और इस्लामी कानून की आपको अच्छी शिक्षा दीगई थी। अंग्रेजी का साधारण ज्ञान आपने बहुत समय बाद प्राप्त किया था। देश-विदेश की यात्राओं से प्राप्त अनुभव आपकी सबसे बड़ी शिक्षा थी सबसे पहले आपने १६०४ में फिर १६२१ में विदेश यात्रा की थी। पहली बार मध्य-पूर्व के मुस्लिम देशों के विस्तृत भ्रमण में वहां के पुस्तकालयों का अवलोकन करके और सुप्रसिद्ध हकीमों से मिल के आपने अपने हकीमी ज्ञान को बढ़ाया था, दूसरी बार लन्दन, पेरिस, बर्लिन और वीयना आदि के अस्पतालों, मेडिकल कालेजों और पुस्त-कालयों का अवलोकन अपने देहली के प्रस्तावित तिब्बिया कालेज के लिए किया था। कुस्तुन्तुनिया और मिश्र में आप इसी विचार से कुछ अधिक समय तक ठहरे थे। हकीमी पर लिखे हुए आपके ग्रन्थ प्रमाण माने जाते हैं।

१६१८ तक सार्वजनिक-जीवन में आपने कोई विशेष भाग नहीं लिया, तो भी आपने अलीगढ़ के एम० ए० ओ० कालेज को विश्व-विद्यालय बनाने के आन्दोलन में विशेष भाग लिया था। मुस्लिम लीग का आपको उपाध्यक्ष चुना गया था। लखनऊ में हिन्दू-मुस्लिम-पैक्ट का प्रश्न उठने पर आपने उसका विशेष उत्साह के साथ समर्थन किया था। १६१८ में देहली में कांग्रेस का जो महत्वपूर्ण अधिवेशन हुआ था उसके आप स्वागताध्यक्ष थे। उसके बाद आप अपना सब समय साधना एवं शक्ति तिब्बिया कालेज के काम में लगा देना चाहते थे

और भारतीय महिलाओं में यूनानी एवं आयुर्वेद की शिक्षा फैलाने का आप विचार कर रहे थे कि पंजाब में फौजी शासन का काला युग शुरू होगया और देहली की परिस्थिति भी भयानक हो गई। बार-बार गोली चलने, शहीदों की अरथियों के बाद अरथियें उठते रहने और जनता के अत्यन्त अधिक उत्तेजित होने पर भी देहली में पंजाब की दुर्घटनाओं की पुनरावृत्ति और फौजी-शासन की घोषणा न होने देने का सब श्रेय आपको और दिवंगत स्वामी श्रद्धानन्द जी को था। देहली-निवासी उस समय के १८ दिनों के राम-राज्य को कभी नहीं भूल सकते। हकीमजी उसके संस्थापकों में अन्यतम थे। देहली में उन दिनों में पंचायतें स्थापित करके वर्षों के झगड़ों तथा लाखों के मामलों को बात की बात में तय कर देने में हकीमजी अत्यन्त निपुण थे। पंजाब के फौजी शासन ने जिन अनेकों शान्त और नरम स्वभाव के लोगों में उग्रता पैदा कर अंगरेजी हकूमत में उनके विश्वास को हिला दिया था, उनमें हकीमजी भी एक थे। आपने अपने एक मित्र को ठीक ही लिखा था कि "१९१९ के पंजाब के फौजी शासन के दिनों की नौकरशाही की ओछी करतूतों से मेरे राजनैतिक विचार एकदम बदल गये हैं।" टर्की के सम्बन्ध में दिये गये वचन का ध्यान न रखकर सैवर्स की सन्धि पर हस्ताक्षर करके सरकार ने भारतीय मुसलमानों के प्रति जो विश्वासघात किया था, उसने पंजाब के फौजी शासन के घावों पर नमक छिड़कने का काम किया और हकीमजी को गान्धीजी का राजनैतिक-क्षेत्र में अन्यतम साथी बना दिया। अहमदाबाद में १९२१ में कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ था। उसके सभापति देशबन्धुदास अधि-

वेशन से कुछ दिन पहले कलकत्ता में गिरफ्तार कर लिये गये थे। तब सर्व-सम्मति से उस सम्मानित आसन पर आपको बिठा कर कांटों के ताज से आपका अभिषेक किया गया था। यरवडा जेल में आपरेशन के बाद जुहू के विश्राम के और १६२४ में देहली में किये गए २१ दिन के उपवास के समय में हकीमजी का गान्धीजी के प्रति स्नेह और आकर्षण बहुत अधिक बढ़ गया था। कांग्रेस की ओर से नियुक्त की गई सत्याग्रह-जांच-कमेटी के आप सदस्य थे। हिंदू-मुस्लिम-एकता के आप मन, वचन और कर्म से अन्यतम समर्थक थे। आपके लिए वह श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास का विषय था। १६२२ में गान्धीजी की गिरफ्तारी के बाद आपने उनको यह लिखा था कि "देश का अभ्युदय हिन्दू-मुसलमान और अन्य सब जातियों की एकता पर ही निर्भर है। उसका आधार कोई नैतिक-चाल न होकर हमारा विश्वास होना चाहिए। यद्यपि ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक नहीं है, जिनके हृदय साम्प्रदायिकता के रंग से एकदम रहित हैं, तो भी दोनों जातियों में एकता बढ़ रही है और देशवासी उस मार्ग पर आगे बढ़ रहे हैं, जिससे वे शीघ्र ही उस ध्येय को प्राप्त कर लेंगे। मेरे लिए इस एकता की कीमत बहुत अधिक है। मैं तो यह मानता हूं कि यदि देश और सब कुछ छोड़ कर इसी का सम्पादन कर ले तो उसके परिणाम-स्वरूप स्वराज्य तथा खिलाफत की समस्या अपने-आप हल हो जायगी और मुझको उससे पूरा सन्तोष हो जायगा। हृदय की पवित्रता और सचाई से ही उसको स्थिर और दृढ़ किया जा सकता है। जब तक देशवासी निःस्वार्थ भाव से देशसेवा में नहीं लगेंगे, तब तक वह कायम नहीं हो सकती।"

देश को हिंदू-मुस्लिम-एकता की अब भी सब से अधिक आवश्यकता है और उससे भी अधिक आवश्यकता है उस एकता में हकीमजी सरीखी निष्ठा, विश्वास तथा श्रद्धा रखनेवाले नेताओं की। ऐसे नेताओं की न्यूनता देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है। स्वास्थ्य-सुधार के लिए १९२५ में आप फिर यूरोप गये थे, पर कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। बिगड़ा हुआ स्वास्थ दिन-पर-दिन अधिक ही गिरता गया और १९२७ की २८ दिसम्बर को वह इतना गिर गया कि इस देह का भार संभालने से उसने अन्तिम जवाब दे दिया। और आपके देहावसान से देश का, हिन्दु-मुस्लिम एकता का एक ज़बर्दस्त हामी उठ गया।

चित्तरंजन दास

[१८७०—१९२५]

सैंतीसवां अधिवेशन, गया—१९२२

अहिंसात्मक-असहयोग के युग में अपने त्याग, तपस्या, आत्मोत्सर्ग और कष्ट-सहन द्वारा राष्ट्र-निर्माण करनेवाले महान् राष्ट्र-पुरुषों में गांधी जी के बाद जिन दो-एक का नाम लिया जा सकता है, उनमें देशबन्धु दास अन्यतम हैं। आपका व्यक्तित्व महान्, त्याग अपूर्व और तपस्या अलौकिक है। आपकी देश-भक्ति निष्कलंक है। उग्र राजनीतिज्ञ, महान् योद्धा, विद्रोही नेता होते हुए भी आप आस्तिक और धार्मिक व्यक्ति थे, किन्तु आपकी देशभक्ति ही आपकी आस्तिकता, आपकी देशसेवा ही आपकी धार्मिकता और भारत-माता ही आपकी आराध्य इष्ट देवी थी। आपके ये शब्द हरएक राष्ट्र-प्रेमी को अपने हृदय पर लिख लेने चाहिएँ कि "बचपन से ही मैंने अपनी इस मातृभूमि को अपने सम्पूर्ण अन्तरात्मा से प्रेम किया है। यौवनकाल में भी अपनी अनेक कमियों, कमजोरियों और आत्मिक दीनता तथा हीनता के रहते हुए भी मैंने उस प्यार को कम नहीं होने दिया है। मैंने उसकी प्रतिज्ञा को अपने हृदय में सदा ही जागृत बनाये

रखने का यत्न किया है और आज इस आयु में मृत्यु के द्वार पर खड़े हुए भी, मुझे वह प्रतिमा और भी अधिक स्पष्ट तथा सत्य प्रतीत हो रही है।"........."अपने देश के लिए काम करना मेरे लिए धर्म का ही एक अङ्ग है। वह मेरे जीवन के आदर्शवाद का कभी न अलग होनेवाला एक हिस्सा है। अपने देश की भावना में ही मैं ईश्वर का साक्षात्कार करता हूँ।"

भारत-माता की स्वतंत्रता के लिए सर्व-मेध-यज्ञ का अनुष्ठान कर सर्वस्व उसमें होम देनेवाले दिव्य राष्ट्रपुरुष देशबन्धु का जन्म ५ नवम्बर १८७० को कलकत्ता में एक वैष्णव परिवार में हुआ था। आपके पिता श्री भुवनमोहन दास कलकत्ता हाईकोर्ट के एक अटरनी थे। आपका प्रारंभिक शिक्षण भवानीपुर (कलकत्ता) के लण्डन मिशनरी सोसाइटी इन्स्टीट्यूट में हुआ था वहाँ से १८८६ में आपने मैट्रिक परीक्षा पास की। १८९० में प्रेसीडेन्सी कालेज से बी० ए० पास किया। ग्रेजुएट हो चुकने पर उस समय के सुशिक्षित युवकों में प्रचलित आइ० सी० एस० बनने की महत्वकांक्षा की पूर्ति के लिए आप भी इंग्लैण्ड चले गए और वहां जाकर आइ० सी० एस० की परीक्षा पास करने का यत्न किया। परन्तु उसमें आप सफल नहीं हुए। इस असफलता का एक कारण लन्दन में राजनैतिक कार्यों में भाग लेते रहना भी कहा जाता है। जब आइ० सी० एस० की परीक्षा के लिए आप वहां पढ़ रहे थे, तभी स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी फिन्सबरी के निर्वाचन-क्षेत्र से ब्रिटिश पार्लमेण्ट की सदस्यता के लिए उम्मीदवार खड़े हुए और उनकी तरफ से जोश के साथ काम करनेवालों में आप भी एक थे। दादाभाई के चुनाव में भाग

लेने के अतिरिक्त भी भाषणों और लेखों द्वारा भारत के पक्ष में होने वाले आन्दोलनों में आप भाग लेते रहते थे। उन्हीं दिनों मैकलीन नामक एक सदस्य ने अपने एक भाषण में यह कह दिया था कि अंग्रेज़ों ने भारत को तलवार से जीता है और तलवार के ज़ोर से ही वे उसे क़ाबू में रख सकते हैं। उसकी इस उक्ति का विरोध करने के लिए लन्दन के भारतीयों ने सभाओं और लेखों द्वारा आन्दोलन किया। श्री चित्तरंजन ने भी उसमें आगे बढ़कर भाग लिया और उसके कारण प्रमुख अंग्रेज़ अधिकारियों की दृष्टि में आप चढ़ गए।

आइ० सी० एस० की परीक्षा में असफल होने से आपके संबन्धियों को स्वभावतः निराशा तो हुई, परन्तु वे निरुत्साहित नहीं हुए और उन्होंने आपको अपने आनुवंशिक पेशे क़ानून में पड़ने की सलाह दी। आपके पिता और दोनों चाचा, श्री कालीमोहन दास और दुर्गामोहन दास, तो कलकत्ता हाईकोर्ट के अटरनी थे ही, दादा श्री जगद्बन्धु दास राजशाही में सरकारी वकील थे। उक्त सलाह के अनुसार बैरिस्टरी की तैयारी आरम्भ की और १८९३ में लन्दन के इनर टेम्पल्स से बैरिस्टर-एट-लॉ होकर भारत लौट आये।

भारत आकर आपने कलकत्ता हाईकोर्ट में वकालत शुरु की, परन्तु अनुभवी बैरिस्टरों के मुक़ाबिले में सफलता न मिली और इसी कारण कुछ समय तक कलकत्ता से बाहर प्रैक्टिस करना उचित समझा। १८९७ में आपका विवाह आसाम की बिजनी स्टेट के दीवान श्री वरदाकान्त हालदार की सुशिक्षिता कन्या श्रीमती वासन्तीदेवी के साथ हुआ।

१९०६ में आपके पिता के एक आकस्मिक आर्थिक संकट में फंस जाने के कारण उन्हें तथा आपको सम्मिलित रूप से हाईकोर्ट में अपने को दिवालिया घोषित किये जाने का प्रार्थना पत्र देना पड़ा। आप चाहते तो पिता का ऋण अपने सिर लेने से बच सकते थे, परन्तु आपने न केवल उस समय ऐसा नहीं किया, बल्कि बाद को समर्थ हो जाने पर जिन लोगों का जो कुछ देना था वह कौड़ी-कौड़ी चुका दिया और १९१३ में हाईकोर्ट से अपना दिवालियापन रद्द करवा दिया, यद्यपि क़ानून की दृष्टि से आपके एक बार दिवालिया हो चुकने पर आपके पावनेदार आपसे अपने पावने का किसी भी प्रकार का तक़ाज़ा नहीं कर सकते थे। इस घटना से आपकी ख्याति बहुत बढ़ गई। हाईकोर्ट के जजों तक ने उस समय आपकी ईमानदारी की प्रशंसा की थी।

१९०७-८ में बंग-भंग के कारण स्वदेशी और राष्ट्रीयता की जो प्रचण्ड बाढ़ आई थी, उसमें श्री चित्तरंजन दास ने भी बड़ा भाग लिया था। आपने श्री अरविन्द घोष आदि कई मित्रों के साथ मिलकर 'वन्देमारतम्' नामक एक पत्र अंग्रेज़ी भाषा में निकाला। इस पत्र में श्री अरविन्द ने राजनीति को आध्यात्मिकता का रंग देते हुए 'न्यू पाथ' (नया मार्ग) नामसे जो लेख-माला लिखी थी, उसके कारण उसकी लोकप्रियता बहुत बढ़ गई थी। 'वन्देमातरम्' की ही नीति 'संध्या' और 'युगान्तर' नामक दो पत्र बंगला में क्रमशः श्री ब्रह्मबान्धव उपाध्याय और स्वर्गीय स्वामी विवेकानन्द के भाई डा० भूपेन्द्रनाथ दत्त निकाला करते थे। तीनों पत्रों की उन दिनों बंगाल में धूम थी। उनके प्रभाव को कम करने के लिए सरकार ने तीनों पत्रों के सम्पादकों पर

राजद्रोह के मुक़दमे चलाये। उन्हीं दिनों, ३० अप्रैल १९०८ को, मुजफ्फरपुर का प्रसिद्ध बम-काण्ड हुआ। खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नामक दो बंगाली युवकों ने वहां के ज़िला जज किंग्सफ़ोर्ड के भ्रममें प्रिंगल केनेडी नामक युरोपियन की गाड़ी पर बम फेंका, जिससे उनकी पत्नी और पुत्र मारे गये। किंग्सफ़ोर्ड १९०७ में कलकत्ता का चीफ़ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट था और, उसने वहां उस वर्ष बंग-भंग विरोधी आन्दोलन में भाग लेनेवाले अनेक युवकों को कठोर सज़ायें दी थीं। युवक खुदीराम और प्रफुल्ल इसीका उससे बदला लेना चाहते थे। इस बम-काण्ड से बंगाल सरकार विशेष चौकन्नी हो गई। स्थान-स्थान पर तलाशियां होने लगीं। ३ मई की रात को श्री अरविन्द आदि अनेक युवक एक साथ पकड़ लिये गए। उन्हींमें से श्री अरविन्द सहित ३६ व्यक्तियों पर माणिकतल्ला षडयन्त्र केस चलाया गया। श्री अरविन्द की सम्मति से उस मुक़दमे में श्री चित्तरंजन को सफ़ाई का वकील बनाया गया। वह मुक़दमा अलीपुर के मजिस्ट्रेट और सेशन की अदालतों में एक वर्ष से अधिक समय तक चलता रहा। श्री चित्तरंजन ने समय और धन की भारी क्षति उठाकर भी उसकी बड़ी योग्यता से पैरवी की। श्री ब्रह्मबान्धव और श्री भूपेन्द्रनाथ के मुक़दमों से उनकी ख्याति हो ही चुकी थी। उस मुक़दमे की सफलता ने उनकी कीर्ति को चार चांद और लगा दिये। उसके बाद आपके पास इतना काम आने लगा कि बहुत सा काम अस्वीकार कर देना पड़ता था। अपने पेशे में आपकी इस सफलता का बहुत कुछ श्रेय आपकी कानूनी योग्यता के अतिरिक्त ईमानदारी, एकाग्रता, और परिश्रम को भी है। जिस मामले

को आप हाथ में लेते थे, उसकी सफलता के लिए तन-मन एक कर देते थे। कभी कभी तो किसी-किसी कानूनी पाइण्ट पर विचार करते हुए आप योगी की भांति सर्वथा तन्मय हो जाते थे। केवल धन के लिए आप कभी किसी की पैरवी नहीं करते थे। अरविन्द के मुक़द्दमे के बाद भी अनेकों राजनैतिक मुकदमों की पैरवी न केवल बिना फ़ीस लिये की, वरन् बहुतों में तो अपने पास से व्यय भी किया। यूरोपियन महायुद्ध के दिनों बंगाल में जो हज़ारों नवयुवक इण्डिया डिफेन्स एक्ट (भारत रक्षा कानून) के मातहत क़ैद अथवा नज़र-बन्द कर दिये गये थे, उनमें से सैकड़ों की पैरवी आपने ही की थी। १६२० के अन्त में जब आपने वकालत छोड़ी, तब आपकी मासिक आय आध लाख से ऊपर पहुँच चुकी थी।

देशबन्धु दास केवल वकील और राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, किन्तु बंग भाषा के कवि और कहानी-लेखक भी थे। आपकी कृतियां 'नारायण' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हुआ करती थीं। आपकी कविताओं के संग्रह 'मालंच', 'माला' और 'सागर-संगीत' आदि नामों से ग्रन्थ-रूप में भी प्रकाशित हो चुके हैं।

१६१७ में कलकत्ता में जो बंगाल प्रान्तिक राजनैतिक कांफ्रेंस हुई, उसके आप सभापति बनाये गये। उस समय आपने जो भाषण दिया था, वह भारत के राजनैतिक इतिहास में सदा अमर रहेगा। उस भाषण से आपके राजनैतिक विचारों का पूरा-पूरा परिचय मिलता है। उसमें आपने बतलाया था कि हमें सबसे पहले पाश्चात्य शिक्षा और सभ्यता के प्रभाव से मुक्त होकर शुद्ध भारतीय बनने की, अपने आपको

पहचानने की, ग्रामों में रहनेवाली वास्तविक भारतीय जनता के सेवक बनने की, शहरों को छोड़कर ग्रामों की ओर ध्यान देने की और ग्रामीणों की दरिद्रता दूर करने की आवश्यकता है। आज भारत में चारों तरफ ग्राम-सुधार की आवाज़ सुन पड़ती है। देशबन्धुदास ने आज से १६ वर्ष पूर्व इस आवश्यकता को अनुभव किया था और उन्हें यह अनुभव यूरोपियन महायुद्ध के समय पूर्व बंगाल के ग्राम-ग्राम में नजरबन्द युवकों के परिवारों की दुर्दशा देखकर हुआ था। उस दुर्दशा का भी उन्होंने अपने उस व्याख्यान में विस्तारपूर्वक वर्णन किया था। उनके भावुक हृदय पर उसका इतना प्रभाव पड़ा था कि उससे आगे का उनका सारा जीवन और उनके जीवन का सब कुछ देश-सेवा के अर्पण हो गया।

ग्राम-सेवा के लिए ही आपने १९२२-२३ में अपने पास से तथा बंगाल के अन्य धनिकों से बहुत-सी धन-राशि एकत्र करके "देशबन्धु-पल्ली-संस्कार-समिति" नामक संस्था स्थापित की थी। बंगला में पल्ली ग्राम को कहते हैं। समिति की तरफ से अनेक प्रचारक गांव-गांव घूमकर मैजिक लैण्टर्न आदि की सहायता से ग्रामीण जनता में राष्ट्रीय विचारों का प्रचार करने के अतिरिक्त ग्रामों की स्वास्थ्य-सफ़ाई, निरक्षरता और आर्थिक दशा आदि सुधारने का यत्न करते रहते थे। आप के देहान्त के बाद भी यह समिति बङ्गाल में काम कर रही है।

महायुद्ध के बाद १९१८ में जब इस देश को माण्ट-फोर्ड-शासन-सुधार योजना देने की बात चली, तब हाईकोर्ट की छुट्टियों में पूर्व बंगाल के ज़िले-ज़िले में घूमकर उसके विरुद्ध प्रचार किया। १९१९ के

मार्च-अप्रेल में गान्धीजी ने रौलट एक्ट के विरुद्ध जो सत्याग्रह आरम्भ किया था, उसमें योग देनेवालों में भी आप अग्रणी थे। पंजाब में मार्शल लॉ के अभियुक्त ला० हरकिशनलाल आदि अनेक नेताओं की पैरवी करने और उसके बाद फ़ौजी-शासन की काली करतूतों की जांच करने के लिए कांग्रेस द्वारा नियुक्त कमेटी की रिपोर्ट तैयार करने में आपने निजी काम का बहुत भारी हर्ज करके भी ४-५ मास का समय लगाया था।

पंजाब और खिलाफत के प्रकरण को लेकर गान्धीजी ने असहयोग आन्दोलन उठाया। उस पर विचार करने के लिए कलकत्ता में कांग्रेस का विशेषाधिवेशन सितम्बर १९२० में हुआ। नवम्बर-दिसम्बर में माण्टफोर्ड-शासन-विधान के अनुसार व्यवस्थापिका सभाओं का चुनाव होनेवाला था। लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में उनकी राजनीति के अनुयायी अनेक कांग्रेसी नेता उस चुनाव को संगठित रूप से लड़ने की तैयारियां कर रहे थे। दास बाबू भी उनमें से एक थे। बंगाल और महाराष्ट्र में इन तैयारियों का विशेष ज़ोर था। गान्धीजी के असहयोग कार्यक्रम में व्यवस्थापिका सभाओं का बायकाट भी शामिल था। इसलिए इस विशेषाधिवेशन में आपने असहयोग-प्रस्ताव का विरोध किया। परन्तु दिसम्बर में ही नागपुर कांग्रेस में गान्धीजी के साथ देर तक विचार-विनिमय के बाद आप उनके साथ सहमत हो गए। आपके ही अनुरोध पर गान्धीजी ने अपने असहयोग कार्यक्रम में सरकारी स्कूल कालेजों के बायकाट और सरकारी नौकरियों के परित्याग आदि की कई बातें सम्मिलित कीं। नागपुर कांग्रेस में जब देशबन्धु दास

ने गान्धीजी के प्रस्ताव का अनुमोदन किया, तब बहुत-से लोगों को विश्वास न था कि आपने हृदय से उसका समर्थन किया है। ऐसे लोगों का सन्देह कुछ ही समय बाद दूर हो गया, जब उन्होंने देखा कि आपने प्रचण्ड आंधी के समान तीव्र वेग से बंगाल के नगर-नगर और ग्राम-ग्राम में घूमकर असहयोग की धूम मचा दी। स्कूल कालेज खाली होने लगे, वकीलों ने वकालत छोड़ दी, और स्थान-स्थान पर विदेशी वस्त्रों की होलियां होने लगीं। अप्रैल १९२१ में आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी ने बेजवाडा में बैठक करके निश्चय किया कि ३० जून से पहले-पहले तिलक स्वराज्य फण्ड में एक करोड़ रुपया एकत्र हो जाना चाहिए, एक करोड़ राष्ट्रीय महासभा के सभासद बनाये जाने चाहिएँ और कम-से-कम २० लाख चरखे गांव-गांव में चालू हो जाने चाहिएँ। इस निश्चय को नियत समय के अन्दर पूर्ण कर देने में गान्धीजी के बाद सब से अधिक काम देशबन्धु दास ने किया था।

१७ नवम्बर १९२१ को वर्तमान ब्रिटिश सम्राट् प्रिन्स आफ वेल्स की हैसियत से इस देश में आये। कांग्रेस ने उनके स्वागत का बायकाट करने का निश्चय किया। उस दिन सारे देश में पूर्ण हड़ताल रही। कांग्रेस और खिलाफत स्वयंसेवक संगठनों को सरकार ने गैर-कानूनी घोषित कर दिया। सरकार की इस घोषणा की चुनौती पर सहस्रों युवक स्वयंसेवक दलों में भरती हो-होकर गिरफ्तार होने लगे। इसी सिलसिले में आपकी वीरपत्नी वासन्तीदेवी, एक-मात्र पुत्र स्व० चिररंजन और बहिन श्रीमती उर्मिलादेवी भी गिरफ्तार हुईं। परन्तु वे शीघ्र ही छोड़ दी गईं। २४ दिसम्बर को प्रिन्स आफ वेल्स कलकत्ता पहुँचनेवाले

थे। आप उनके स्वागत का पूर्ण बायकाट संगठित कर रहे थे। दिसम्बर के अन्त में अहमदाबाद में होनेवाली कांग्रेस के आप सभापति चुने गये थे कि १० दिसम्बर की रात्रि को गिरफ्तार कर लिये गए। छः मास की सजा हुई।

देशबन्धु दास तो गिरफ्तार हो गये परन्तु उनकी जलाई हुई आग शान्त न हुई। प्रिन्स आफ वेल्स का स्वागत निर्विघ्न हो जाने का तब भी कोई लक्षण प्रतीत न हुआ। तब वायसराय लार्ड रीडिङ्ग ने उस समय के भारत सरकार के लॉ मैम्बर सर तेजबहादुर सप्रू, पं० मालवीय, पं० हृदयनाथ कुंजरू, सेठ जमनादास द्वारकादास और डा० एनी बेसेन्ट आदि को बीच में डालकर देशबन्धु दास से सुलह की बातचीत चलाई। कहा जाता है कि देशबन्धु दास तो सर सप्रू के दबाव में आकर सुलह के लिए तैयार हो गये थे, परन्तु गांधीजी तार पर तार जाने पर भी बिना सब राजनैतिक कैदियों को छुड़ाये वायसराय से बात करने को तैयार नहीं हुए। इसलिए वह सन्धि-चर्चा बीच में ही रह गई।

जून १९२२ में जेल से छूटने पर आपका स्वास्थ्य खराब हो चुका था। तब भी एक मास विश्राम करने के बाद आपके राजनैतिक दौरे शुरू होगये। दिसम्बर १९२२ में देशवासियों ने आपको गया कांग्रेस का सभापति बनाकर आपको उच्चतम राष्ट्रीय सम्मान प्रदान किया। परन्तु उस अधिवेशन के बाद ही आपने कांग्रेस के कार्यक्रम से मतभेद होने के कारण सभापति-पद से त्याग-पत्र दे दिया और पं० मोतीलाल नेहरू के साथ मिलकर कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज्य-दल का संगठन

किया। स्वराज्य-दल संगठित होने पर कौंसिल-प्रवेश और कौंसिल बायकाट को लेकर कांग्रेसवादियों में भारी विवाद खड़ा हो गया। १६२३ में सितम्बर में दिल्ली में कांग्रेस का विशेषाधिवेशन हुआ और उस विवाद का अन्त हुआ। उसमें स्वराज्य दल को कौंसिल प्रवेश की अनुमति दी गई। नवम्बर १६२३ में कौंसिलों का चुनाव हुआ। स्वराज्य दल ने उसमें संगठित होकर भाग लिया और बहुत बड़ी सफलता प्राप्त की। बंगाल और मध्यप्रान्त की कौंसिलों में तो दल का अत्यधिक बहुमत था। भारतवर्ष में राजनैतिक आधार पर संगठित पार्लमेण्टरी-पार्टी-प्रणाली का आरम्भ यहीं से हुआ। बंगाल कौंसिल में स्वराज्य-दल ने आपके नेतृत्व में १६२४ में दो बार मार्च तथा अगस्त में और सन् १६२५ में एक बार सरकारी मन्त्री मण्डल में अविश्वास का प्रस्ताव पास कराया। पहली बार वह प्रस्ताव पास हो चुकने पर गवर्नर लार्ड लिटन ने जून में उसे पुनर्विचार के लिए कौंसिल में भेजा, परन्तु कानूनी महारथी देशबन्धु दास ने हाईकोर्ट में दरख्वास्त दिलवाई कि वह कौंसिल के बहुमत का अपमान है, अतः प्रेसिडेन्ट को कौंसिल में गवर्नर की आज्ञा का पालन न करने दिया जाय। उसमें आप सफल भी हुए। उसके बाद भारत सरकार ने क़ानून में ही ऐसा सुधार कर हाईकोर्टों का कौंसिलों की कार्रवाई में किसी भी प्रकार की दस्तन्दाज़ी करना बन्द करा दिया। तीसरी बार अविश्वास का प्रस्ताव पेश होने के समय मार्च १६२५ में आप रोगी थे। लार्ड लिटन स्वयं कौंसिल के सदस्यों पर वैयक्तिक प्रभाव डालने के लिए कौंसिल-भवन में उपस्थित हुए थे। यह मालूम होते ही आप

भी चारपाई पर लेटे हुए कौंसिल-भवन पहुंचे। परिणाम यह हुआ कि जो मेम्बर गवर्नर की उपस्थिति के कारण डांवाडोल हो रहे थे, उनको भी हिम्मत बंध गई और ६३ विरुद्ध ६६ के बहुमत से सरकार को पराजित होना पड़ा।

जिन दिनों में आपने स्वराज्य-दल को संगठित किया था, उन्हीं दिनों में हिन्दू-मुसलिम झगड़ों ने भी बड़ा उग्र रूप धारण कर लिया था। विशेषतः पंजाब और बंगाल में अपनी बहुसंख्या बतलाकर मुसलमानों ने सरकारी नौकरियों तथा कौंसिलों आदि में अपनी आबादी के अनुपात से ही स्थान पाने का आन्दोलन तीव्र रूप में खड़ाकर दिया था। देश के राष्ट्रीय नेता उस झगड़े को सुलझाना चाहते थे परन्तु वह सुलझने में न आता था। आपने कोकनाडा की कांग्रेस में अपनी तरफ से एक हिंदू-मुसलिम-पैक्ट पेश करके, हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों को ही आश्चर्य में डाल दिया। उस पैक्ट में आपने निःसंकोच भाव से मुसलमानों को उनकी आबादी के अनुसार नौकरियों आदि में प्रतिनिधित्व दिया था। उस पैक्ट पर यद्यपि कभी अमल नहीं हो सका, तथापि उससे आपके राष्ट्रीय दृष्टिकोण का पता चलता है। प्रत्येक सार्वजनिक मामले में आपकी विचार-परम्परा उसी मार्ग पर चला करती थी।

१६२३ में ही आपने स्वराज्य-दल के मुखपत्र के रूप में कलकत्ता से प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक 'फारवर्ड' निकालना प्रारम्भ किया था। वह पत्र देखते ही देखते इतना लोकप्रिय हो गया था कि उसने भारतीय पत्रों के इतिहास में 'रिकार्ड बीट' कर दिया था।

१६२४ के आरम्भ में आपने कलकत्ता कारपोरेशन के चुनाव की लड़ाई स्वराज्य-दल की ओर से लड़ी और मतदाताओं के सम्मुख 'दरिद्रनारायण की सेवा' का कार्यक्रम उपस्थित किया। कारपोरेशन के ७५ में से ५५ सभासद् स्वराजिस्ट चुने गये और आप कलकत्ता के प्रथम मेयर निर्वाचित हुए। कारपोरेशन में रहकर आप 'दरिद्रनारायण की सेवा' का अपना कार्यक्रम पूरा नहीं कर सके। उसका कारण यह था कि आपके बहुत से साथी बंगाल आर्डिनेन्स में गिरफ्तार कर लिये गये थे। आपके स्वास्थ्य ने भी आपका साथ नहीं दिया। आपके कार्यक्रम की आंशिक पूर्ति आपके पीछे आपके अनुयायियों ने की।

१६२५ के आरम्भ में आपने ज़िला हुगली के प्रसिद्ध मन्दिर तारकेश्वर का मामला अपने हाथ में लिया। मन्दिर का महन्त सतीशगिरी मन्दिर की जायदाद की कुव्यवस्था और अपने अनाचारपूर्ण जीवन के कारण हिन्दुओं के लिए बहुत कष्ट का कारण बना हुआ था। उसके विरुद्ध असन्तोष तो कई महीनों से फैल रहा था। आपने संगठित रूप से महन्त के अहाते में स्वयंसेवकों का प्रवेश-रूपी (मदाख़लत-बेजा) सत्याग्रह करवाया। सैकड़ों स्वयंसेवक जेल गये। देशबन्धु का पुत्र चिररंजन भी उन स्वयंसेवकों में था। अन्त को महन्त को झुकना पड़ा और उसनें मन्दिर की सब सम्पत्ति एक ट्रस्ट के आधीन करके समझौता कर लिया।

१६२३ के आरम्भ से निरन्तर ढाई वर्ष तक अपका जीवन इतना कार्य व्यग्र और संघर्ष में बीता कि मन और शरीर को बिलकुल भी आराम नहीं मिला। उसीका परिणाम यह हुआ कि शरीर अत्यन्त निर्बल हो

गया। मई १६२५ के मध्य में आपको सब काम छोड़कर पूर्ण विश्राम के लिए दारजीलिंग चले जाना पड़ा। वहां स्वास्थ्य में कुछ सुधार दिखाई भी दिया, ।परन्तु वह भ्रम मात्र था। १६ जून की शाम को उसी रोग से आपका देहान्त हो गया। दारजीलिंग से आपका शव कलकत्ता लाया गया। कलकत्ता में उस दिन कहीं पैर रखने को भी जगह नहीं थी। केवड़ाघाट पर, जहां आपको चिता पर चिरनिद्रा में सुलाया गया था, आपका स्मारक सुन्दर समाधि के रूप में खड़ा किया गया है और जहां आप निवास करते थे, वहां 'चित्तरंजन-सेवा-सदन' के नाम से एक सुन्दर विशाल और 'अपटूडेट' अस्पताल आपके सेवाभाव और त्याग की मूर्त-साक्षी के रूप में बनाया गया है। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि पहले नेता बंगाल के नाम से प्रसिद्ध थे, किंतु अपने नाम से बंगाल को प्रसिद्ध करनेवाले पहले नेता आप ही हुए हैं। 'देशबन्धु का बंगाल' आपके व्यक्तित्व के महत्व का पूर्ण परिचय देनेवाले अत्यन्त भावपूर्ण शब्द हैं, जिनका उल्लेख कांग्रेस के इतिहास में अभिमान के साथ सदा ही किया जाता रहेगा। आपके देहावसान पर गान्धीजी ने ठीक ही कहा था कि "मनुष्यो में से एक देव जाता रहा और बंगाल आज विधवा के समान हो गया है।"

अबुल कलाम आज़ाद

[जन्म, मक्का —१८८८]

विशेष अधिवेशन, दिल्ली सितम्बर १९२३

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का व्यक्तित्व ही नहीं किन्तु जीवन भी अन्तर्राष्ट्रीय है। आपकी योग्यता और विद्वत्ता की ख्याति भारतीय राष्ट्र की सीमा पार कर समस्त मुस्लिम राष्ट्रों में फैली हुई है। आपका जन्म १८८८ में मक्का में हुआ था। बचपन में आप अरब में रहे थे और प्रारम्भिक धार्मिक शिक्षा आपकी मिश्र की राजधानी कैरो की यूनिवरसिटी अल अजहर में हुई थी। आपने १४--१५ वर्ष की आयु में फारसी तथा अरबी भाषाओं, मुसलमानी धर्म तथा दर्शन शास्त्र की इतनी शिक्षा प्राप्त कर ली थी, जितनी कि क़दीम मदरसों में साधारण विद्यार्थी २५--३० वर्षों में प्राप्त करते है। आपके इस असाधारण व्यक्तित्व और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन का सब श्रेय आपके स्वनामधन्य पिता मौलाना मुहम्मद खैरुलउद्दीन साहब को है। वे १८५७ के स्वतंत्रता-युद्ध के बाद विदेशों में चले गये थे और तब उन्होने हज शरीफ़, ईराक, टर्की, मिश्र और शाम आदि की सैर की थी। फिर वह कुछ दिन बम्बई आकर रहे थे और वहां से कलकत्ता आकर कल-

कत्ता में ही बस गये थे। वह अपने समय के बहुत बड़े आलम और सूफ़ी थे। बम्बई, काठियावाड़, कच्छ, गुजरात, कोंकण आदि में हज़ारों उन के मुरीद और मौतक़िद थे। कलकत्ता और बम्बई में भी उनको मानने वालों की बहुत बड़ी संख्या थी। लङ्का, जावा, मिश्र शाम, ईराक़ आदि विदेशों में भी उनके मुरीद फैले हुए थे। अरबी में उन्होंने इस्लाम पर बहुत-सी पुस्तकें लिखी थीं, जो अब भी प्रमाण मानी जाती हैं और जो मिश्र में छपकर प्रकाशित हुई हैं। १६०८ में उनका देहान्त हुआ था। आपके पितामह रुकनुल मदरसीन मौलाना मुहम्मद मुनव्वरुलदीन अकबर शाहदानी के उस्ताद और पीर थे। अकबर के समय के दिल्ली के सुप्रसिद्ध विद्वान शेख़ जमालुद्दीन इसी ख़ानदान के बुज़ुर्ग थे। इस प्रकार आपका ख़ानदान इस देश के मुसलमान उलमाओं के ख़ानदान में बहुत पुराना है। आपने उस ख़ानदान की प्रतिष्ठा को और अधिक उन्नत करके व्यापक बनाया है। आपका ख़ानदान पुराने ढर्रे का था। इस लिए पुराने तरीक़ों पर ही आपकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ और पहले-पहल आपको इस्लाम की धार्मिक शिक्षा दी गई। बचपन में ही आप को ईराक़, मिश्र, शाम और टर्की में घूमने, वहांके उलमाओं की संगति में रहकर विशेष शिक्षा प्राप्त करने और साथ में नई दुनिया की नई रोशनी देखने का भी मौक़ा प्राप्त हो गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि आपके विचारों में परिवर्तन हो गया। आपने यह अनुभव किया कि पुरानी शिक्षा और पुराने साहित्य की दुनिया का दायरा बहुत तंग है। आपने देखा कि नई शिक्षा और नए साहित्य ने एक नई दुनिया पैदा करदी है। यूरोप के विज्ञान और साहित्य की ओर

आपका झुकाव हुआ। उसको पढ़ने की आपमें तीव्र इच्छा पैदा हुई। लेकिन परिवार की परम्परा, समाज की परिपाटी का और शिक्षा की रूढ़ि के बन्धनों के कारण स्वतंत्र रूप से उस इच्छा की पूर्ति करना आपके लिए संभव नहीं था। उनसे मुक्त होने का निश्चय करते ही आपकी काया पलट होगई। पुराने खानदानी अन्धकार के कोने में से निकलकर आपने एक दूसरे संसार में प्रवेश किया। बहुत थोड़े समय में आपने अंग्रेज़ी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

आपका सार्वजनिक जीवन १५ वर्ष की आयु से शुरु हो जाता है। उसी आयु में आपने कलकत्ता से एक मासिक-पत्र बड़ी शान के साथ निकालना शुरु किया था। लखनऊ के 'आलन्दो' और अमृतसर के 'वकील' में भी आप लेख लिखा करते थे। आपके लेख बहुत शौक के साथ पढ़े जाते थे और उनके कारण आपकी खूब प्रशंसा हुई।

१६०६ में आपके राजनैतिक विचारों में भी परिवर्तन हो गया। उस समय मुसलमान देश के राजनैतिक और सार्वजनिक जीवन से बिलकुल अलग थे। कांग्रेस में वे कोई हिस्सा नहीं लेते थे। जो थोड़े से मुसलमान कांग्रेस के साथ थे, उनको मुसलमानों का प्रतिनिधि नहीं माना जाता था। १८६१ में कांग्रेस का विरोध करते हुए सर सैयद अहमद खां ने जो भावना उनमें भर दी थी, वह उस समय भी वैसी बनी हुई थी। मुसलमानों में यह ख्याल कूट-कूट कर भर दिया गया था कि हिंदुस्तान में बहुमत हिंदुओं का है। देश की हुकूमत हिंदुस्तानियों के हाथों में जाने का मतलब यह होगा कि यहां हिंदू राज्य कायम हो जायगा। मुसलमानों की मुक्ति इसीमें है कि वे इसका विरोध करें और

सरकार परस्त बने रहें। उसी मतलब से मुसलिम-लीग भी कायम हो चुकी थी। उसके देहली के १९०८ के अधिवेशन में सैयद अमीर अली का यह पैग़ाम सुनाया गया था कि मुसलमानों के राजनैतिक आन्दोलन का ध्येय सरकार से नहीं किंतु हिंदुओं से अधिकार प्राप्त करना होना चाहिए। उनका मुक़ाबला हिंदुओं के साथ है, सरकार के साथ नहीं। आपने यह अनुभव किया कि मुसलमानों का यह रुख़ देश की उन्नति के लिए बाधक है, उसको बदलना चाहिए। उसी ध्येय से आपने १९१२ में कलकत्ता से 'अल हिलाल' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला और मुसलमानों की उस भावना के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। आपने पूरे जोरों के साथ यह आन्दोलन शुरू किया कि मुसलमानों का हित हिंदुओं के साथ मिलकर एक होने में है, उनको कांग्रेस में शामिल होना चाहिए और देश की आजादी को अपना आदर्श बनाना चाहिए। आपका वह पत्र यूरोपियन पत्रों के दरजे का पहला उर्दू पत्र था, जिसने उर्दू की पत्र-कला को एकाएक उन्नति के शिखर पर पहुंचा दिया था। आपकी भाषा और शैली में विचित्र आकर्षण था। सारे देश के मुसलमानों का ध्यान आपने तुरन्त अपनी ओर खींच लिया। बंगाल से उठी हुई आपकी आवाज पश्चिम में पेशावर और दक्षिण में राजकुमारी तक पहुंचने लगी। मुसलमानों की विचार-धारा के साथ-साथ उर्दू साहित्य की विचार-धारा भी बदल गई। आपकी उस शैली पर आज भी उर्दू को सच्चा गर्व है और इस समय के उर्दू लेखक भी उसके रंग-ढंग की नकल करने का यत्न करते हैं।

अलीगढ़ पार्टी और मुस्लिम-लीगवालों ने आपका सख़्त विरोध किया। यहां तक कि आपको क़त्ल करने की भी धमकियां दी गईं।

उसी समय मौलाना मुहम्मद अली ने कलकत्ता से 'कामरेड' निकाला था और वे अलीगढ़ पार्टी और मुस्लिम-लीग की भावना से ही प्रेरित होकर लिखा करते थे। 'अल हिलाल' के विरोध में उन्होंने भी कई लेख लिखे थे। लेकिन आप अपने मार्ग से विचलित नहीं हुए और आपकी आवाज दिन प्रति-दिन बुलन्द होती गई। समझदार मुसलमानो के दिमाग़ फिर गये, राजनैतिक आन्दोलन की नई लहरें पैदा हुईं और मुसलमानों में बिजली की तरह चारो ओर फैल गईं। मुस्लिम-लीग को १९१३ के लखनऊ के अधिवेशन में नियमावली बदलनी पड़ी और हिन्दुस्तान के लिए स्वायत्त शासन को अपना ध्येय बनाना पड़ा।

१९१४ में युरोप का युद्ध शुरू होने पर आप 'अल हिलाल' में पूरी आज़ादी के साथ अपने विचार प्रकट करने लगे थे। सरकार के लिए उस राजनैतिक-विचार-धारा को ही सहन करना संभव नहीं था, जिस को आपने अकेले ही खड़े होकर मुसलमानों में पैदा किया था; किन्तु युद्ध के सम्बन्ध में प्रकट किये जाने वाले आपके विचार तो सरकार के लिए एक दम ही असह्य हो गये। बंगाल सरकार ने पत्र के लेखों की जाच-पड़ताल के लिए एक विशेष ब्यूरो नियुक्त किया, किन्तु पत्र की नीति, शैली और विचार-धारा ऐसी थी कि उसका उस पर कुछ भी असर नहीं पड़ा। युद्ध की घटनाओं पर सरकार के दृष्टि कोण और नाराज़गी की ज़रा भी परवा न कर, निर्भीक हो, टीका-टिप्पणी करने वाला केवल एक आपका ही पत्र था। इलाहाबाद का सरकारी पत्र 'पायोनियर' आप पर बुरी तरह बौखला पड़ा। उसने मुख्य लेख लिखकर सरकार का ध्यान 'अल हिलाल की ओर आकर्षित किया। हाउस ऑफ़ कामन्स

तक में उसके बारे में सवाल पूछे गये। उस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि पत्र की ज़मानत ज़ब्त करके दस हज़ार की नई ज़मानत मांगी गई। पत्र बन्द हो गया।

आप चुप बैठने वाले नहीं थे। आपने 'अल बलाग' नामक दूसरा पत्र निकालना शुरू किया। कोई और उपाय न देख सरकार ने आप पर 'भारत-रक्षा-कानून' का वार किया। देहली, पंजाब, संयुक्त प्रान्त, मध्य प्रान्त और बम्बई आदि में आपका जाना-आना बन्द कर दिया गया। सिर्फ़ बंगाल और बिहार में आप पर रोक न थी। अप्रैल १९१६ में बंगाल-सरकार ने भी आपको बंगाल छोड़ देने का हुक्म दिया। तब आप राँची चले गये। चार मास बाद भारत-सरकार ने आपको वहाँ नज़रबन्द कर दिया। श्रीयुत मज़हरुल हक़ ने कौंसिल में जब आपके नज़रबन्द किये जाने का कारण पूछा तब सरकार ने जवाब दिया कि बंगाल की विप्लवी संस्थाओं से आपका सम्बन्ध है। नज़रबन्द किये जाने पर भी आपका पैदा किया हुआ आन्दोलन मुसलमानों में पूरी दृढ़ता के साथ फैलता चला गया। १९१८ में मुसलमानों की एक बड़ी संख्या कांग्रेस में शामिल हो गई और मुस्लिम-लीग के प्लेटफ़ार्म पर से भी कांग्रेस की-सी बातें होने लगीं।

चार वर्षों तक आप नज़रबन्द रहे। जनवरी १९२० में आप रिहा किये गये। उसके बाद असहयोग का आन्दोलन शुरू हुआ। असहयोग के कार्यक्रम में गांधीजी का पूरा साथ देने वाले आप पहले मुसलमान थे। २२ मार्च १९२० को देहली में नेताओं का पहला सम्मेलन उस कार्यक्रम पर विचार करने के लिए हुआ। उसमें केवल चार नेता

सम्मिलित हुए थे—गांधीजी, लाला लाजपतराय, हकीम अजमल खाँ और मालाना आज़ाद। इस प्रकार असहयोग-आन्दोलन के जन्म-दाताओं में से आप एक हैं और इसमें सन्देह नहीं कि उसको सफल बनाने का आपने अथक प्रयत्न किया है और उसके लिए त्याग, तपस्या तथा कष्ट-सहन के मार्ग का भी अवलम्बन किया है।

१९२१ के अन्त में युवराज के स्वागत के बहिष्कार को असफल बनाने के लिए सरकार ने बंगाल से ही दमन का श्रीगणेश किया था। क्रिमिनल लॉ एमैण्डमैण्ट एक्ट के अनुसार सबसे पहले बंगाल में ही स्वयंसेवक दलों और कांग्रेस कमेटियों को गैरकानूनी घोषित किया गया था। तब १० दिसम्बर को देशबन्धु दास के साथ आप गिरफ़्तार किये गये थे। देशबन्धु को छः मास और आपको एक वर्ष की सज़ा हुई थी। जनवरी १९२३ में जब आप रिहा हुए, कांग्रेस में परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी दो दल बन चुके थे। आपने रिहा होते ही दोनों में समझौता कराने का यत्न किया। कई महीनों के निरन्तर यत्न के बाद उसमें आपको सफलता प्राप्त हुई। मार्च १९२३ में इलाहाबाद में महा-समिति की बैठक में आपका समझौता मान लिया गया और नागपुर में महा-समिति की बैठक होकर कांग्रेस का विशेष-अधिवेशन करने का निश्चय हुआ। सितम्बर १९२३ में आपके ही सभापतित्व में वह अधिवेशन हुआ। यूनान के विरुद्ध टर्की की फतह होकर कमाल-पाशा खिलाफ़त का उस समय ख़ात्मा कर चुके थे। आपने अपने भाषण में टर्की को उसकी उस फतह के लिए बधाई दी और खिलाफत-आन्दोलन पर राष्ट्रीय दृष्टि से विचार करते हुए बताया कि मुस्लिम

देशों पर उसका कैसा प्रभाव पड़ा है ! आपने कहा था कि "पिछले चार वर्षों में मैंने खिलाफत की मांगों को मुसलमान की अपेक्षा भारतीय की दृष्टि से ही देखा है। महात्मा गांधी ने खिलाफत के प्रश्न को परिपुष्ट करके देश की बहुत भारी सेवा की है।" गांधीजी की दूरदर्शिता, राजनीतिज्ञता और राष्ट्र सेवा का गर्व के साथ वर्णन करते हुए आपने असहयोग को सार्वभौम सचाई बताया था और कहा था कि कोई भी विजित जाति विजेता के साथ सहयोग करके अपने राजनैतिक अधिकारों को प्राप्त नहीं कर सकती। अपने इस कथन के समर्थन में आपने बहुत ही सुन्दर ऐतिहासिक और दार्शनिक विवेचन किया था। हिन्दू-मुस्लिम-विद्वेष की आग भी देश में सुलग चुकी थी। उसका विस्तृत विवेचन करते हुए आपने कहा था कि "सारी बातों पर विचार करने के बाद मैं निस्संकोच भाव से यह घोषणा करता हूं कि न तो देश को हिन्दू-संगठन की आवश्यकता है और न मुस्लिम-संगठन की ही। आज केवल एक संगठन की आवश्यकता है और वह एकमात्र भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का संगठन है।" मसजिदों, गाजों-बाजों, पीपल की टहनियों और जलूसों की सब बातों को तय करके राष्ट्रीय संगठन को दृढ़ बनाने पर आपने जोर दिया था और परिवर्तनवादियों तथा अपरिवर्तनवादियों से भी आपने एक होकर कार्य करने की अपील की थी। आपके ही व्यक्तित्व और प्रयत्न का यह परिणाम हुआ कि कांग्रेस में फैली हुई फूट मिट गई और दोनों दलों ने अपने विचार, विश्वास और तरीके से कांग्रेस का काम करना शुरू कर दिया। शुद्धि और संगठन तथा तंजीम और तबलीग से देश में साम्प्रदायिकता की

गंदगी के फैलते रहने पर भी आप राष्ट्रीयता की चट्टान पर दृढ़ रहे और अभागे देश की फिरे-दिमाग़ की दोनों महान् जातियों को एक करने में लगे रहे। मुसलमानों को मसजिदों तक में खड़े होकर आपने यह समझाने का निरन्तर यत्न किया कि मसजिद की पवित्रता और नमाज के ध्यान में गाजों-बाजों से कभी कुछ भी खलल पैदा नहीं हो सकता। आपका धर्म आपके राष्ट्र का विरोधी कभी नहीं हुआ और आपकी आस्तिकता आपको राष्ट्रीयता से कभी दूर नहीं ले जासकी। आपमें दोनों का अपूर्व मिश्रण है।

१६२४ में आप देहली में आगये थे। यहां ही अपना प्रेस और पुस्तकालय भी ले आये थे। कुछ वर्षों के बाद आप फिर कलकत्ता चले गये और तब से वहां ही स्थिर तौर पर रहने लग गये हैं। इस बीच में हिन्दू-मुसलिम-ऐक्य या समझौते के लिए नेहरू रिपोर्ट या इस प्रकार के कितने ही यत्न हुए, उन सबका आपने स्वागत किया और उनको सफल बनाने का आपने यत्न भी किया। देश में एकता स्थापित हो और स्वतन्त्रता के लिए सब देशवासी मिल कर यत्न करें—इसके लिए आप सदा ही लालायित रहते हैं।

१६३० और १६३१-३२ के आन्दोलनों से आप अलग नहीं रह सकते थे। १६३० में गैरकानूनी कार्य समिति के सदस्य और १६३२ के मार्च में स्थानापन्न राष्ट्रपति होने से आप गिरफ्तार किये गये थे। वैसे भी आप कांग्रेस की महा-समिति के प्रायः १६२० से ही समासद् हैं और उसके कार्यों, मन्त्रणाओं तथा विचारों में पूरा भाग लेते रहे हैं। कांग्रेस के प्रधान संचालकों में आपका विशेष स्थान है। आप प्रभाव-

शाली वक्ता, सुयोग्य लेखक और गम्भीर विचारक हैं। कांग्रेस की विषय-निर्वाचन-समिति और खुले अधिवेशन में भी आपके भाषण बहुत ध्यान से सुने जाते हैं। महत्वपूर्ण और विवादास्पद विषयों पर कांग्रेस के संचालकों के दृष्टिकोण को उपस्थित करने वाले कुछ प्रमुख व्यक्तियों में आप एक हैं।

इस्लामिक फ़िलासोफ़ी और धर्मशास्त्र पर आप प्रमाण माने जाते हैं। अपने पिता के समान आपने भी इन विषयों पर अनेक प्रमाणिक ग्रन्थ लिखे हैं, और उनकी ख्याति सभी मुस्लिम देशों में एक समान है। आपकी विद्वत्ता और योग्यता की मिश्र, टर्की, इराक़ और अरब तक में धाक जमी हुई है। आपके मुरीद भी सब देशों में चारों ओर फैले हुए हैं। कलकत्ता में ईद की सार्वजनिक नमाज़ आप ही पढ़ाते हैं। आपके राष्ट्रीय विचारों से बिगड़ कर कुछ लोगों ने आप के इस एकाधिकार के विरुद्ध बग़ावत करने का यत्न किया था। पर, वे सफल न हो सके थे। आपके विचार बहुत उदार, उन्नत और प्रगतिगामी हैं। आपके सभी लेखों में आपके स्वतन्त्र व्यक्तित्व की छाप लगी रहती है। आपका कुरान-शरीफ़ का अनुवाद सबसे अधिक सरल, सुन्दर और प्रामाणिक है। उसमें जिस उदार और विशाल दृष्टि से विचार किया गया है, उसका परिचय देने के लिए उसमें से एक उद्धरण को यहां देना आवश्यक प्रतीत होता है। आपने लिखा है कि "कुरान ने न केवल उन सब धर्मों के संस्थापकों को सच्चा माना, जिनके मानने वाले उस समय उसके सामने मौजूद थे, बल्कि साफ़ शब्दों में कह दिया कि मुझसे पहले जितने भी रसूल और धर्म प्रवर्तक हुए हैं,

मैं उन सबको सच मानता हूँ और उनमें से किसी एक के न मानने को भी ईश्वरीय सत्य को न मानने से इन्कार समझता हूँ। उसने किसी धर्म वाले से यह नहीं चाहा कि वह अपने धर्म को छोड़ दे। बल्कि जब कभी चाहा तो यही कि सब अपने-अपने धर्मों की असली शिक्षा पर चलें, क्योंकि सब धर्मों की असली शिक्षा एक ही है। न उसने कोई नया सिद्धान्त पेश किया और न कोई नई कार्य पद्धति ही चलाई। उसने सदा उन्हीं बातों पर जोर दिया, जो संसार के सब धर्मों की सब से ज्यादा जानी-बूझी बातें हैं। अर्थात् एक जगदीश्वर की उपासना और सदाचार का जीवन। उसने जब कभी लोगों को अपनी ओर बुलाया है, तो यही कहा है कि अपने-अपने धर्मों की वास्तविक शिक्षा को फिर से ताज़ा कर लो, तुम्हारा ऐसा कर लेना ही मुझे क़बूल कर लेना है।" इस प्रकार के स्वतन्त्र विचार आप सदा ही प्रकट करते रहे हैं। काबुल में मुरतिद (मज़हब बदलने वाले) लोगों को जब पत्थर मार-मार कर जान से मार डाला गया था, तब उसके विरोध में आपने आवाज़ बुलन्द की थी और उसको इस्लाम के धर्म तथा इतिहास दोनों के ही विरुद्ध बताया था। इस देश में होने वाली धार्मिक हत्याओं की भी आप निन्दा करते रहे हैं। करांची के नाथूराम महाराज की हत्या की और हत्यारे अब्दुलक़यूम को गाज़ी आदि कहने की भी आपने तीव्र निंदा की थी। आपने स्पष्ट ही कहा था कि ऐसा आदमी ग़ाज़ी नहीं क़ातिल है। मुहम्मद साहब को यदि कोई भला-बुरा कहता है तो उसको सहन करना चाहिए। ऐसे आदमी को दण्ड देने का मुसलमानों को न अधिकार है और न वह उनका फर्ज़ ही है। आपकी

की हुई कुरान-शरीफ़ की व्याख्या या अनुवाद इस दृष्टि से अपूर्व एवं अलौकिक है। सारांश यह है कि आपने उस विचार-धारा के विरुद्ध विद्रोह किया है जो मुसलमानों को राष्ट्रीयता से दूर रखकर धर्मान्ध बनाए रखने के लिए इस देश में जान-बूझकर पैदा की गई थी और जिसको क़ायम रखने तथा चारों ओर फैलाने का विशेष यत्न किया गया था। आप अपने विद्रोह में यद्यपि पूरी तरह सफल नहीं हुए हैं, किन्तु उसके बीज ऐसी उपजाऊ भूमि में बखेरे जा चुके हैं कि उनके जड़ पकड़ने में अधिक समय नहीं लगेगा। उनके अंकुर फूटने के बाद जब बगीचा सुन्दर फूलों और मधुर फलों से लद जायगा, तब सब धर्मान्धता, अनैतिकता तथा अराष्ट्रीयता नष्ट होजायगी और तब पता चलेगा कि मौलाना आज़ाद ने १७-१८ वर्ष की आयु में किस ऊसर भूमि को हाथ में फावड़ा लेकर किस प्रकार साफ़ किया था और उसमें दृढ़ राष्ट्रीयता तथा उदार धार्मिकता के बीज कैसे बखेरे थे? भारत के मुसलमानों में राष्ट्रीयता, उदारता तथा सहिष्णुता की भावना पैदा करने वालों की नामावली में निश्चय ही आपके नाम का स्थान बहुत ऊपर या सर्वप्रथम ही है।

मुहम्मद अली

[१८७८—१९३०]

अड़तीसवां अधिवेशन, कोकनाडा—१९२३

'मौलाना मुहम्मद अली इस्लाम के लिए जिये और भारत के लिए मरे'—इस एक वाक्य में आपके सरल, भावुक, साहसी, निर्भीक, योद्धा, स्पष्टवादी, श्रद्धा-सम्पन्न,स्वतंत्रता-प्रेमी और देश-भक्ति-पूर्ण जीवन का परिचय दिया जा सकता है। १९३० की गोल-मेज-परिषद् में लन्दन में भारत की स्वतंत्रता के लिए ज़ोरदार वकालत करते हुए आपके जीवन का अन्त होना और जेरुसेलम में इस नश्वर शरीर का अनन्त निद्रा में निमग्न होना ऊपर के कथन का सदा समर्थन करता रहेगा।

रामपुर-राज्य के एक सुप्रसिद्ध घराने में दिसम्बर १८७८ में आपका जन्म हुआ था। आपके पितामह अलीवर्दी खां राज्य के प्रतिष्ठित अधिकारी थे। १८५७ की लड़ाई में अंग्रेज़ों को आपने बहुत मदद दी थी। उनके पुत्र अब्दुलअली खां भी राज्य में उच्च पदाधिकारी थे। अली-बन्धुओं के बालकपन में ही उनके पिता अब्दुलअली खां का देहान्त हो गया था। बी अम्मा ने दोनों का बड़े यत्न के साथ लालन-पालन किया। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा रामपुर में, हाई स्कूल की बरेली

में और कालेज की अलीगढ़ में हुई। १८९८ में सिविल सर्विस के लिए आप इंग्लैण्ड गये। १९०२ तक आक्सफोर्ड में पढ़े। परीक्षा में असफल होकर भारत लौट आये।.फिर विलायत जाकर बी० ए० पास किया।

भारत लौटने पर १९०२ में रामपुर-राज्य के शिक्षा-विभाग के प्रधान अधिकारी नियुक्त हो गये। एक वर्ष बाद बड़ौदा जाकर वहां अफ़ीम के महकमे में १९१० तक काम किया। नौकरी में रहते हुए भी आप सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते रहते थे। १९०६ में मुस्लिम लीग को स्थापित करने वालों में आप भी एक थे। विद्यार्थी-जीवन से ही आपको बोलने और लिखने का शौक़ था। ऑक्सफोर्ड-युनिवरसिटी-यूनियन में अपनी वाणी और बाद में समाचार-पत्रों में अपनी लेखनी की आपने धाक जमा दी थी। १९११ में आपने कलकत्ता से 'कामरेड' निकाला, जिसको प्रसिद्धि प्राप्त करने में अधिक समय नहीं लगा। इसी बीच जावरा-राज्य का प्रधान-मन्त्री बनने के लिए आप पर जोर डाला गया। पर, गुलामी का तौक़ उतारकर सार्वजनिक जीवन की ओर पग बढ़ानेवाले मुहम्मद अली फिर पीछे लौटने को तय्यार न हुए। अलीगढ़ के एम० ए० ओ० कालेज को युनिवरसिटी बनाने के लिए आपने विशेष उद्योग करके खूब चन्दा इकट्ठा किया था।

१९१३ (३ अगस्त) को कानपुर में मछली बाजार की मसजिद का कुछ हिस्सा सड़क के लिए गिराये जाने पर मुसलमानों और सरकार में भयानक संघर्ष हुआ था और सरकार की ओर से गोली चलाई गई थी और बहुत से मुसलमान गिरफ्तार किये गये थे। उसके लिए आपने विलायत जाकर वहां के समाचार पत्रों में आन्दोलन

किया। सरकार को अन्त में हारना पड़ा। सड़क पर पुल बनाकर मस-जिद का वह हिस्सा बनाया गया और गिरफ्तार किये गये मुसलमानों को छोड़ दिया गया।

१६१२ में दिल्ली के राजधानी बनाये जानेपर आप भी अपना 'कामरेड' देहली ले आये और १६१३ से उर्दू में दैनिक 'हमदर्द' भी निकालना शुरू कर दिया। उसी वर्ष टर्की-बालकन-युद्ध होने पर आपने चन्दा जमा करके वहां एक सेवक मण्डल भेजा। १६१४ में टर्की को जर्मन से अलग रखने के लिए आपसे और डाक्टर अन्सारी से भारत-सरकार ने एक तार दिलवाया। पर टर्की युद्ध में जर्मनी के साथ होकर कूद पड़ा। तब आपने तुर्कों के साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए जोरदार लेख लिखे। दोनों भाइयों को भारत-रक्षा-क़ानून में गिरफ्तार करके महरौली, लैंसडाउन और छिंदवाड़ा में रखा गया। इस क़ानून की अवधि पूरी होने पर रेगूलेशन ३ के अनुसार आपको बेतूल-जेल में रखा गया। लोगों में इस नजरबन्दी पर असन्तोष पैदा हुआ, प्रतिवाद में सभाएँ हुईं, तार दिये गये, मेमोरियल भेजे गये, पर सब व्यर्थ सिद्ध हुए। राजनैतिक मामलों में भाग न लेने की शर्त पर छूटने से आपने इनकार कर दिया।

पंजाब के मार्शल लॉ के बाद माण्टफोर्ड-सुधारों का नया युग लाने के लिए पंजाब के अलावा और भी प्रान्तों में बहुत से राजनैतिक कैदी रिहा किये गये थे, तब दोनों भाई भी जेल से रिहा हुए। देहली, अमृतसर, कलकत्ता आदि जहां भी दोनों भाई गये, लोगों ने राजसी ठाठ-बाट से आपका स्वागत-अभिनन्दन किया। १६२० में खिलाफ़त

डेपुटेशन में विलायत से निराश होकर आप टर्की और अरब होते हुए यह निश्चय करके लौटे कि गुलामों का रखवारा दुनिया में कोई नहीं है। यहां का वातावरण भी बहुत बदल चुका था। देश भिक्षा की परावलम्बी वृत्ति का त्याग कर असहयोग के स्वावलम्बन के मार्ग की ओर अग्रसर हो रहा था। निर्भीक योद्धा की वीर वृत्ति रखनेवाला मुहम्मद अली आग में कूद पड़ा। राजनैतिक असन्तोष की उस आग को सब देश में उस भयानक रूप में फैला देनेवालों में मुहम्मदअली का नाम अभिमान से लिया जाता रहेगा। १९२१ में करांची की खिलाफत कांफ्रेंस में शेर मुहम्मदअली ने घोषणा की कि 'इस्लाम के शत्रुओं की नौकरी मुसलमान सिपाहियों को छोड़ देनी चाहिए।' १४ सितम्बर १९२१ को विजगापट्टम में आप गिरफ़्तार किये गये। दोनों भाइयों, जगद्गुरू शंकराचार्य, डा० किचलू आदि पर करांची में मुक़द्दमा चला। दो-दो वर्ष की सज़ा हुई। वह भी एक समय था, जब कि उस अपराध को हजारों सभाओं में इकट्ठे होकर लाखों व्यक्तियों ने दोहराया था। दो वर्ष बाद मुहम्मदअली जब जेल से बाहर आये, तब गान्धीजी जेल में थे, देश में परिवर्तनवादियों और अपरिवर्तनवादियों में गृह-कलह ज़ोरों पर था। १९२३ की देहली की विशेष कांग्रेस पर आपके उद्योग से दोनों दलों में समझौता होगया। आपके त्याग, तपस्या, कष्ट सहन, देश सेवा और राष्ट्र भक्ति के फल-स्वरूप देशवासियों ने आपको १९२३ में कोकनाडा-कांग्रेस के अध्यक्ष के आसन पर बिठा कर आपको सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया। गया में स्वराज्य दल के बनने और आपके ही सभापतित्व में कांग्रेस में कौंसिल प्रवेश का प्रस्ताव स्वीकृत

हो जाने पर भी आपने कौंसिलों की ओर कभी आंख फेर कर देखा तक नहीं। १९२७ की मदरास-कांग्रेस में मुसलमानों के अधिकारों के सम्बन्ध में मतभेद होने पर आप कांग्रेस से अलग हो गये। उसके बाद आप कांग्रेस में नहीं आये। 'कामरेड' और 'हमदर्द' को आपने फिर निकाला। बाद में आपका स्वास्थ कुछ गिर गया।

१९२० के राजनैतिक आन्दोलन के शिथिल होने पर देश में साम्प्रदायिकता का जो नंगा नाच हुआ और उसके परिणाम स्वरूप जहां-तहां हिंदू-मुसलमानों में जो कलह हुई, उससे आप अत्यन्त दुःखी रहते थे। दोनों में सुलह कराने में आप कभी पीछे नहीं रहे। देहली के दंगे के बाद महात्मा गान्धी के २१ दिन के उपवास पर एकता-सम्मेलन के संगठित करने में आपका विशेष हिस्सा था। कट्टर मुसलमान और बहुत अंशों में धर्मान्ध होते हुए भी आप में साम्प्रदायिकता, चापलूसी, राजभक्ति आदि की बू तक नहीं थी। वह सब आपकी दृष्टि में देश-द्रोह था और देशद्रोह से आपने अपनेको सदा बचाये रखा। और, अन्त में लन्दन में पहली गोल-मेज-परिषद् में ४ जनवरी १९३० को देश की दुरवस्था से व्यथित, हृद्रोग से पीड़ित मुहम्मद अली ने यह कहने के बाद अन्तिम सांस लिया कि "यदि भारत को स्वतन्त्रता न दी गई तो यहां ही आपको मेरी कब्र का प्रबन्ध करना होगा।" इस प्रकार देश की स्वतन्त्रता की वेदी पर शहीद होने की पहली रात को आपने अपने देशवासियों के नाम इस आशय की अपील लिखी थी कि "परस्पर सारे मतभेदों को भुला कर राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए मिलकर काम करना ही इस समय वांछनीय है।"

मोहनदास करमचन्द गांधी

[२ अक्तूबर १८६९]

उन्चालीसवां अधिवेशन,

बेलगांव—१९२४

किसी विशेष मिशन और सन्देश को लेकर आनेवाले महा-पुरुष अपनी जाति, समाज, देश तथा राष्ट्र की सीमा पार करके अपने व्यक्तित्व और जीवन को सारे संसार और मनुष्य-मात्र की भेंट चढ़ा देते हैं। वे युग-निर्माता होते हैं। उनकी जीवन-कहानी विश्व के इतिहास का गौरवशाली और विशाल अध्याय बन जाती है। थोड़े में उसका परिचय नहीं दिया जा सकता। मोहनदास करमचन्द गांधी अहिंसा के अनुष्ठान और सत्य के प्रयोग द्वारा भारतीय राष्ट्र के निर्माण के साथ-साथ सब संसार और समस्त मनुष्य समाज के लिए एक नव-युग का निर्माण करने में लगे हुए हैं। इसीलिए आप भारत की ही नहीं, किन्तु विश्व की आशा के केन्द्र हैं। आपका जन्म काठियावाड़ प्रदेश के पोरबन्दर राज्य के एक कुलीन घराने में २ अक्तूबर १८६९ (आश्विन कृष्ण १२ सम्वत् १९२५) को हुआ था। आपके पिता

करमचन्द पहले पोरबन्दर में और बाद में राजकोट और वांकानेर में दीवान रहे। आपकी माता पुतली बाई बहुत साधु-स्वभाव की, पूजा-पाठ तथा व्रत-उपवास में निष्ठा रखने वाली थीं। माता-पिता-गुरु आदि में भक्ति और साथ में निष्ठा आपमें जन्म के साथ ही पैदा हो गई थी। विद्यार्थी-जीवन में शिक्षा के साथ-साथ इन गुणों में भी वृद्धि हुई। वैसे आप मन्द बुद्धि, लज्जाशील स्वभाव और संकोची वृत्ति के थे। सात वर्ष की आयु में सगाई और चौदह वर्ष की आयु में आपका विवाह होगया। इसलिए प्रारम्भिक जीवन बहुत आसक्ति में बीतने लगा। हाई स्कूल में दिमाग़ कुछ खुला और पढ़ाई में रुचि पैदा हुई। माता-पिता में भक्ति और सत्य में निष्ठा होने से युवावस्था में कुसंगति में पड़कर मांस, बीड़ी और व्यभिचार की ओर झुकने के बाद भी आप जल्दी संभल गये। १८८५ में पिता का भगंदर की बीमारी से देहावसान हुआ और आपको पहली सन्तान हुई। बाल विवाह का जो परिणाम होता था, वही हुआ। सन्तान दो-चार दिन से अधिक जीवित नहीं रही। वैष्णव सम्प्रदायी होने पर भी घर में राम-नाम की बहुत महिमा थी। आपकी भी राम-नाम और रामायण में श्रद्धा पैदा हो गई। १८८७ में मैट्रिक पास करके आप भावनगर कालेज में भरती हुए। मांस, मदिरा तथा स्त्री-संग से दूर रहने का वचन देकर और माताजी तथा बड़े भाई से बहुत कठिनाई से अनुमति प्राप्त करके जाति बहिष्कृत हो आप ४ सितम्बर १८८८ को बैरिस्टरी पढ़ने के लिए विलायत गये। वहां माताजी के साथ की हुई प्रतिज्ञा को आपने पूरी सच्चाई के साथ निबाहा। बड़ी सादगी और कम खर्च में वहां गुज़ारा किया। भोजन-

सम्बन्धी कई ग्रन्थ पढ़ने से निरामिश-भोजन में आपका विश्वास दृढ़ हो गया और उसके प्रचार के लिए आपने वहां एक संस्था भी बनाई। गीता के स्वाध्याय से जीवन में सात्विक भावों का उदय हुआ। बाइबिल बुद्ध-चरित्र और थियोसोफ़िस्ट-साहित्य का भी आपने अनुशीलन किया। सात्विक भावों के साथ-साथ आस्तिकता पैदा हुई। ईश्वर, सत्य, अहिंसा, प्रेम और त्याग में आपकी निष्ठा दृढ़ होती गई। इसीलिए नैतिक-पतन की खाई के किनारे पर पहुँचकर भी आप उसमें गिरने से सदा ही बचते रहे और यत्न पूर्वक जीवन की उस साधना में लगे रहे, जिसने आज आपको 'महात्मा' पद के उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया है। १० जून १८६१ को बेरिस्टरी पास करके १२ जून को स्वदेश के लिए चल दिये। बम्बई पहुँचने पर डा० मेहता ने अपने बड़े भाई के दामाद रायचन्दभाई से आपका परिचय कराया। रस्किन और टाल्सटाय के ग्रन्थों और रायचन्दभाई की संगति से आपकी काया पलट हो गई। आस्तिकता और सात्विकता के भाव आध्यात्मिकता के रंग में रंग गये।

पहली चोट

एक असफल वकील के रूप में आपने सार्वजनिक जीवन में प्रवेश किया। बम्बई में ५-६ मास रहने के बाद भी आप अपने धंधे में सफल नहीं हुए। अदालत में जाते तो सब कुछ भूल जाते, पैरवी करने खड़े होते तो हाथ-पैर कांपने लगते थे। निराश होकर राजकोट आगये और वहां अर्ज़ियां-दावे लिखकर कुछ काम चलाने लगे। बड़े भाई पोरबन्दर के राणा-साहब के सलाहकार और मन्त्री थे। अपनी योग्यता के बल पर नहीं, किन्तु भाई के प्रभाव के कारण २०० रु० महीने तक की

आमदनी होने लगी। काले-गोरे के भेदभाव की, अंगरेज़ों के दो-रंगे व्यवहार की, पहली ही चोट कुछ ऐसी लगी कि काठियावाड़ से मन ऊब गया। पोलिटिकल एजेण्ट के साथ विलायत का परिचय निकाल कर बड़े भाई की सिफारिश के लिए, आप उससे मिलने गये। उसने आपकी पूरी बात सुने बिना ही चपरासी से आपको बाहर निकलवा दिया। इसलिए मन और भी उद्विग्न होगया। किसी नौकरी की तलाश में थे कि पोरबन्दर की एक मेमन फर्म के ४० हज़ार पौण्ड के दावे की देख-रेख करने के लिए आपको अफ्रीका जाने का सन्देश मिला। फ़र्स्ट क्लास का किराया, मुफ़्त रहन-सहन तथा भोजन और १०५ पौंड मेहनताना तय हुआ और आप १८९३ में अफ्रीका के लिए बिदा हो गये।

अफ्रीका में

अफ्रीका में पहले ही दिन अदालत में जाने पर उस आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ समझना चाहिए जिसने बाद में इतना प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। अदालत में आपको पगड़ी उतारने के लिए कहा गया। आप उठकर चले आये, और अखबारों में आपने आन्दोलन शुरू किया। मुकद्दमे के काम के लिए आप प्रिटोरिया गये, तो रास्ते में वैसी कई घटनायें घट गईं। आप पहले दर्जे में यात्रा कर रहे थे। रात को नौ बजे मेरीत्सबर्ग पर ट्रेन पहुंची, तो आपको उस डिब्बे में से उतरकर अन्तिम डिब्बे में बैठने के लिए कहा गया। जब आप उसके लिए तैयार न हुए, तब सिपाही ने आकर आपको हाथ पकड़ नीचे धकेल दिया और आपका सामान भी बाहर फेंक दिया। केवल एक

हैंडबेग लेकर आप वेटिंग रूम आगये और रात भर बिना सामान के सर्दी में ठिठुरते रहे। दूसरे दिन जनरल मैनेजर को और अपने आफिस को तार दिया और हिन्दुस्तानियों के साथ होनेवाले अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन करने का निश्चयकर आपने दूसरी गाड़ी से आगे जाने का विचार पक्का किया। चार्ल्सटाउन से जोहनन्सबर्ग घोड़ा गाड़ी पर जाना था। वहां भी आपको गोरों के साथ न बिठा पीछे बैठाया गया। रास्ते में फिर एक और घटना घटी। एक गोरे ने आपको अपनी जगह से हटा कर पैर रखने की जगह पर बैठने के लिए कहा। जब आप उसके लिए तैयार न हुए तो आपको उसने पीटना शुरू किया। जोहन्सबर्ग पहुंच कर आप एक होटल में गये, पर आपको वहां भी जगह न मिली। जोहन्सबर्ग से आगे जाने वाले किसी हिन्दुस्तानी को पहले दर्जे का टिकट नहीं मिलता था। रेल के क़ायदे-क़ानून में वैसा कोई उल्लेख न देख, आपने स्टेशन मास्टर से पहले दर्जे का टिकट मांगा। 'यदि रास्ते में गार्ड उतार दे तो कम्पनी पर दावा तो नहीं करेंगे'—इस शर्त पर स्टेशन मास्टर ने आपको टिकट दिया। पर, गाड़ी में बैठने के कुछ ही समय बाद गार्ड ने वहां से उतरकर तीसरे दर्जे में जाने के लिए आप पर ज़ोर डाला। साथ में बैठे हुए गोरे ने जब गार्ड का प्रतिवाद किया, तो वह यह कहकर चला गया कि 'कुली के साथ बैठना है तो बैठो, मेरा क्या है?' रात को आप प्रिटोरिया पहुँच गये।

आप बीती जग बीती

आप बीती इन घटनाओं के अनुभव के साथ-साथ आप रास्ते भर अपने देशवासियों से ऐसे ही व्यवहार की शिकायतें सुनते आये। इस-

लिए प्रिटोरिया में एक मण्डल की स्थापना करके इस अन्यायपूर्ण भेदभाव के विरुद्ध आन्दोलन करने का सूत्रपात किया। ट्रान्सवाल में यह अन्याय चरम सीमा को पहुंच चुका था। मताधिकार से भारतीय वंचित थे, सड़क की पगडन्डी पर वे चल नहीं सकते थे, रात को ६ बजे के बाद बिना परवाने के वे घर से बाहर नहीं निकल सकते थे, ज़मीन की मालिकी पाने का उन्हें अधिकार न था और ३ पौण्ड दिये बिना वहां प्रवेश तक निषिद्ध था। अन्य राज्यों में भी कुछ कम-अधिक ऐसे ही अन्यायपूर्ण नियम तथा क़ानून बने हुए थे। उनके विरुद्ध आन्दोलन करने की भावना आपके हृदय में दिन-पर-दिन दृढ़ हो रही थी। जिस मुकद्दमे के लिए आप अफ्रीका आये थे, उसमें दोनों पक्षों में समझौता कराकर जब आप स्वदेश लौटने लगे, तब आपकी बिदाई में एक भोज का आयोजन किया गया। आपने उस समय आन्दोलन की चर्चा की और वह भोज परामर्श-सभा में परिणत हो गया। हिंदुस्तानियों से मताधिकार छीन लेने का बिल भी उन्हीं दिनों धारा-सभा में पेश हुआ था। उस पर विचार हुआ। तार दिये गये, मैमोरियल भेजे गये और समाचार पत्रों में चर्चा की गई। बिल तो पास हो गया, किन्तु हिन्दुस्तानियों में कुछ चेतना, जागृति, संगठन और आत्मविश्वास के भाव पैदा हो गये। आपको इसीलिए वहां कुछ अधिक रुक जाना पड़ा। बिल के विरोध में आन्दोलन ने जोर पकड़ा। उपनिवेश-मन्त्री लार्ड रिपन के पास भेजे गये मेमोरियल की प्रतियाँ भारतीय नेताओं, समाचार-पत्रों और विलायत भी भेजी गई। उस आन्दोलन में प्राप्त हुई सफलता से आशान्वित हो लोगों ने आपसे वहां ही रुक जाने का आग्रह

किया और खर्च का भी सब प्रबन्ध कर दिया। वकालत से अपना खर्च पूरा करने का विचार करके आपने स्वदेश आना कुछ समय के लिए मुलतवी कर दिया।

वकालत का धन्धा तो जीवन-निर्वाह का साधन था, किन्तु वास्तविक कार्य था रंगभेद के विरुद्ध आन्दोलन करना। १८६४ में 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' की स्थापना की गई। दो ट्रेक्ट आपने लिखे। पारस्परिक सहानुभूति और सहयोग के भाव भारतीयों में पैदा होने लगे। सुशिक्षित, व्यापारी और उच्च श्रेणी के लोगों के समान ग़रीब, अशिक्षित और कुलीगिरी करनेवालों में भी लोकप्रिय होने में आपको अधिक समय नहीं लगा। बालासुन्दरम् नाम के कुली को उसके गोरे मालिक ने बुरी तरह पीटा था। उस पर आपने दावा दायर किया और उससे उसको छुट्टी दिलाई। बस, फिर क्या था, आपके दफ्तर में उन लोगों की भीड़ रहने लगी। १८६४ में नेटाल-सरकार ने कुलीगिरी करनेवाले भारतीयों पर भी २५ पौण्ड का सालाना कर लगाने का बिल तय्यार किया। कांग्रेस की ओर से आन्दोलन होने पर भारत-सरकार ने उसको ३ पौण्ड करा दिया। उसीके विरुद्ध किया गया आन्दोलन आगे चलकर दक्षिण-अफ्रीका के सत्याग्रह में परिणत हो जाता है।

भारत में—फिर अफ्रीका में

परिवार को अफ्रीका लिवा लाने और उस बिल के विरुद्ध भारत में आन्दोलन करने के विचार से आप १८६६ के मध्य में भारत आये। आपके आने का परिणाम बहुत अच्छा हुआ। समाचार पत्रों में चर्चा हुई और आपकी लिखी हुई 'हरी पुस्तक' की बीस हज़ार प्रतियां चारों ओर

बाटी गई। पायोनियर, स्टेट्समैन, इंगलिशमैन और मदरास स्टैण्डर्ड आदि में आपके आन्दोलन का समर्थन किया गया। बम्बई, पूना, मदरास और कलकत्ता का आपने दौरा किया। जगह-जगह सार्वजनिक सभायें हुई। डरबन से ज़रूरी तार आने पर आप दिसम्बर १८९६ में परिवार के साथ अफ्रीका लौट गये। डरबन मे बहुत दिनो तक यात्रियो को जहाज पर रोक रखा गया। भारत मे आपने जो आन्दोलन किया था, उस पर गोरे बुरी तरह बिगड़े हुए थे। उनकी यह माग थी कि ८०० भारतीयो सहित उस जहाज को भारत लौटा देना चाहिए। वे उसका खर्च देने को भी तय्यार थे। गोरे इतने आवेश में थे कि उन्होंने आप पर हमला करने की भी तय्यारी की हुई थी। इसलिए आपको चुपके से शाम क समय जहाज से उतारा गया। फिर भी रास्ते में उदण्ड गोरो ने आपको घेर लिया। उन्होंने आप पर कंकर, पत्थर और डंडे बरसाये आपकी पगड़ी गिरा दी और घूसो-लातो-थप्पड़ो से आपको पीटना शुरु किया। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट की पत्नी और पुलिस के आजाने से आप की जान बची। आपको रुस्तम जी के बॅगले पर पहुॅचाया गया। उद्दंड गोरो ने बंगले को भी आ घेरा। पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट वेश बदलकर आपको वहा से थाने ले गये। आप पर हमला करनेवाले गोरो पर मुकदमा चलाने की जब चर्चा हुई, तब आपने वैसा करने या कराने से इनकार कर दिया। उस घटना की समाचार पत्रों में बहुत चर्चा हुई।

भारतीयो के व्यापार और उनके नेटाल आने-जाने में अड़चन पेदा करनेवाले दो बिल धारा-सभा में और पेश हुए। उनके विरुद्ध भी आपने आन्दोलन किया, किन्तु बिल पास हो ही गये।

सन् १८६७ से ६६ तक हुए बोअर-युद्ध के समय आपने घायलों की सेवा-सुश्रूषा के लिए ११०० स्वयं सेवको को तय्यार किया और जान को जोखिम में डालकर उन स्वयंसेवकों ने युद्ध के मैदान में सेवा का कार्य किया। डरबन में प्लेग होने पर आपने भारतीयो की सेवा भाव का उत्कृष्ट परिचय दिया। भारत में दुर्भिक्ष पड़ने पर अफ्रीका से चन्दा जमा करके वहां से आपने बहुत बड़ी रक़म भेजी। १६०१ में आप भारत लौट आये। बिदायगी में आपको बहुत कीमती हीरे-जवाहरात और सोना-चांदी का सामान मिला, जिसके लिए ट्रस्ट बनाकर सब कुछ सार्वजनिक कार्यों के लिए दे दिया। आते हुए मार्ग में आप मारिशस ठहरे। उस वर्ष कलकत्ता में कांग्रेस का अधिवेशन था। वहां आपने अपना परिचय दिये बिना क्लर्क और स्वयंसेवक का छोटे से छोटा काम करने में भी संकोच नहीं किया। वहीं श्रीयुत गोखले के साथ आप की घनिष्ठता क़ायम हुई। दक्षिण-अफ्रीका के भारतीयों के सम्बन्ध में कांग्रेस में एक प्रस्ताव आपकी प्रेरणा से स्वीकृत हुआ। एक मास तक आप कलकत्ता रहे। बीच में बर्मा भी हो आये। काशी में ऐनी बेसेण्ट से मिलते हुए राजकोट आगये। राजकोट से बम्बई आकर क़ानूनी धन्धा शुरु किया।

बम्बई आये कुछ अधिक समय नहीं हुआ था कि चेम्बरलेन के अफ्रीका पहुँचने का समाचार मिलने पर फिर आप एकाएक अफ्रीका चल दिये और १ जनवरी १६०३ को प्रिटोरिया पहुंच गये। चेम्बरलेन से भारतीयों की ओर से मिलनेवाले डेपूटेशन में गोरों के विरोध के कारण आप शामिल नहीं हुए। पर वहां ठहरने की आवश्यकता जान

करके आप वहीं रुक गये। उसी वर्ष वहां 'ट्रांसवाल ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन' क़ायम किया गया। 'इण्डियन ओपीनियन' नाम का पत्र भी शुरू किया गया, जिसका सब भार आप ही पर आ पड़ा। १९०४ में जोहन्सबर्ग में प्लेग फैलने पर म्यूनीसिपैलिटी ने बार-बार आन्दोलन करने पर भी भारतीयों के मुहल्ले की ओर ध्यान नहीं दिया। तब आपने अपने कुछ साथियों के साथ अपने को सेवा के कार्य से लगा दिया। १९०६ में ज़ुलू-संघर्ष में भी आपने सेवा का सराहनीय कार्य किया था।

सार्व-जनिक-सेवा के साथ धंधे का काम भी उन्नति पर था। सेवा और त्याग की वृत्ति भी उन्नति पर थी। सचाई, ईमानदारी और सेवा से आपको कुछ गोरे स्नेही भी मिल गये थे। आपके आफिस में टाइपिंग का काम करनेवाली मिस डिक का विवाह तक आपने करवाया था। मिस इलेशिना भी आपके आफिस में काम करती थी। उस पर आपके जीवन का इतना गहरा असर पड़ा कि सत्याग्रह में जेल जाने पर इस अकेली ने आपका सब काम संभाला। मि० हेनरी पोलक भी आपको उन्हीं दिनों में मिले थे। फिनिक्स में पीछे जो आश्रम खोला गया, उसकी नींव उन्हीं दिनों में डाली गई थी। १०० एकड़ ज़मीन लेकर प्रेस और पत्र का काम वहां से ही किया जाने लगा। जीवन में सात्विक भाव कुछ ऐसे उग्र हो उठे कि आपने आजीवन ब्रह्मचारी रहने का व्रत ले लिया। जिस असाधारण उत्कर्ष पर आप इस समय पहुंचे हुए हैं, उसके प्रारम्भ का आभास आपके उन दिनों के कार्य में प्रायः सर्वत्र दीख पड़ता है।

सत्याग्रह का सूत्रपात

१६०६ में जुलू-संघर्ष समाप्त होते न होते 'ड्राफ्ट एशियाटिक ला एमेण्डमेण्ट बिल' ट्रांसवाल-सरकार ने कौंसिल में पेश किया। उसका आशय यह था कि ट्रांसवाल में रहने की इच्छा करनेवाले भारतीय स्त्री-पुरुष, बाल-वृद्ध सभीको परवाना लेना होगा, जिसके लिए उसको दोनों हाथों की सब अँगुलियों और अँगूठों के निशान देने होंगे, उसके शरीर के चिह्न नोट किये जायँगे और सदा-सर्वदा यह परवाना साथ रखना होगा। इससे अधिक भयानक अपमान और क्या हो सकता था? ट्रांसवाल में सभा हुई। इस बिल का विरोध करके, पास हो जाने पर उसको न मानने और अवज्ञा के परिणाम-स्वरूप सब दुःख झेलने की प्रतिज्ञा ईश्वर को साक्षी रखकर की गई। चारों ओर आन्दोलन की आग सुलग उठी। स्त्रियो से सम्बन्ध रखनेवाली धाराओं को बाद देकर शेष बिल स्वीकृत हो गया। सम्राट् की स्वीकृति के बिना वह बिल अमल में नहीं आ सकता था। इसलिए हाजी वज़ीरअली के साथ आपको विलायत भेजा गया। दादाभाई आदि के साथ मिलकर आपने छः सप्ताह वहां खूब आन्दोलन किया, पार्लमेन्ट के सदस्यों और अधिकारियों से मिले। बिल के स्वीकृत न होने की आशा देख आप लौट आये। साम्राज्य-सरकार ने ट्रांसवाल को १६०७ की पहली जनवरी को स्वायत्त-शासन देकर अपना पिंड छुड़ाया और भारतीयों की किस्मत को उनके हाथों में सौंप दिया, जो उनके प्रति अन्याय करने पर तुले हुए थे। अर्जी, विरोध, प्रतिवाद सब व्यर्थ हुए। परवाने लेने का दिन १ अगस्त १६०७ नियत किया गया। 'निष्क्रिय-प्रतिरोध-

संघ' की स्थापना पहले ही हो चुकी थी। पहली अगस्त को एशियाटिक आफ़िस परवाना लेने के लिए खोले गये। स्वयं सेवकों ने उन सब पर पिकेटिंग किया। परिणाम यह हुआ कि बहुत कम लोगों ने परवाने लिये। रात को लुक-छिप कर सरकारी अफसर लोगों के घरों और दफ्तरों पर जाकर परवाने देने लगे। पर, स्वयंसेवक बहुत सावधान थे। परवाना लेनेवालों की संख्या ५०० से ऊपर नहीं गई। गिरफ़्तारियां शुरू हुईं। सबसे पहले रामसुन्दर गिरफ़्तार किये गये। दिसम्बर में आप भी अपने कुछ साथियों के साथ कैद कर लिये गये। दो-दो मास की सज़ा हुई। एक ओर दमन बढ़ता था और दूसरी ओर आन्दोलन। अन्त में समझौता हुआ। जेल से आपको जनरल स्मट्स के पास ले जाया गया। परवाना-सम्बन्धी क़ानून रद्द करके उसको भारतीयों की इच्छा पर छोड़ देना तय हुआ। आप उसी समय रिहा किये गये। जोहन्सबर्ग पहुंचकर आपने अपने साथियों के साथ परामर्श किया। प्रायः सभीने उसको स्वीकार किया। सब रिहा कर दिये गये और आन्दोलन बन्द कर दिया गया।

विरोधियों ने अनपढ़ पठानों को उकसा दिया कि गान्धीजी सरकार के साथ मिल गये हैं। १० फरवरी १६०८ को जब स्वेच्छा से परवाना लेने के लिए जाने लगे, तो उत्तेजित पठानों ने आप पर आक्रमण कर दिया। आप बेहोश होकर गिर पड़े। पठान गिरफ़्तार किये गये। आपने उनको छुड़वा दिया, किन्तु गोरों ने आन्दोलन किया कि न्याय का फैसला होना चाहिए। उसको गांधीजी के हाथों का खिलौना नहीं बना देना चाहिए। पठानों को फिर कैद करके सज़ा दी

गई। इसी प्रकार डरबन में भी पठानों ने आप पर आक्रमण करना चाहा। पर आपको बचा लिया गया। वहांसे आप फिनिक्स चले आये। जरनल स्मट्स ने अपना वायदा पूरा नहीं किया और कानून रद्द नहीं हुआ। आन्दोलन फिर अधिक उग्रता के साथ उठ खड़ा हुआ नियत दिन पर सभा करके परवानों की होली की गई। नये भारतीयों का आना बन्द करने के लिए उसी समय 'इमीग्रेंट्स रिस्ट्रिक्शन एक्ट' पास किया गया। उससे आन्दोलन में और तीव्रता पैदा होगई। गिरफ़्तारियां हुईं। आप भी गिरफ़्तार हुए। छूटने पर आपने फि रसमझौते का यत्न किया और आप इसी उद्देश से इंग्लैण्ड भी गये। वहां कुछ सफलता न मिलने से आन्दोलन को और जोरों के साथ चलाना तय हुआ। आपका एक जर्मन साथी कैलेनबैक था। उसने जोहन्सबर्ग के पास आपको ११०० एकड़ भूमि दी। उस भूमि में टाल्सटाय फार्म की स्थापना की गई और लोगों को सादगी, परिश्रम, स्वावलम्बन आदि की वहां शिक्षा दी जाने लगी। जूता गांठने, टट्टी साफ करने और मकान बनाने तक का सब काम वहां के ही निवासी करते थे। उन्हीं दिनों में श्रीयुत गोखले भारतीयों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए अफ्रीका गये। आपको सरकार ने भारतीयों के प्रति अन्यायमूलक सब क़ानून रद्द करने का विश्वास दिलाया। पर, उस विश्वास को पूरा नहीं किया गया। भारत में भी जोरों का आन्दोलन हुआ और भारत-सरकार तक ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट की, किन्तु अफ्रीका की यूनियन सरकार पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ा। अदालत का उन दिनों में एक फैसला ऐसा हुआ, जिससे केवल ईसाई धर्म के अनुसार हुए

विवाहों को जायज़ माना गया और बाकी सब विवाह गैरकानूनी ठहरा दिये गये। सरकार ने भी अदालत के उस फैसले को मान लिया। अपमान की यह अन्तिम सीमा थी। १३ सितम्बर १९१३ से फिर से सत्याग्रह शुरू करने का निश्चय हुआ। ट्रांसवाल की सीमा पारकर आन्दोलन की आग नैटाल में भी फैल गई। गान्धीजी ने २०२७ पुरुषों १२७ स्त्रियों और ५७ बच्चों के सत्याग्रही दल के साथ बिना परवाना लिये ट्रांसवाल में प्रवेश करने के लिए ६ नवम्बर १९१३ को कूच की। आपको यात्रा में गिरफ़्तार किया गया, किन्तु अदालत ने छोड़ दिया। आप फिर अपने दल में आकर शामिल होगये। दो-एक दिन के बाद सब दल के साथ आपको फिर कैद कर लिया गया। पोलक और कैलेनबैक भी गिरफ़्तार किये गये। जेल में आप सबको कठोर यातनायें भोगनी पड़ीं। श्रीयुत गोखले ने भारत में दक्षिण अफ्रीका के इस सत्याग्रह के लिए प्रचण्ड आन्दोलन किया। धन संग्रह करके अफ्रीका भेजा गया। भारतीयों की आकांक्षाओं से सहानुभूति रखनेवाले एण्डरूज और पियरसन को भी आपने वहां भेजा। एण्डरूज के उद्योग से गान्धीजी और जरनल स्मट्स में फिर समझौता हुआ। तीन पौण्ड का कानून रद्द किया गया, भारतीय विवाहों को जायज़ माना गया, सत्याग्रही जेल से मुक्त किये गये और अन्य बातों के लिए लिखित आश्वासन दिया गया। आठ वर्ष बाद ३० जून १९१४ को आन्दोलन इस प्रकार सफल हुआ।

अफ्रीका से बिदाई भारत में आगमन

श्रीयुत गोखले इंग्लैण्ड में बीमार पड़े थे। गान्धीजी का स्वास्थ भी गिर चुका था। गोखले से मिलने की आपकी प्रबल इच्छा थी और

विश्राम की भी जरूरत थी। ६ अगस्त को आप इंग्लैण्ड पहुंचे। ४ अगस्त को यूरोप में महाभारत का शंखनाद हो चुका था। युद्ध में घायलों की सेवा-सुश्रुषा करने के लिए आपने इंग्लैण्ड में पढ़नेवाले विद्यार्थियों का स्वयंसेवक-दल संगठित किया। पसली के दर्द के कारण आपको शीघ्र भारत आ जाना पड़ा। बम्बई और पूना में आपका खूब स्वागत हुआ। कुछ दिन आप श्रीयुत गोखले के साथ रहे। फीनिक्स आश्रम के आपके बहुत से साथी और विद्यार्थी भी भारत लौट आये थे, जो पहले गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) में रहे, फिर शांति-निकेतन गये और बाद में अहमदाबाद में मई १६१५ में आश्रम की स्थापना होने तक फिर गुरुकुल कांगड़ी में रहे। भारतीय नेताओं से मिलने और आश्रम के लिए उपयुक्त स्थान ढूंढ़ने के विचार से आपने भारत का दौरा किया। देहली में आचार्य रुद्र, गुरुकुल कांगड़ी में महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) और शान्ति निकेतन में विश्वकवि रविन्द्र से आप मिले।

पूना से राजकोट जाते हुए आप बम्बई के गवर्नर से वीरमगांव की ज़कात के बारे में मिले। बाद में तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्ड से मिले। परिणाम यह हुआ कि ज़कात तुरन्त उठा दी गई। हरिद्वार के कुम्भ के मेले पर उसी वर्ष आप अपने कुछ साथियो के साथ यात्रियों की सेवा के लिए गये। आप जहां जाते थे, वहीं आपका अभूतपूर्व स्वागत होता था। हरिद्वार में भी शानदार स्वागत हुआ। गुरुकुल-कांगड़ी की ओर से दिये गये मानपत्र में पहली बार आपको 'महात्मा' शब्द का प्रयोग किया गया। तबसे आप अपने असली नाम की अपेक्षा 'महात्मा गान्धी' के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

चम्पारन में

भारत आने पर छोटी-बड़ी सब समस्यायें आपके सामने पेश होने लगीं। उन सभी को हल करने में आपको कल्पनातीत सफलता मिली। बिहार में नील की खेती करने वाले गोरे, किसानों पर भयानक अत्याचार करते थे। वहां 'तीन कटिया' की ऐसी प्रथा थी कि किसान अपनी जमीन के तीन बटा बीस हिस्से में अपने मालिक के लिए नील की खेती करने को बाध्य था। पटना होते हुए आप १५ अप्रैल १९१७ को मुज़फ्फरपुर पहुंचे। वहां से चम्पारन गये। जिला मजिस्ट्रेट ने चौबीस घन्टे में जिला छोड़ देने का हुक्म दिया। हुक्म न मानने पर आप गिरफ्तार किये गये। मुकद्दमा चला। पर सरकार के आदेश पर मुकदमा उठा लिया गया और आपको अपना कार्य करने की सुविधा दी गई। गांव-गांव घूमकर आप ने ७००० किसानों के बयान लिये, परिस्थिति का अध्ययन किया। बम्बई से कार्यकर्ताओं को बुलाकर गांवों में शिक्षा, सफाई, दवा-दारू आदि से सेवा-सुश्रुषा का काम करना शुरू किया। गवर्नर सर एडवर्ड गेट से मिले। सर फ्रेंक स्लाई की अध्यक्षता में जांच-कमेटी नियुक्त हुई। आप भी उसके सदस्य थे। कमेटी की सर्वसम्मत सिफारिश पर 'तीन कटिया' की प्रथा बंद हुई और गोरों के अन्यायों तथा अत्याचारों से किसानों को मुक्ति मिली। फल-स्वरूप किसनों में अपूर्व जागृति पैदा हो गई। बिहार-सरकार के अनुरोध पर आप वहां कुछ दिन और रहे। बिहार में तभी से आपका कुछ ऐसा प्रभाव जम गया कि बिहार 'गान्धीजी का प्रान्त' कहा जाने लग गया। बिहार से जब आप लौटे तब स्टेशनों पर ३०-३०, ४०-४० हज़ार आदमी आपके दर्शनों के लिए इकट्ठे होते थे।

अहमदाबाद में उपवास

चम्पारन में ही मजूर-संघ की ओर से आपको अहमदाबाद आकर मजूरों की शिकायतों को दूर करने का निमन्त्रण मिल गया था। अहमदाबाद पहुंचकर जांच करने पर मजूरो का पक्ष आपको ठीक जँचा। जब मिल-मालिक पंचों द्वारा झगड़ा निपटाने को तय्यार न हुए, तब मजूरो को अहिंसात्मक रहकर हड़ताल करने के लिए तय्यार किया गया। सरदार वल्लभभाई और श्री शङ्करलाल बैंकर मे आपका उन दिनो मे ही परिचय हुआ। मजूरों के अहिंसात्मक न रहने के कारण आपको उपवास करना पड़ा। हड़ताल के २१ वें दिन श्री आनन्दशङ्कर ध्रुव को पंच मान लिया गया। समझौता होकर हड़ताल समाप्त हो गई। उसी वर्ष कोचब में प्लेग फैलने से सत्याग्रह आश्रम को साबरमी (अहमदाबाद) ले आया गया।

खेड़ा-सत्याग्रह

अहमदाबाद के मजदूरों के काम से निपटे भी न थे कि खेड़ा के किसानों की पुकार कानों पर पड़ी। खेड़ा में सब फसल नष्ट हो गई थी। कानून यह था कि चार आना से कम फसल होने पर लगान माफ कर दिया जायगा। सरकार यह मानती ही नहीं थी कि फसल चार आना से कम हुई है। प्रतिनिधि-मण्डल, कौंसिल-आन्दोलन, अर्जी-तार, आर्ज़ू-मिन्नत किसी पर भी सरकार ने ध्यान न दिया। तब सत्याग्रह के अन्तिम साधन को काम में लाने की आपने सलाह दी। सत्याग्रह के प्रतिज्ञा-पत्र भरवाये गये। सरकार दमन पर तुल गई और घर का माल, पशु, फसल आदि की नीलामी के साथ गिरफ्तारियों का क्रम भी शुरु हुआ।

आन्दोलन दावानल की तरह फैलता चला गया। अंत में सरकार को घुटने टेकने पड़े। समर्थ लोगों के अलावा ग़रीबों का लगान माफ़ कर दिया गया। गुजरात के किसानों में जीवन पैदा हुआ आपकी शक्ति का देश-वासियों को एक और प्रबल प्रमाण मिल गया।

यूरोप का महाभारत

युद्ध की प्रवृति होते हुए भी आपके स्वभाव में राजनैतिक उग्रता नहीं थी। सरकार के न्याय-परायण होने में आपका विश्वास था। आज कल की भाषा में आपके उस समय के जीवन को 'राजभक्त' भी कहा जा सकता है इसीलिए यूरोप के महायुद्ध में आपने शुद्ध अन्तःकरण से सरकार की सहायता करने का निश्चय किया। लोकमान्य तिलक सहायता करने से पहले सरकार से भारत की राजनैतिक मांग को पूरा करने का वायदा करा लेना चाहते थे। आप वैसा कोई वायदा लेने के पक्ष में नहीं थे। लार्ड चैम्सफोर्ड ने देहली में सरकार की सहायता करने के सम्बन्ध में एक परामर्श-सभा का आयोजन किया। लोकमान्य तिलक और अली-बन्धुओं को उसमें ना बुलाकर आपको बुलाया गया। उसका प्रतिवाद और भारतीय मुसलमानों की खिलाफत-सम्बन्धी शिकायतों तथा भारतीयों की राजनैतिक आकांक्षाओं का उल्लेख करते हुए आपने वायसराय को एक पत्र लिखा और उस सभा में सम्मिलित हुए। सत्या-ग्रह के लिए अफ्रीका, चम्पारन, अहमदाबाद और खेड़ा में आपने जिस लगन, निष्ठा और तत्परता से काम किया था वैसे ही उन दिनों में सर-कार की सहायता के लिए किया। काम का अधिक बोझ निर्बल देह संभाल न सका। पेट दर्द और संग्रहणी ने आ दबाया। प्राकृतिक

चिकित्सा पर इतना दृढ़ विश्वास था कि जीवन के अत्यन्त संकटापन्न और निराशापूर्ण होने पर भी आपने दवा नहीं ली। बर्फ़ का इलाज कराते रहे।

यद्यपि उग्र राजनीतिज्ञ आपकी इस सरकारी सहायता एवं सेवा से बहुत अधिक असन्तुष्ट थे, तो भी आपके व्यक्तित्व की गहरी छाप उनके हृदयों पर लगती जा रही थी। आम जनता भी आपकी ओर आकर्षित हो चुकी थी। गुजरात-सभा के आप सभापति थे। १९१७ में माराटफोर्ड-सुधार योजना के लिए भारत मंत्री माराटेगू के भारत आने पर देहली में आपके प्रस्ताव पर उनको हज़ारों भारतीयों के हस्ताक्षरों से एक आवेदन-पत्र दिया गया। जिसमें भारतीयों की राजनैतिक आकांक्षाओं और मांगों का उल्लेख किया गया था। उसी वर्ष १७ सितम्बर को बाम्बे कॉपरेटिव कान्फ्रेंस, ३ नवम्बर को गुजरात राजनैतिक सम्मेलन, गुजरात-शिक्षा-परिषद और दिसम्बर में कलकत्ता में कांग्रेस के साथ होनेवाले समाज-सुधार-सम्मेलन के भी आप सभापति बनाये गये थे।

काला-कानून और सत्याग्रह

युद्ध में की गई सेवा और सहायता का पुरस्कार राजनैतिक-अधिकारों के रूप में पाने की प्रतीक्षा में बैठे हुए भारतीयों की आशा पर रौलेट ऐक्ट बनाकर सरकार ने तुषारपात कर दिया। उसके विरुद्ध देश में प्रचण्ड आन्दोलन हुआ, सभाएं हुईं सरकार की आरज़ू-मिन्नत की गई, तार दिये गये, आवेदन-पत्र भेजे गये, व्यवस्थापिका-सभा के भारतीय-सदस्यों ने एक स्वर से उसका विरोध किया और

सरकारी अधिकारियों को सावधान किया। वैध आन्दोलन का कुछ भी परिणाम न निकलने पर आपने सत्याग्रह शुरु करने की घोषणा की। उस घोषणा ने सूखी घास में चिनगारी फैंकने का काम किया। सत्याग्रह का प्रतिज्ञा-पत्र २८ फरवरी १६१६ को प्रकाशित किया गया और आन्दोलन का संचालन करने के लिए बम्बई में केन्द्रीय सत्याग्रह-सभा की स्थापना की गई। आपने सारे देश में घूम-घूम कर लोगों को सत्याग्रह का मर्म समझाया। भारतीय सदस्यों ने व्यवस्थापिका-सभा से त्याग-पत्र दे दिये। ३० मार्च को, बाद में ६ अप्रैल को सत्याग्रह-दिवस मनाने की घोषणा की गई। हड़ताल, उपवास और सभा करना तय हुआ। केन्द्रीय-समिति ने जब्त राजनैतिक साहित्य बेचने का निश्चय किया। आपने बिना डिक्लेरेशन लिये सत्याग्रह-पत्र निकाला। बम्बई, देहली आदि स्थानों पर जनता के उत्साह की सीमा नहीं थी। देहली में ३० मार्च को ही पहली हड़ताल मनाई गई थी और उस दिन वहां गोली भी चल गई थी। पंजाब में ६ अप्रैल को दंगे होने पर सरकार की ओर से फौजी शासन की घोषणा कर दी गई थी। जलियांवाला का निर्दयता पूर्ण भयानक गोली-काण्ड या हत्या-काण्ड भी उसी दिन हुआ था। उस विकट परिस्थिति के समाचार मिलने पर आप देहली के लिए चल दिये। १० अप्रैल को आपको कोसी स्टेशन से बम्बई लौटा दिया गया और देहली तथा पंजाब में आपका प्रवेश बन्द कर दिया गया। सत्याग्रह के लिए आवश्यक एवं अनुकूल अहिंसात्मक वातावरण न रहने से १८ अप्रैल को साथियों के असहमत और असन्तुष्ट होने पर भी आपने सत्याग्रह स्थगित कर दिया।

पञ्जाब-काण्ड और असहयोग तथा सत्याग्रह

आप आन्दोलन स्थगित करने में लगे हुए थे और सरकार पञ्जाब में फौजी शासन की तह में भयानक दमन करने में लगी हुई थी। १८५७ के स्वतन्त्रता-युद्ध के-से भयानक विद्रोह की कल्पना कर सरकार ने उसको कुचलने में अपना सारा ज़ोर लगा दिया था। स्थानीय शासनोन्मत्त गोरे फौजी अधिकारियों ने कहीं-कहीं नीचता की पराकाष्ठा कर डाली थी। लोगों को पेट के बल चलाया गया, सड़कों पर टिकटिकी बांधकर कोड़े लगाये गये, युनियन ज़ैक की सलामी जबरन् कराई गई, स्त्रियों की भी कहीं-कहीं बेइज्जती की गई, हवाई जहाज से बम गिराये गये और प्रायः सभी सम्पादकों तथा नेताओं को गिरफ़्तार करके लम्बी-लम्बी सजायें दी गईं। ये सब समाचार पञ्जाब के बाहर न जायँ, इसलिए सब समाचार-पत्र और आने-जाने के सब साधन बन्द कर दिये गये थे। फ़ौजी शासन की उस गरमी में आकाश में पक्षियों तक का उड़ना सम्भव नहीं था। लुक-छिप कर भाग निकलनेवाले लोगों से मिलनेवाले समाचारों को सुनकर रोमाञ्च हो जाता था। जांच करने की मांग सरकार ने बहरे कानों सुनी। कांग्रेस ने मोतीलालजी, देशबन्धु दास, अब्बास तैय्यबजी, जयकर और आपकी एक जांच कमेटी नियुक्त की। सरकार ने भी हंटर कमेटी नियुक्त की। दोनों कमेटियों की रिपोर्ट से अत्यन्त भयानक, रोमाञ्चकारी और कल्पनातीत अमानुष कृत्यों की कलई खुलने पर भी सरकार ने अपराधियों को कोई दण्ड नहीं दिया, वरन् गोरों ने उनका विशेष रूप में सम्मान किया। माण्टफोर्ड सुधारों के अनुकूल वातावरण बनाने के लिए

१६१६ की अमृतसर की कांग्रेस के ठीक पहले शाही घोषणा होकर बहुत से राजबन्दियों को छोड़ दिया गया। आपने समझा कि सरकार का मन कुछ बदल रहा है। अमृतसर-कांग्रेस में मराटफोर्ड सुधारों को लेकर लोकमान्य, देशबन्धु और आपमें बहुत मतभेद हो गया॥ आप सुधारों को स्वीकार करने के पक्ष में थे। पर, घटनाचक्र बहुत तेजी से घूम रहा था। मुसलमानों में खिलाफत को लेकर उत्तेजना फैल रही थी और देश में पञ्जाब काराड को लेकर असन्तोष पैदा हो रहा था। १६१६ के अन्तिम दिनों में जो गांधोजी सरकार के साथ सहयोग करने पर तुले हुए थे, वही १६२० के ५-६ मास बीतते-न-बीतते ऐसे असहयोगी बन गये कि उन्होंने सारे ही राष्ट्र को असहयोग के रङ्ग में रङ्ग दिया। अली भाइयों के और आपके सहयोग से देश का सारा रङ्ग एक दम बदल गया। पहली अगस्त को असहयोग-आन्दोलन के लिए सारे देश में हड़ताल मनाना तय हुआ। भारत के राजनैतिक गगन-मण्डल में एक ओर पूर्णिमा का चांद प्रकट हो रहा था और दूसरी ओर सूर्य अपनी किरणे समेटकर अस्ताचल की ओर जा रहा था। उसी दिन पहली अगस्त को बड़े सवेरे जब देशवासी असहयोग की हड़ताल मनाने की तय्यारी कर रहे थे, एकाएक दारुण समाचार सुन पड़ा कि लोकमान्य चल बसे। हृदय-सम्राट् के रिक्त सिंहासन पर देशवासियों ने आपका अभिषेक किया। सितम्बर १६२० को कलकत्ता में लाला लाजपतराय के सभापतित्व में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन होकर सारे देश ने आपके अहिंसात्मक-असहयोग के कार्यक्रम को स्वीकार किया। रही-सही कमी नागपुर-कांग्रेस में दिसम्बर

१९२० में पूरी हो गई। आपके नेतृत्व में देश ने स्वावलम्बन के नये मार्ग का अवलम्बन किया। काँग्रेस का सब ढांचा बदल गया। नई नियमावली बनाकर राष्ट्रीय संगठन का काम नये सिरे से किया गया। सरकारी खिताब, वकालत, अदालत, कौंसिलें, स्कूल-कालेज और विदेशी वस्त्र आदि के बहिष्कार की चारों ओर धूम मच गई। सारे देश में तूफान पैदा होगया। आपके आदेश को पूरा करने में सारे देश ने एक व्यक्ति की तरह कार्य करके अद्भुत संगठन और अलौकिक कार्य क्षमता का विलक्षण परिचय दिया। सत्याग्रह शुरू करने के लिए तिलक-स्वराज्य-फण्ड में एक करोड़ रुपया जमा करके कांग्रेस के एक करोड़ सभासद बनाने और २० लाख चरखे चालू करने का कार्यक्रम नियत अवधि में पूरा होना असम्भव प्रतीत होरहा था, किन्तु जब वह पूरा हुआ, तब देश को अपनी शक्ति और शासकों को आपके प्रभाव का कुछ परिचय मिला। 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' द्वारा आप अपना सन्देश चारों ओर पहुंचाते थे। चारों ओर घूम-घूमकर भी आपने जागृति पैदा की। १९२१ में अहमदाबाद कांग्रेस के दिनों में युवराज के आगमन के बहिष्कार के सिलसिले में गिरफ्तारियाँ जोरों पर थीं। उस सफल बहिष्कार से भी राष्ट्र में आत्मविश्वास की भावना जागृत हुई। युवराज के बम्बई आने पर वहाँ कुछ उपद्रव हो गया था, जिसके लिए बतौर प्रायश्चित्त के आपने एक सप्ताह का उपवास किया था। १४ जनवरी १९२२ को बम्बई में सरकार के साथ सुलह करने पर विचार करने को एक कानफरेंस हुई। देशबन्धु दास और मौलाना अबुल कलाम आज़ाद जेल में थे। मालवीयजी ने

मध्यस्थ होकर सन्धि के लिए उद्योग किया। चारों ओर तार खटखटाये गये। परिणाम कुछ न निकला। आपने बारडोली में सत्याग्रह शुरू करने की सरकार को सूचना दे दी। इस प्रकार बारडोली हिन्दुस्तान की थर्मापोली बनने की तय्यारी में था कि गोरखपुर ज़िले के चौरी चौरा में उतेजित जनता ने पुलिस चौकी पर आक्रमण कर दिया। पुलिस के २९ आदमी मार डाले गये। आपको अनुभव हुआ कि देश में अभी वैसी अहिंसात्मक भावना नहीं पैदा हुई जैसी कि असहयोग तथा समुदायिक सत्याग्रह के लिए आवश्यक है। उस दुर्घटना को आपने ईश्वरीय चेतावनी समझा और सत्याग्रह स्थागित कर दिया। देहली में आखिर भारतीय काँग्रेस कमेटी का अधिवेशन हुआ। उसमें आपके कार्य का समर्थन किया गया, किन्तु आपकी बहुत तीव्र आलोचना भी की गई। उस निर्णय से देश के सर्वजनिक जोवन, आन्दोलन, जागृती और प्रगति में जो प्रतिक्रिया शुरू हुई कि सरकार ने आपको गिरफ्तार करने का निश्चय कर लिया। कई बार गिरफ्तारी की अफवाहें भी उड़ीं और कहीं-कहीं कई बार हड़ताल आदि भी हुई। अन्त में १० मार्च १९२२ को आप गिरफ्तार किये गये। 'यंग इण्डिया' के चार लेखों के आधार पर आपको राजद्रोह में ६ साल की सजा हुई। गिरफ्तार होने से पहले आपने चरखा-संघ की नींव डाल दी थी। एक करोड़ रुपये का अधिकांश हिस्सा प्रांतीय कांग्रेस कमेटियों के पास ही रखा गया था। अखिल-भारतीय-कोष में आनेवाली रकम का एक बड़ा हिस्सा खादी के कार्य में लगा देना तय हुआ। चरखा-संघ और उसके द्वारा होनेवाली खादी का सब कार्य उसीका परिणाम है।

देश के राजनैतिक जीवन में हुई प्रतिक्रिया, उसके फल-स्वरूप हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष का सूत्रपात, स्वराज्य दल का संगठन, आपके अनुयायियों द्वारा अपरिवर्तनवादी-दल का निर्माण और दोनोंकी पारस्परिक खींचतान के वर्णन का इतना सम्बन्ध इस जीवन के साथ नहीं है। इसलिए उनकी ओर संकेत मात्र कर देना पर्याप्त होगा।

आपरेशन और रिहाई

जनवरी १६२४ में जेल में आपका स्वास्थ बहुत बिगड़ गया। आपको अपेडिसाइटिस हो गया था जिसका सासून अस्पताल में कर्नल मैडक ने आपरेशन किया और उसके बाद आप रिहा कर दिये गये। बम्बई के उपनगर जुहू में समुद्र तट पर आपने स्वास्थ सुधार के लिए कुछ समय विश्राम किया। बढ़ता हुआ हिन्दू-मुस्लिम-कलह भयानक रूप धारण कर रहा था। जगह-जगह उपद्रव, दंगे और लड़ाइयां हो रही थीं। अगस्त १६२४ में देहली में भी भयानक उपद्रव हुआ। हिन्दू-मुसलमानों में सुलह कराने के लिए आप देहली दौड़े आये और यहां आकर आपने राष्ट्र के पाप के प्रायश्चित के लिए १६ दिसम्बर से २१ दिन का उपवास किया। आपके इस निश्चय से देश कांप उठा। देहली में पण्डित मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एकता-सम्मेलन का अधिवेशन किया गया। उस उपवास के लिए की गई आपकी घोषणा और उन दिनों में प्रकट किये गये आपके विचार मनन योग्य हैं।

राष्ट्रपति

उसी वर्ष बेलगांव में राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) का अधिवेशन आपके सभापतित्व में हुआ और राष्ट्र की शक्ति तथा साधन खादी,

अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य आदि के विधायक कार्यक्रम में लगा देने का निश्चय किया गया। आप और आपके अनुयायी सब ओर से अपना ध्यान हटाकर राष्ट्र-निर्माण के उस कार्य में जुट गये। पं० मोतीलालजी नेहरू के उद्योग से एक कान्फ्रेंस होकर भारत के भावी शासन-विधान की रूप-रेखा तैयार की गई, जिसको राष्ट्रीय मांग के रूप में सरकार के सामने पेश करना १६२८ के कलकत्ता अधिवेशन में स्वीकृत हुआ। वही नेहरू-रिपोर्ट थी। युवक-दल उससे असन्तुष्ट था आपके प्रयत्न से समझौता हुआ और सरकार को उस मांग पर विचार करने के लिए एक वर्ष का समय दिया गया। आपने विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के आन्दोलन में अपनी सब शक्ति लगा दी। सारे देश का एक बार फिर दौरा किया। बर्मा जाते हुए आपके हाथों कलकत्ता में विदेशी वस्त्रों की प्रचण्ड होली जलाई गई। पुलिस ने उस पर आक्रमण किया। आप गिरफ्तार किये गये, मुक़दमा चला और आप पर एक रुपया जुर्माना किया गया। अदालत में ही किसी मित्र ने वह अदा कर दिया, जिसको आपने बहुत बुरा माना।

देश में फिर से जागृति, जीवन और आन्दोलन पैदा हो रहा था। माण्टफोर्ड-सुधार-योजना के अनुसार नवीन सुधारों के लिए जांच-कमीशन बिठाने का समय भी हो गया था। साइमन कमीशन की सरकार की ओर से नियुक्ति हुई। उसमें किसी भी भारतीय के नियुक्त न किये जाने से नरम दली भी असन्तुष्ट थे। कांग्रेस के साथ उन्होंने भी उसका बहिष्कार किया। असन्तोष ने एक बार फिर उग्र रूप धारण किया। लाहौर कांग्रेस में जाते हुए आप २३ दिसम्बर १६२६ को वायसराय

लार्ड अर्विन से मिले, पर मुलाकात का फल कुछ न हुआ। पं० जवाहर लाल के सभापतित्व में, लाहौर कांग्रेस में, ३१ दिसम्बर की आधी रात को पूर्ण स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र पढ़ा गया। आप तब भी सरकार से सुलह करने को तैयार थे। आपने उस समय जो शर्तें पेश की थीं, उनमें कुछ निम्न लिखित थीं—मादक द्रव्य निषेध, विनिमय की दर १ शिलिंग ४ पेंस की जाय, जमीन के लगान और फौजी खर्च में ५० प्रतिशत कमी की जाय और नमक-कर उठा दिया जाय। सरकार उन शर्तों को भला कब मान सकती थी।

१९३० का प्रचण्ड आन्दोलन

१५ फरवरी १९३० को अहमदाबाद में कांग्रेस की कार्य समिति का अधिवेशन होकर आपको कांग्रेस का डिक्टेटर बना दिया गया। रेजिनाल्ड रेनाल्ड नाम के एक अंग्रेज़ के हाथ आपने वायसराय को पत्र भेजकर सूचित किया कि यदि १० मार्च तक कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला तो नमक-क़ानून के विरुद्ध सत्याग्रह शुरू कर दिया जायगा। वायसराय का उत्तर इतना असन्तोषजनक था कि आपने लिखा था कि "मैंने घुटने टेककर रोटी मांगी थी, पर मुझको पत्थर का टुकड़ा दिया गया है। अंग्रेज जाति केवल बल के आगे ही झुकना जानती है।" १२ मार्च को ७९ सत्याग्रहियों के साथ आपने डांडी की उस महायात्रा के लिए, भारत को स्वराज्य न मिलने तक आश्रम न लौटने की प्रतिज्ञा करके, प्रस्थान कर दिया, जिसको केवल शासक ही नहीं, किन्तु अधिकांश देशवासी भी निरर्थक समझते थे। पर उस यात्रा ने देश की सूखी हड्डियों में जान फूंक दी। २१ मार्च को कार्य-

समिति का एक और अधिवेशन होकर यह घोषणा कर दी गई कि ६ अप्रेल को और यदि गान्धीजी उससे पहले गिरफ़्तार कर लिये जायँ तो उनकी गिरफ़्तारी के बाद से सारा देश सत्याग्रह शुरू कर दे। ६ अप्रेल को डांडी पहुंचकर आपके नमक क़ानून की अवज्ञा करने के साथ ही सारे देश में चारों ओर आन्दोलन की प्रचण्ड अग्नि सुलग उठी। इससे आपको ५ मई को गिरफ़्तार करके १८२७ के रेगुलेशन २५ के अनुसार यरवदा में नजरबन्द कर दिया गया। दमन जितना बढ़ता था उससे आन्दोलन दुगना तीव्र हो उठता था। साधारण क़ानूनों से आन्दोलन को दबाना जब सम्भव नहीं रहा, तब आर्डीनेन्स बनाये गये और उनके बल पर शासन चलाने का यत्न किया गया। आन्दोलन का इतिहास एक स्वतन्त्र ग्रन्थ का विषय है। स्त्रियों की आन्दोलन में जो जागृति हुई, वह एक अलौकिक चमत्कार था। परदे में भी चूल्हे-चौके के अन्धकार में बाहर की दुनिया से बहुत दूर रहने वाली भारतीय नारी के साहस, धैर्य, हिम्मत और त्याग ने संसार को चकित कर दिया। ३० जुलाई को सप्रू-जयकर वायसराय से मिले। और २३ को गान्धीजी से। १३ अगस्त को श्री मोतीलाल जी नहरू और श्री जवाहरलाल जी को यरवदा जेल ले जाया गया। देवी सरोजिनी, नेहरु द्वय, सप्रू-जयकर और आपकी वहां जेल में ही हुई कान्फरेंस का कुछ फल न निकला। ५ सितम्बर को सब पत्र-व्यवहार प्रकाशित करके सन्धि चर्चा के भंग होने का समाचार भी प्रकाशित कर दिया गया। जनवरी में फिर संधि चर्चा हुई। २६ जनवरी १६३१ को कार्य समिति के गैर कानूनी होने की आज्ञा लौटा ली गई और उसके सब सदस्य

छोड़ दिये गये। ५ मार्च को समझौता होकर सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। उस आन्दोलन में कोई एक लाख स्त्री-पुरुष जेल गये होंगे। वह समझौता स्पष्ट ही कांग्रेस की विजय का चिह्न था। सरकार को नमक-कानून के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें स्वीकार करनी पड़ीं। करांची में २८, २६, ३० मार्च को कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। गोलमेज-परिषद् के लिए आपको कांग्रेस का एकमात्र प्रतिनिधि चुना गया। अन्तिम समय तक आपका गोल-मेज-परिषद् के लिए इंग्लैण्ड जाना सन्दिग्ध-सा रहा। गुजरात के किसानों की शिकायतों की जांच को लेकर मामला तन रहा था। इसी के लिए आप वायसराय से शिमला मिलने गये और वहां से सीधे २६ अगस्त को लन्दन के लिए विदा होगये। गोल-मेज-परिषद् के अलावा इंग्लैण्ड में आपने और भी बहुत काम किया। मेंचेस्टर आप विशेष रूप से गये। परिषद् में दिये गये आपके स्पष्ट भाषणों और आपके सात्विक जीवन का वहाँ के लोगों पर बहुत प्रभाव पड़ा। लन्दन से फ्रांस में रोम्यांरोलां और इटली में मुसोलिनी से मिलते हुए आप २८ दिसम्बर १६३१ को बम्बई पहुंचे।

फिर प्रचण्ड आन्दोलन

इंग्लैण्ड से आप निराश लौटे ही थे कि यहां की परिस्थिति भी कुछ कम निराशापूर्ण नहीं थी। देहली के समझौते के पालन न करने की सरकार से लोगों को शिकायत थी। सीमा प्रांत में खुदाई खिदमतगारों और संयुक्त प्रान्त में किसानों तथा उनके आन्दोलनों को कुचलने के लिए विशेष आर्डिनेन्स बनाकर पूरे वेग के साथ दमन का चक्र चलाया जा रहा था। आपके भारत में पहुंचने पर बम्बई में कांग्रेस की

कार्य समिति की विशेष बैठक उस समय की परिस्थिति पर विचार करने के लिए बुलाई गई थी। पं० जवाहरलालजी और श्री शेरवानी को बम्बई जाते हुए इलाहाबाद के पास ट्रेन में ही गिरफ़्तार कर लिया गया था। कार्य-समिति की सलाह लेकर २९ दिसम्बर को वायसराय को मिलकर परामर्श करने के बारे में आपने तार दिया। सरकार की ओर से वायसराय और कांग्रेस की ओर से गान्धीजी में परस्पर छः दिनों तक जो तार-व्यवहार हुआ, वह महत्वपूर्ण है। आपकी मुलाकात करने तक की मांग स्वीकार न की गई। उन तारों में वायसराय की ओर से जो धमकी दी गई थी, उससे स्पष्ट था कि सरकार ने आन्दोलन प्रारम्भ होने से पहले ही कुचल देने की पूरी तैयारी कर ली थी। इस-लिए कार्य-समिति ने एक लम्बा प्रस्ताव स्वीकृत करके देश को सार्व-जनिक और चहुंमुखी सत्याग्रह शुरू करने के लिए आह्वान कर दिया। लगान बन्दी को भी उसमें शामिल किया गया था। अब की बार आन्दोलन सरकार के दमन के साथ शुरू हुआ था। ४ जनवरी १९३२ की रात को चार आर्डीनेन्स जारी किये गये, बाकी के मसविदे भी तैयार करके रख लिये गये थे और ५ तारीख की रात में चारों ओर धड़ाधड़ गिरफ्तारियां, ज़ब्तियां, ज़मानतें और नजरबन्दियां शुरू कर दी गई थीं। ४ जनवरी के बड़े सबेरे आपको और सरदार पटेल को शाही कैदी बनाकर यरवदा पहुंचा दिया गया। १९३० में आन्दोलन के अन्तिम दिनों में लाठियों से काम लिया गया था, इस बार पहले ही दिन से भयानक लाठी वर्षा शुरू की गई। भेड़-बकरियों से भी अधिक बुरी तरह सत्याग्रहियों को पीटना शुरू किया गया। उन्हें गिरफ़्तार

न करके घायल कर सड़कों पर बिछा दिया जाता था। राष्ट्र ने अपूर्व साहस, अनुपम त्याग, निःसीम कष्ट सहन और अलौकिक धैर्य का अद्भुत परिचय दिया। जिस आन्दोलन को शुरू में ही दबा देने का सरकार निश्चय किये हुए थी उसको आर्डीनेन्सों की अवधि पूरी हो जाने के बाद भी दबाया न जा सका। इसलिए उनको क़ानून में परिणत कर दमन को शासन का स्थिर आधार बना लिया गया। १६३२ में देहली में और १६३३ में कलकत्ता में कांग्रेस के अधिवेशन सरकारी हुक्मों की अवज्ञा करके ही किये गये थे। सब आन्दोलन के गौरवपूर्ण इतिहास का सम्बन्ध इस जीवनी के साथ इतना नहीं है, जितना कि कांग्रेस के इतिहास के साथ है।

हरिजन-आन्दोलन

लन्दन की गोल-मेज-परिषद में ही आप यह समझ गये थे कि दलित कही जानेवाली जातियों को हिन्दुओं से पृथक निर्वाचन के अधिकार देकर हिन्दुओं में फूट पैदा करके राष्ट्र को कमजोर बनाने की चाल चली जा रही है। वहां ही आपने उसका विरोध किया था और प्राणों की बाजी लगाकर उसको विफल बनाने का निश्चय भी प्रकट कर दिया था। जेल से ११ मार्च १६३२ को सर सैम्यूएल होर को आपने इस आशय का पत्र भी लिखा दिया था। उस सूचना को अनसुना कर ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने अपनी कूटनीति से काम लेना चाहा और साम्प्रदायिक निर्णय में हिन्दुओं से दलित जातियों को अलग करके विशेषाधिकार दे दिये। १८ अगस्त को आपने प्रधान-मंत्री को उसके विरोध में २१ सितम्बर से आमरण उपवास करने की सूचना दी। नियत दिन पर

उपवास शुरु हो गया। उसी समय वह पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया गया। सारे देश में एकाएक सन्नाटा छा गया, फिर आपके प्राणों की रक्षा के लिए खलबली मच गई। बम्बई में हिन्दू नेता एकत्रित हुए और पूना-पैक्ट के नाम से दलितों और सवर्ण हिन्दुओं में समझौता होकर पृथक निर्वाचन रद्द किया गया। २६ सितम्बर को सरकार की ओर से उसकी स्वीकृति की घोषणा हुई। शाम को ५ बजे आपने अपना उपवास भंग किया। हरिजन-आन्दोलन के संचालन के लिए आपको यथेष्ट सुविधायें भी दे दी गई और जेल से ही आप उसका संचालन करने लग गये। बम्बई में हिन्दू नेताओं ने श्री० घनश्याम दास बिड़ला के सभापतित्व में अस्पृश्यता-निवारण-संघ की स्थापना की, वही संघ इस समय देश व्यापी हरिजन-आन्दोलन का संचालन 'हरिजन-सेवक-संघ' के नाम से कर रहा है। युगों का काम महीनों और महीनों का दिनों में हो गया अस्पृश्यता-निवारण की आंधी भी एक बार पूरे वेग के साथ सारे देश में फैल गई। उसका बाह्यरूप वैसा न रहा, किन्तु वह अपना प्रभाव और प्रवाह ऐसा चिरस्थाई बना गई कि उसके सामने सदियों के पापमय कलङ्क का बना रहना असम्भव-सा हो गया है।

अपने साथियों के पापाचरण, कमजोरी और पतन के लिए आप सदा ही प्रायश्चित करते रहे हैं। हरिजन-आन्दोलन में भी कुछ ऐसे साथी आ गये थे, जिनकी अपवित्रता को दूर करने के लिए ८ मई १६३३ को आपने २१ दिन का फिर उपवास किया। पिछले उपवास के छः दिन में ही आपकी अवस्था चिन्ताजनक हो गई थी। इसलिए इस उपवास का समाचार बहुत ही चिन्ताजनक था। सारे देश का ध्यान

आपकी ओर ही लगा रहता था। देशवासियों ने अंगुलियों पर गिन-गिन कर इक्कीस दिन पूरे किये।

उपवास के शुरु होते ही सरकार ने आपको रिहा कर दिया। पूना में वह उपवास पूरा किया गया। सत्याग्रह आन्दोलन भी छः सप्ताह के लिए स्थगित करदिया गया। इस बीच में सरकार को आपने फिर सुलह के लिए इशारा किया, सरकार की ओर से जिसका उत्तर बहुत रूखा मिला। सरकार अपने दुराग्रह पर अड़ी हुई थी, वह सदा और सर्वदा के लिए सत्याग्रह का अन्त चाहती थी। आप और कांग्रेस के अन्य नेता वैसा करने के लिए तय्यार नहीं थे। आप उन गुप्त तरीकों से भी सहमत नहीं थे, जिनसे लुक-छिपकर सरकार को धोखा देकर आन्दोलन चलाया जा रहा था। आप उसको सत्याग्रह की नीति के प्रतिकूल समझते थे। पूना में नेताओं की गुप्त मन्त्रणा हुई। उसके निर्णय और आपके परामर्श के अनुसार सामूहिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया, कांग्रेस कमेटियां तोड़ दी गईं, केवल व्यक्तिगत सत्याग्रह करने का मार्ग खुला रखा गया।

फिर गिरफ्तारी

अठारह वर्ष की साधना का परिणाम-स्वरूप केवल साबरमती का सत्याग्रह-आश्रम कहने को आपकी अपनी एक चीज़ था। आप अपना सर्वस्व राष्ट्र के लिए न्यौछावर कर चुके थे और वह आश्रम भी उसी न्यौछावर का चिह्नमात्र था, किन्तु उसमें कुछ ममता अवश्य थी। राष्ट्र के लिए उसका भी त्याग कर आपने सब आश्रमवादियों को युद्ध के लिए आमन्त्रित किया। आश्रम खाली करके सरकार के आधीन

कर दिया गया, किन्तु जब सरकार ने उस दान को स्वीकार न किया, तो उसे हरिजन-आन्दोलन की भेंट कर दिया गया। पहली अगस्त को ३२ आश्रमवासियों के साथ रास की ओर प्रस्थान करने की सूचना आपने सरकार को दी। आप सब साथियों के साथ ३१ जुलाई की रात को गिरफ्तार कर लिये गये। पूना ले जाकर आपको ४ अगस्त को पूना की सीमा पार न करने की शर्त लगाकर छोड़ा गया। उस हुक्म की अवज्ञा करने पर आप फिर कैद किये गये। एक साल की सजा हुई और 'ए' श्रेणी में गये। हरिजन-आन्दोलन के लिए पहले की-सी सुविधायें न मिलने के कारण आपने १६ अगस्त से फिर उपवास शुरु किया। २० अगस्त को आपको सासून हस्पताल भेज दिया गया। और कस्तूरबा को आपकी सेवा सुश्रूषा के लिए बिना किसी शर्त के जेल से रिहा करके आपके पास पहुंचा दिया गया दीनबन्धु एण्डरूज ने समझौता कराने के लिए बहुत चेष्टा की। समझौता तो न हुआ किन्तु २३ अगस्त की शाम को आपको रिहा कर दिया गया। आपके लिए बहुत द्विविधा पूर्ण स्थिति पैदा हो गई। आत्मा के प्रकाश में अगले मार्ग की खोज करते हुए आपने निश्चय किया कि एक वर्ष की अवधि में आपको अपने को एक मात्र हरिजन-आन्दोलन में लगा देना चाहिए इसी बीच पण्डित जवाहरलालजी को उनकी माताजी की बीमारी के कारण जेल से जल्दी छोड़ दिया गया था। माताजी का स्वास्थ्य संभालने पर वह आपसे मिलने आये। दोनों नेताओं में जो विचार-विनिमय हुआ, वह पत्र-व्यवहार के रूप में देशवासिसों के पथ-प्रदर्शन के लिए प्रकाशित कर दिया गया।

हरिजन-दौरा

आप अपनेको हरिजन-आन्दोलन में लगा देने का निश्चय कर चुके थे। नवम्बर से आपने उसके लिए समस्त भारत का दौरा शुरू किया। उससे पहले भी आपने कई दौरे किये थे, किन्तु यह दौरा उन सबसे अधिक महत्वपूर्ण था। विजयी सिकन्दर और महत्वाकांक्षी तैमूरलंग की विजय-यात्राओं को लोग भूल जायेंगे, किन्तु यह यात्रा सदा स्मरणीय बनी रहेगी। देश के सदियों के पाप, हिन्दू-धर्म के कलङ्क और समाज के अभिशाप को दूर करने के लिए आपने यह यात्रा की थी। देश में राजनैतिक आन्दोलन की दृष्टि से प्रतिक्रिया शुरू हो चुकी थी, पराजित होकर सत्याग्रह आन्दोलन के मैदान से भागने का आप पर दोषारोपण किया जा रहा था। कहा जा रहा था कि गान्धी-युग बीत गया, अब आपको कोई पूछेगा भी नहीं, और बार-बार व्यवसाय की मन्दी के कारण देश की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी; फिर भी आपका जहां-तहां अपूर्व स्वागत हुआ, विजयी नेता की तरह लोगों ने आपका अभिनन्दन किया और लगभग ८ लाख रुपया आपकी झोली में डालकर आपके प्रति अपने प्रेम, श्रद्धा तथा भक्ति का परिचय दिया। सब परिस्थिति को देखते हुए यह असाधारण सफलता थी। दो-तीन दुःखद घटनायें भी इस यात्रा में हुईं। पुरातनपन्थी भाई आप-से असन्तुष्ट और आप पर क्रुद्ध भी थे। उनका एक दल स्थान-स्थान पर काली झण्डियाँ लेकर आपके आगे-पीछे घूमा करता था और आप-के कार्य में विघ्न डालने का निरन्तर यत्न किया करता था। देवघर में भड़काये हुए लोगों ने आपकी मोटर पर लाठियों से हमला किया,

पूना में म्यूनिसिपल-मानपत्र के लिए जाते हुए एक दूसरी मोटर को आपकी मोटर समझ कर उसपर बम फेंका गया, और अजमेर में विरोधी-दल के पं० लालनाथ का किसीने सिर फोड़ दिया। अन्तिम दुर्घटना का सब दोष अपने ऊपर ले आपने ७ दिन का उपवास किया। उत्कल प्रान्त की चरम-सीमा की गरीबी देखकर आप इतने दुःखी हुए कि वहां का दौरा नंगे पैर पैदल किया और गांवों में बिना किसी विशेष व्यवस्था तथा आडम्बर के गांववालों का-सा ही जीवन व्यतीत किया। एक और घटना का भी यहां उल्लेख कर देना आवश्यक है। श्रीयुत केलप्पन ने गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियों को नोटिस दिया था कि यदि १ जनवरी १९३४ को मन्दिर के द्वार हिन्दूमात्र के लिए न खोले गये, तो वह आमरण उपवास शुरू कर देंगे। उनके साथ आपके भी उपवास करने की सम्भावना थी। इसलिए उस आन्दोलन ने बहुत जोर पकड़ा। मदरास-कौंसिल और असेम्बली में कुछ बिल भी उस आन्दोलन के सम्बन्ध में पेश हुए, जिनके लिए श्रीयुत राजगोपालाचार्य और आपने भी विशेष उद्योग किया। मन्दिर में पूजा के लिए जानेवालों का मत भी जाना गया। २०,१६३ में से १५,५६३ अर्थात् ७७ प्रतिशत मन्दिर-प्रवेश के अनुकूल थे, १३ प्रतिकूल और १० उदासीन थे। अनुकूल में ८,००० मत स्त्रियों के थे। उपवास की घड़ी इस आन्दोलन के वेग में टल गई।

बिहार-भूकम्प—फिर कौंसिलों की ओर

१६ जनवरी को सारा देश बिहार के प्रलय-प्रदेश के समाचार सुनकर निस्तब्ध रह गया। सत्याग्रह को लोग भूल गये और मर्माहत

बिहार की मरहमपट्टी के लिए दौड़ पड़े । आपको भी हरिजन-दौरे में से समय निकालकर बिहार जाना पड़ा और वहाँ का भी आपने दौरा किया । बिहार में आपने यह अनुभव किया कि सत्याग्रह-आन्दोलन को और अधिक समय जारी रखना अभीष्ट नहीं है । आप एक वक्तव्य निकालने को ही थे कि देहली में ३१ मार्च १६३४ को डा० अन्सारी की अध्यक्षता में नेताओं का सम्मेलन हुआ, जिसमें स्वराज्य-दल को पुनः सङ्गठित करके असेम्बली के आगामी चुनाव की लड़ाई लड़ने की आज्ञा कांग्रेस से प्राप्त करने का निश्चय किया गया । कुछ नेता पटना आकर आपसे मिले । ७ अप्रैल को सत्याग्रह स्थगित करने का आपने वक्तव्य निकाल दिया और अपने लिए सत्याग्रह करने की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता आपने कायम रखी । कौंसिल-प्रेमियों को कौंसिल-प्रवेश के लिए आपने वरदान भी दे दिया । १८, १६, २० मई को पटना में कार्य-समिति और महासमिति की बैठकें हुई । उनमें आपके भाषण अत्यन्त मार्मिक, स्पष्ट और महत्वपूर्ण थे । सत्याग्रह से देश ने फिर कौंसिलों की ओर मुँह फेर लिया । इस कार्य की निन्दा हुई, कड़ी आलोचना हुई और आप पर कुछ आक्षेप भी किये गये, किन्तु आप अपने निश्चय पर अटल रहे और आपने कौंसिलों के कार्यक्रम का वैसाही समर्थन किया, जैसा कि आप सत्याग्रह का करते थे । यह भी आपके लिए कर्तव्य की ही पुकार थी । साम्प्रदायिक बटवारे के सम्बन्ध में कांग्रेस की तटस्थ-नीति भी आपके व्यक्तित्व का परिणाम थी और वह आपके लिए अपनी अन्तरात्मा की ध्वनि थी । महामना मालवीय जी और लोकनायक बापूजी अणे के कार्य-समिति से अलग होने

और देश में विरोधी आन्दोलन के पैदा होजाने पर भी आपने अपनी अन्तरात्मा की ध्वनि को दबाया नहीं। उसपर आप दृढ़ रहे और आपके साथ कांग्रेस भी दृढ़ रही। देश में फिर से कांग्रेस-कमिटियों के संगठन का जाल फैलने में अधिक समय नहीं लगा। राष्ट्रपति सरदार पटेल जेल में थे। श्री जमनालाल बजाज की अध्यक्षता में कार्य-समिति ने अपना काम शुरू किया। वर्धा, बनारस और बम्बई आदि में कांग्रेस के अधिवेशन तक कार्य-समिति की जो बैठकें हुई, उनका सब कार्य आपकी निगरानी और पथप्रदर्शकता में ही होता रहा।

बम्बई-कांग्रेस

अक्तूबर के अन्तिम सप्ताह में बम्बई में कांग्रेस का शानदार अधिवेशन हुआ। उसकी सफलता का अधिकांश श्रेय आपके व्यक्तित्व को ही है। अधिवेशन से पहले आपने कांग्रेस से अलग होने और कांग्रेस-नियमावली में संशोधन पेश करने के सम्बन्ध में एक वक्तव्य निकाला था। समाचार-पत्रों में दोनों विषयों की बहुत चर्चा होती रही और काँग्रेस के अवसर पर कार्य-समिति, महासमिति तथा खुले अधिवेशन में भी चर्चा हुई। आप पर अलग न होने के लिए बहुत जोर डाला गया। पर, अन्तरात्मा की साक्षी मिट जाने के बाद आपके निश्चय को कौन बदल सका है? बम्बई के अधिवेशन की समाप्ति पर आपने अवकाश ग्रहण कर लिया। किन्तु इस अधिवेशन में भी राष्ट्र को आपने दो कीमती चीजें भेंट कीं—एक काँग्रेस का नया विधान और दूसरा ग्राम-उद्योग-संघ। अवकाश ग्रहण कर लेने पर भी अपने परामर्श से काँग्रेसवादियो को वंचित न रखने और आवश्यकता के समय राजनैतिक

त्र में फिर लौट आने के लिए आप वचनबद्ध हैं। बम्बई-कॉंग्रेस के बाद से आप ग्राम-उद्योग-संघ के कार्य में लगे हुए हैं। हाथ के पिसे आटे, हाथ के कुटे चावल और चीनी की जगह गुड़ को काम में लाने का आदेश देकर आपने इस कार्य का श्रीगणेश किया है। कार्य-समिति की बैठकों के समय और वैसे भी आपके परामर्श से नेता और कार्यकर्ता लाभ उठाते हैं। 'हरिजन' पत्र द्वारा आपके ग्राम-उद्योग-संघ के कार्य एवं परीक्षाओं और हरिजन-आन्दोलन की प्रगति का समाचार सारे देश में फैलता रहता है। बिना किसी आन्दोलन-प्रदर्शन और धूम-धाम के जो ठोस कार्य आप कर रहे हैं, देश की आँखें उसी ओर लगी हुई हैं। देश की सूखी हड्डियों में सत्याग्रह एवं असहयोग द्वारा आपने जीवन पैदा किया है और अब आप ग्राम-उद्योग-संघ द्वारा उसकी हिली नसों में रक्त-संचार कर रहे हैं।

व्यक्तिगत-साधना की दृष्टि से आपके जीवन की दो-एक बातें विशेष महत्वपूर्ण हैं। आपने प्रति सोमवार को मौन रहने का नियम किया हुआ है। इस मौनावलम्बन में आप लिखने का बहुत-सा कार्य कर लेते हैं। पहले 'यंग इण्डिया' और 'नवजीवन' के और अब 'हरिजन-बन्धु' तथा 'हरिजन-सेवक' के सम्पादन का विशेष कार्य आप इसी दिन करते हैं। १९३४ में वर्धा में एक मास के मौन-व्रत का अनुष्ठान भी आपने किया था। स्वास्थ्य के लिए आहार-सम्बन्धी परीक्षण करने का शौक आपको बहुत पुराना है। 'आरोग्य-दिग्दर्शन' पुस्तक वैसे ही परीक्षणों का परिणाम है। इस वृद्धावस्था में भी आप ऐसे परीक्षण बराबर करते रहते हैं।

आपका व्यक्तित्व जिस प्रकार सर्वव्यापी है, उसी प्रकार आपकी राष्ट्र-सेवा भी सर्वव्यापी और चहुंमुखी है। धर्म, अर्थ, समाज, राजनीति, साहित्य, अध्यात्म आदि का कोई क्षेत्र ऐसा नहीं है, जिसमें अप्रत्यक्ष ही नहीं किन्तु प्रत्यक्ष तौर पर भी आपने कार्य न किया हो। राष्ट्रवासियों के व्यक्तिगत चरित्र निर्माण के और समाज के सामूहिक सुधार के क्षेत्र में आपका व्यक्तित्व प्रकाशस्तम्भ की तरह पथ-प्रदर्शक का काम कर रहा है। इसी प्रकार साहित्य-निर्माण के लिए भी आपके व्यक्तित्व से अद्भुत स्फूर्ति प्राप्त हुई है। गुजराती, हिन्दी और अंग्रेजी में ही नहीं, किन्तु देश की प्रायः समस्त भाषाओं में 'गान्धी-साहित्य' का अपना विशेष स्थान बन गया है। अपने व्यक्तित्व से आपने नैतिकता तथा आध्यात्मिकता का दृष्टिकोण भी बहुत-कुछ बदल दिया है और राजनीति में भी उसका समावेश कर दिया है। हिन्दू-मुसलमानों में राजनैतिक एकता सम्पादन करने में आपको बाह्य दृष्टि से सफलता प्राप्त नहीं हुई है, किन्तु फिर भी उस सांस्कृतिक एकता की आधार-शिला आपने रख दी है, जिस पर राजनैतिक एकता का विशाल भवन खड़ा होने में अधिक समय नहीं लगेगा। मनोभाव और विचार-धारा के प्रवाह को आपने निश्चय ही बदल दिया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। कांग्रेस के मंच पर हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के आसन पर बिठाने और उसके लिए विदेश-समान दक्षिण-भारत के सुदूर प्रदेश में उसको फैलाने का सब श्रेय एकमात्र आपको ही है। वहां की 'हिन्दी-प्रचार-समिति' आपके प्रयत्नों का शुभ परिणाम है। 'हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन' के इन्दौर में १६२५ और १६३५ में हुए

धार्मिक अधिवेशनों के सभापति होकर आपने सम्मेलन में नवजीवन और स्फूर्ति का संचार किया है। हिन्दी की लिपि को सुधारने के प्रयत्नों को आपका आशीर्वाद पूरी तरह है। गोरक्षा के आन्दोलन में भी आप विशेष भाग लेते रहे हैं। सारांश यह है कि देशोन्नति का ऐसा कोई कार्य नहीं जिसको आपका सहयोग प्राप्त न हुआ हो।

इस प्रकार सर्वतोमुखी और सर्वव्यापी कार्यक्रम से, दरिद्रनारायण की सेवा और व्यक्तिगत जीवन की कठोर साधना, तपस्या, त्याग तथा आत्मोत्सर्ग से आपने देशवासियों के हृदय में कुछ ऐसा स्थान बना लिया है कि आपके अस्वास्थ्य के साधारण-से समाचार पर भी सारे देश में खलबली और बेचैनी मच जाती है। ३२-३३ करोड़ हृदय आपके स्वास्थ्य-लाभ की कामना करने में लग जाते हैं। दिसम्बर १६३५ में आपकी बीमारी का समाचार सुनकर देश में विशेष चिन्ता फैल गई थी। आत्मा की उन्नति के उत्कर्ष पर पहुंच जाने और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेने के बाद भी यह देह जीवन-भर असह्य भार ढोता-ढोता वृद्धावस्था में थक ही जाता है। आपने तो पूरी निठुरता के साथ निरन्तर काम लेते हुए उसको भूखों ही मारा है। इसीसे वह सूखकर केवल अस्थिपंजर रह गया है। डाक्टरों का बस चले तो वे आपको दो क़दम भी चलने न दें और दो मिनट भी काम न करने दें। पर, हृदय में धधकती हुई आग शान्त नहीं रहने देती। अपने देशवासियों के लिए सर्वस्व मिटा देनेवाला इस नश्वर देह में राग नहीं रख सकता। ऐसी भयानक बीमारी के बाद भी कहीं एकान्त में विश्राम करने का विचार न कर आप अपने काम में लगे हुए हैं और वर्धा से बम्बई,

अहमदाबाद और देहली जाकर अपने निश्चित कार्यक्रम को पूरा करने में लगे हुए हैं।

आपकी जीवन-कहानी भारतीय-राष्ट्र की जागृति का जीता-जागता इतिहास है। उसकी रूप-रेखा खींचने का असाध्य कार्य यहाँ किया गया है। पूरा परिचय प्राप्त करने के लिए तो अच्छा हो कि आपकी आत्मकथा का स्वाध्याय किया जाय और आपके जीवन के साथ अपने-को तन्मय करके उसको समझने का यत्न किया जाय। तब सम्भव है कि जिज्ञासु पाठक को दिव्य प्रकाश की वह किरण मिल जाय, जिसके उजाले में अपना जीवन-मार्ग निष्कण्टक बना लेना उसके लिए कुछ सुगम हो जाय। इस देश से ही नहीं, किन्तु दूर-दूर देशों से भी कितने ही जिज्ञासु आकर्षित होकर आपके पास आते रहते हैं और आपके दर्शन, उपदेश तथा परामर्श से लाभ उठाते रहते हैं। संसार की दृष्टि में जिस भारत का अपना न कोई चित्र था और न चरित्र, उसको आपने अपने दिव्य चरित्र से गौरवान्वित कर दिया है। श्री 'सुमन' के ये शब्द कितने सुन्दर और यथार्थ हैं कि "आप हमारी आशा के पंख हैं, हमारी जीवन-निशा के दीपक हैं, विश्व की आध्यात्मिक साहसिकता के प्रतीक है, घोर अन्धकार में आपकी डेढ़ हड्डी-पसली की मूर्ति ध्रुव-तारे की तरह चमक रही है।"

सरोजिनी नायडू

[१३ फरवरी १८७६]

चालीसवां अधिवेशन, कानपुर—१९२५

भारत-कोकिला देवी सरोजिनी नायडू ने स्वर्गीय पं० मोतीलाल नेहरू के समान अपनी प्रतिभा, योग्यता और विलासिता को देश की स्वतंत्रता की पुकार पर न्यौछावर कर जो आदर्श उपस्थित किया है, उससे सैकड़ों-हज़ारों को आत्मोत्सर्ग के लिए प्रेरणा मिली है। लिखने और बोलने की शिक्षा आप माता के पेट से ही लेकर पैदा हुई हैं। अंग्रेज़ी-कविता पर आपका असाधारण अधिकार है। आप कविता में बोलतीं, कविता में लिखती और कविता में ही रहती हैं। आपकी भाषा जैसी ओजपूर्ण, सुन्दर और आकर्षक है, वाणी वैसी ही मधुर, सरस और प्रभावोत्पादक है। यह सब आप में पैदा नहीं किया गया है, किन्तु जन्म के साथ ही पैदा हुई यह वह विभूति है, जो सहज ही में श्रोताओं को मोह लेती है। आपका जन्म १३ फरवरी १८७९ में हैदराबाद (दक्षिण) में हुआ। आपके पिता का नाम था डाक्टर अघोरनाथ चट्टोपाध्याय। वह बहुत विद्या-व्यसनी और शिक्षा-प्रेमी थे। निज़ाम-कालेज की उन्होंने ही स्थापना की थी और

जीवन-भर शिक्षा के क्षेत्र में वह कार्य करते रहे थे। सरोजिनीदेवी को उन्होंने अपनी देख-रेख में ही पढ़ाया-लिखाया था। उसीका परिणाम था कि सरोजिनीदेवी ने मदरास-यूनिवरसिटी से १२ वर्ष की आयु में मैट्रिक पास किया, जो एक असाधारण घटना थी। १८६५ में अध्ययन के लिए आपको आपकी इच्छा के विरुद्ध, निजाम से वजीफा मिलने पर, इंग्लैण्ड भेजा गया। १८६८ तक किंग-कालेज में शिक्षा ग्रहण की। इसी बीच आपने इटली की सैर की। आपकी प्रतिभा के विकसित होने में उस सैर से प्रेरणा मिली। आप अत्यन्त कुशाग्र और प्रतिभा-सम्पन्न थीं। आपके पिता की इच्छा थी कि आप गणित और विज्ञान की विशेष शिक्षा ग्रहण करें, किन्तु कविता ने उसपर विजय प्राप्त की। ग्यारह वर्ष की आयु में आप एलजब्रा का एक प्रश्न हल करने में लगी हुई थीं। वह तो हल हुआ नहीं, किन्तु कागज पर कविता उतर आई। १३ वर्ष की आयु में छः दिनों में 'लेडी आफ डी लेक' १३०० पंक्तियों की कविता लिखी और उन्हीं दिनों में २००० पंक्तियों का एक नाटक भी लिखा। बीमार होने से साधारण पढ़ाई छूट गई, किन्तु वैसे आपने बहुत किताबें पढ़ डालीं। १४ से १६ वर्ष की आयु की अवधि में आपने बहुत अधिक पढ़ा। १८६८ में आप भारत लौटीं और उसी वर्ष दिसम्बर में डा० गोविन्द राजूलू नायडू के साथ आपका अन्तर्जातीय और अन्तरप्रान्तीय विवाह हुआ। आपका गृहस्थ-जीवन बहुत सुखी, सम्पन्न और समृद्ध रहा। आपके चार सन्तान हैं, दो लड़के और दो लड़कियां। निजाम राज्य में परदे का बहुत जोर है। हैदराबाद परदे का घर है। आपने परदा तो कभी किया ही नहीं, किन्तु समाज-सुधार

के सभी कार्यों और सार्वजनिक-सामाजिक जीवन में भी आपने विशेष भाग लेना शुरू कर दिया। आपकी कविता की 'दी गोल्डन थ्रेश होल्ड' और 'दी बर्ड आफ टाइम' पुस्तकों के प्रकाशित होते ही, इंग्लैण्ड में उनकी धूम मच गई। स्वदेश-भक्ति की भावना में आपकी कविता उस समय भी रंगी रहती थी। राष्ट्रीय-उत्कर्ष की ध्वनि उसमें प्रतिध्वनित होती थी। स्वाभिमान, स्वदेशाभिमान और राष्ट्रीयता की भावना से अनुकूल वातावरण मिलते ही आप पूरी तरह खिल उठीं। गाँधीजी के व्यक्तित्व से देश में जो महान् परिवर्तन पैदा हुआ, उससे आप अलग न रह सकीं। आप उन कुछ व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने अपनेको गांधीजी के पीछे देश-प्रेम में पागल बना दिया है और जो सदा देश का चिन्तन करती हुई उसकी स्वतंत्रता के गीत गाती रहती हैं।

१९१५ के लगभग आपने सार्वजनिक जीवन में एक प्रभावशाली, जोरदार और सफल वक्ता के रूप में प्रवेश किया। विद्यार्थी और स्त्रियों की संस्थाओं में भी आपके व्याख्यान बहुत पसन्द किये जाते थे। कांग्रेस में सबसे पहले सम्भवतः लखनऊ में १९१६ में शामिल हुईं। उसमें 'स्वायत्त शासन' के प्रस्ताव पर आपने कुछ जोरदार भाषण किया। उसके बाद १९१७ में आपने सारे देश का दौरा किया और जगह-जगह राजनैतिक विषयों पर व्याख्यान दिये। मदरास में दिसम्बर के महीने में विविध विषयों पर आपके बहुत-से व्याख्यान हुए। मदरास के विद्यार्थियों के सामने 'दी होप आफ टुमारो' पर दिया गया आपका भाषण बहुत महत्वपूर्ण और मर्मस्पर्शी था। मई १९१८ में कांजीवरम में मदरास प्रान्तीय कान्फ्रेंस आपकी अध्यक्षता में हुई।

१९१८ में आपने फिर सारे देश का दौरा किया। दिसम्बर में अखिल-भारतीय सोशल सर्विस कान्फ्रेंस के दूसरे वार्षिक अधिवेशन की आप अध्यक्षा चुनी गईं, जो कांग्रेस के साथ देहली में हुआ। १९१९ में आप फिर यूरोप गईं। जिनेवा में अन्तर्राष्ट्रीय-स्त्री-मताधिकार परिषद् में आपने भाषण दिया। १९२२ के शुरू में आपने कांग्रेस की ओर से दक्षिण अफ्रीका का दौरा किया। उसी वर्ष बम्बई के कारपोरेशन की सदस्या और बम्बई-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी की अध्यक्षा भी चुनी गईं। तभीसे कांग्रेस की महा-समिति में भी आपको प्रायः स्थान मिलता रहा है। १९२३ में नागपुर में राष्ट्रीय झण्डे की सम्मान रक्षा के लिए सत्याग्रह हुआ था। उसके प्रचार के लिए आपने मध्यप्रान्त का दौरा किया था। १९२५ में कानपुर में हुई कांग्रेस की आप सभा-नेत्री चुनी गईं। वह चुनाव अनायास ही नहीं हुआ था। देश में उस समय हिन्दू-मुस्लिम-दंगे जोरों पर थे और साम्प्रदायिकता का ज़हर चारों ओर फैला हुआ था। उस समय राष्ट्रपति के आसन को सुशोभित करने के लिए ऐसे ही व्यक्ति की आवश्ययकता थी, जो उससे एकदम ऊपर उठा हुआ और सब का एक समान विश्वासपात्र हो। आप उसके लिए सर्वथा योग्य और उपयुक्त थीं। गान्धीजी ने तो बेलगांव में ही कह दिया था कि जहाँ मुझको बिठाया जा रहा है, वहां सरोजिनी को बिठाया जाना चाहिए। आपका भाषण बहुत छोटा, कवितामय, मधुर और मर्मस्पर्शी था। उस समय के साम्प्रदायिक-कलह की ओर संकेत करने हुए आपने कहा था कि "भारतमाता की आज्ञाकारिणी पुत्री की हैसियत से मेरा काम यह होगा कि अपनी माता का घर ठीक करूँ

और इन शोचनीय झगड़ों का निपटारा करूँ।" फिर आपने कहा था कि "स्वतन्त्रता के युद्ध में डरकर पीठ दिखाना अक्षम्य अपराध है और निराशा भयानक पाप।" इसमें सन्देह नहीं कि साम्प्रदायिक मनोमालिन्य को दूर करके भारतमाता के घर को व्यवस्थित करने की अपनी आकांक्षा को आप पूरा नहीं कर सकीं, किन्तु यह तो निर्विवाद और सन्देह-रहित है कि आपने देश की स्वतन्त्रता की लड़ाई में पीठ दिखाने या निराशा प्रकट करने का अपराध कभी नहीं किया। १९२८ के अन्त में आप संयुक्त-राष्ट्र-अमेरिका गईं। वहांसे अगस्त १९२९ में आप फिर अफ्रीका वहां की भारतीय कांग्रेस की अध्यक्ष निर्वाचित होकर गईं। १९३० के नमक-सत्याग्रह के आन्दोलन से महिलाओं को अलग रखकर महात्माजी उनसे केवल पिकेटिंग, विदेशी शराब आदि की दुकानों पर धरना देने का ही काम लेना चाहते थे। परन्तु आपने अपनेको स्वतन्त्रता के संग्राम में पुरुषों से कभी पीछे नहीं रखा। आप उनसे दो कदम सदा आगे ही रही हैं। दाण्डी-यात्रा के बाद गान्धीजी ने धरासना और वड़ाला के नमक के सरकारी भण्डारों पर धावा बोलने का निश्चय किया था। गान्धीजी की गिरफ्तारी के बाद वयोवृद्ध अब्बास-तैय्यबजी ने उसका नेतृत्व किया था और उसके बाद उस ऐतिहासिक युद्ध का संचालन आपने किया था। उसीमें आप २१ मई १९३० को गिरफ़्तार करके यरवडा-जेल पहुँचा दी गईं थीं। यरवडा-जेल में नेहरूद्वय को नेनी-जेल से लाकर सप्रू-जयकर के उद्योग से गान्धीजी के साथ सन्धि-चर्चा करने के लिए जो परिषद् हुई थी, उसमें आपको भी सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गान्धी-अर्विन-समझौते

के बाद जब कांग्रेस ने गोल-मेज-परिषद् में सम्मिलित होना तय कर लिया था, तब गान्धीजी और मालवीयजी के साथ आपको भी दूसरी गोल-मेज-परिषद् में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला था और वहां गान्धीजी का आपने पूरा साथ दिया। १९३१-३२ के आन्दोलन में भी आप गिरफ्तार होकर जेल गई थीं।

भारत के स्वतन्त्रता-आन्दोलन के साथ अपनेको तन्मय कर देने और राजनैतिक-क्षेत्र में अपना विशेष स्थान बना लेने पर भी आपको राजनीतिज्ञ नहीं कहा जा सकता। राजनैतिक उलझनो को सुलझाने में आपने अपनेको कभी नहीं उलझाया। गान्धीजी में आपकी अगाध श्रद्धा, देश के भविष्य में आपका पूर्ण विश्वास और उसकी स्वतन्त्रता में आपकी गहरी लगन आपको बलात् राजनीति में खींच लाई है। आप स्वयं ही कहा करती हैं कि 'महात्मा गान्धी कन्हैया हैं और मैं उनकी बांसुरी हूँ।' १९२० से अबतक आपने असहयोग तथा सत्याग्रह की बांसुरी बजाने का काम निरन्तर एकनिष्ठा से किया है। अपना हृदय पूरी तरह आपने गान्धीजी के हाथों में सौंपकर अपनेको उनकी प्रतिध्वनि-मात्र बना लिया है। यही कारण है कि कांग्रेस में व्याख्यानों का युग बीत जाने पर भी आपके व्याख्यानों का आकर्षण कुछ कम नहीं हुआ और कोरे व्याख्याताओं के पिछड़ जाने के बाद भी आप सबसे आगे खड़ी हुई हैं। कांग्रेस की अग्नि-परीक्षा में जहां अच्छे वाक्-शूर महारथी रह गये, वहां आप पूरी शान के साथ सफल हुई हैं। इस प्रकार देशभक्ति और देश-सेवा का जो आदर्श आपने उपस्थित किया है, वह निश्चय ही देशवासियों में आशा और उत्साह का संचार सदा करता रहेगा।

श्रीनिवास आयंगर

[११ सितम्बर १८७४]

इकतालीसवां अधिवेशन, गोहाटी—१९२६

श्रीयुत श्रीनिवास अयंगर योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं। सांसारिक सुख-सम्पत्ति से परिपूर्ण सम्पन्न घर में, कट्टर वैष्णव परिवार में, आपका जन्म ११ सितम्बर १८७४ को मदुरा जिला के रामनद शहर में हुआ था। आपके पिता श्रीयुत शेषाद्रि आयंगर चोटी के वकील, अच्छे मालदार और पुराने काँग्रेसमैन थे। पहले वह कामेश्वर देवस्थान में वकील थे। रामनन्द और शिवगङ्गा के राजा उनकी कानूनी योग्यता से बहुत प्रभावित थे और १८६१ से १८६८ तक वह उन दोनों के एक अच्छी बड़ी तनखाह पर हाईकोर्ट और प्रिवी-कौंसिल के लिये लॉ-एजेण्ट रहे। १८६६ में वह रामनद के श्रीपुदुवाई पुन्नूसामी थावर के एजण्ट होगये और उनकी मृत्यु के बाद पुत्रो के बड़ा होने तक उनकी जायदाद के एजेण्ट रहे। १८८० में मदुरा में आकर बस गये और वहाँ के जिला-बोर्ड, डिस्ट्रिक्ट पीपुल एसोसियेशन और धार्मिक तथा शिक्षण-संस्थाओं के कार्यों में विशेष दिलचस्पी लेते रहे। मदुरा में हुई दसवीं मदरास प्रान्तिक कान्फ्रेंस में उन्होंने विशेष भाग लिया था।

काँग्रेस के कई अधिवेशनों में भी सम्मिलित होते रहे थे। वह बहुत प्रभावशाली व्यक्ति थे। रामनद जिले के प्रमुख जमीदार थे। ८५ वर्ष की आयु में अप्रैल १६१६ में उनका देहान्त हुआ था।

श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर की शिक्षा का प्रबन्ध मदुरा में हुआ था और वहां के ही कालेज से आपने एफ० ए० पास किया था। १८६५ में प्रेसिडेन्सी कालेज से आप बी० ए० हुए और १८६७ में बी० एल०। आप बहुत प्रतिभा-सम्पन्न विद्यार्थी समझे जाते थे। भारत के सुप्रसिद्ध जूरिस्ट अपने श्वसुर श्री वी० भाष्यम् आयंगर के ऐपरेण्टिस (शागिर्द) रहकर आपने वकालत का अभ्यास करना शुरू किया और शीघ्र ही उसमें दक्षता प्राप्त कर ली।

५ अप्रैल १८६८ को हाईकोर्ट के वकीलों में आपका नाम लिखा गया और मदरास में आपने स्वतंत्र रूप में वकालत शुरू की। कानून के सम्बन्ध में अपनी प्रतिभा और कुशाग्र बुद्धि के लिए आपने केवल श्री भाष्यम् से ही प्रशंसा प्राप्त नहीं की थी, किन्तु हाईकोर्ट के अन्य वकील और जज भी आपका लोहा मानते थे। जल्दी ही आपकी गणना चोटी के वकीलों में होने लगी और आपकी आमदनी भी खूब बढ़ गई। नट्टु कोटाई चेट्टी के बड़े-बड़े ज़मींदार आपको निरन्तर अपना वकील नियुक्त किया करते थे और अब तक भी जमींदारों के मामलों में आपकी सम्मति बराबर लेते रहते हैं।

जनवरी १६१६ में आप पहले अस्थायी और बाद में जल्दी ही स्थायी तौर पर एडवोकेट-जनरल बना दिये गये। 'सी० आई० ई०' की उपाधि भी आपको दी गई। १७ फरवरी १६२० को आपने एडवो-

केट जनरल के कार्य से त्याग-पत्र दे दिया और वैसा करते हुए आपने इतना ही कहा कि यह मेरा व्यक्तिगत कार्य है। इसको मैंने केवल आत्मसन्तोष के लिए किया है।" आप नौकरशाही के शासन को अपनी भावना और जनता के हितों के विरुद्ध समझते थे। उससे सब सम्बन्ध-विच्छेद कर आप देश के सार्वजनिक जीवन में पुनः प्रवेश करना चाहते थे। उस अवसर पर श्री कस्तूरी रङ्गा आयंगर और वी० पी० माधव-राव के उद्योग से आपके सम्मान में जिस सभा का आयोजन किया गया था, उसमें आपने कहा था कि "कांग्रेस के प्रति मेरी एकनिष्ठ भक्ति है।"

मदरास प्रान्तिक लेजिस्लेटिव कौंसिल में आप सरकार के 'चीफ़ लॉ ऑफ़िसर' के नाते भाग लिया करते थे। १९२१ में आप मदरास यूनिवरसिटी की ओर से उसके सभासद् चुने गये थे। उसमें दिये गये आपके भाषणों की बड़ी सराहना हुआ करती थी। १९१२ से १६ तक आप मदरास यूनिवरसिटी की सिनेट के सभासद् चुने जाते रहे। १९१६ से १९१९ तक उसके 'ऐक्स ऑफिशिओ' सभासद् रहे और १९१९ में आप फिर उसके सभासद् चुने गये। १९२० में टिनेवैली में हुई प्रान्तीय कान्फरेंस के आप सभापति चुने गये थे। कांग्रेस के नेताओं की गिरफ्तारी के प्रतिवाद में आपने दिसम्बर १९२१ में 'सी० आई० ई०' का खिताब लौटा दिया था और मदरास प्रान्तिक कौंसिल से भी त्यागपत्र दे दिया था।

आप बहुत पुराने कांग्रेसवादी हैं। १८९९ में मदरास में हुई कांग्रेस में आप पहली बार शामिल हुए थे। उसके बाद से आप प्रायः सदा

कांग्रेस में शामिल होते रहे हैं। १६१४ में मदरास में हुए कांग्रेस के अधिवेशन के मंत्रियों में से आप एक थे और उसको सफल बनाने के लिए आपने विशेष यत्न किया था। उसके बाद आप ऑल इंडिया-कांग्रेस कमेटी के सभासद् चुने गये। १६१५ में बम्बई में हुई कांग्रेस में स्थायी फण्ड के लिए रुपया जमा करने को एक उपसमिति सङ्गठित की गई थी, जिसके सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, भूपेन्द्रनाथ वसु, समर्थ, वाचा और मालवीयजी के साथ आप भी सभासद् बनाये गये थे।

कांग्रेस में पुनः प्रवेश करने के बाद से आपकी यह दृढ़ सम्मति रही है कि कांग्रेस में साम्प्रदायिक हितों की दृष्टि से काम नहीं होना चाहिए और न उसमें एक प्रथा के बहुमत का ही अधिपत्य होना चाहिए। सत्याग्रह या निष्क्रिय प्रतिरोध की ओर आपका झुकाव कभी नहीं रहा। यद्यपि १६२० के बाद कांग्रेस में गांधीजी के विचारों का ही बोलबाला रहा है, किन्तु आप कभी भी अपना मत प्रकट करने में नहीं चूके। अपनी स्वतन्त्र और स्पष्ट सम्मति आप सदा प्रकट करते रहे हैं। दिसम्बर १६२२ में गया कांग्रेस में जब देशबन्धु दास की ओर से कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम उपस्थित किया गया था, तब आपने यह संशोधन पेश किया था कि कौंसिलों के चुनाव की लड़ाई तो लड़ी जाय, किन्तु वहांकी कुर्सियों को सदा खाली रक्खा जाय। आपका वह संशोधन स्वीकार नहीं किया गया था। पर, जब कांग्रेस के देहली के विशेषाधिवेशन द्वारा यह तय होगया कि चुनाव कांग्रेस-स्वराज्य-पार्टी की ओर से लड़े जा सकते हैं, तब आप अपना मतभेद भुलाकर उसमें शामिल होगये। उसके बाद आपने ठीक उसी प्रकार मदरास-कारपोरेशन

का चुनाव लड़कर उसको हस्तगत किया, जैसे देशबन्धु दास ने कलकत्ता कारपोरेशन को किया था। प्रान्तीय कौंसिल चुनाव में भी आपने उसी प्रकार सफलता प्राप्त की। जस्टिस पार्टी का उन चुनावों में पूरी तरह पराजित होना आपके ही उत्साह, प्रयत्न, संगठन-शक्ति और खुले हाथ धन खर्च करने का परिणाम था। १९२६ में आप मद्रास-शहर की ओर से लेजिस्लेटिव असेम्बली के सभासद् चुने गये, वहां आप पण्डित मोतीलालजी नेहरू के नेतृत्व में काम करनेवाले विरोधी दल के डिप्टी लीडर थे। आपके प्रस्ताव पर सरकार ने 'स्टाक होल्डर्स बैंक' खोलना स्वीकार कर लिया था। जब लाहौर में कांग्रेस ने फिर से कौंसिलों के बहिष्कार का निश्चय किया, तब आपने भी असेम्बली से त्याग-पत्र दे दिया।

आपके व्यक्तित्व, त्याग और सेवाओं के फल-स्वरूप देशवासियों ने १९२६ में गौहाटी में हुई कांग्रेस का सभापति चुनकर आपको सम्मानित किया। वहां अपने भाषण में आपने कहा था कि "राष्ट्र निर्माण के हमारे सब प्रयत्न स्वावलम्बन की भावना से प्रेरित होकर राष्ट्र विरोधी कार्यों के प्रतिरोध के लिए होने चाहिएं।" सरकारी पद स्वीकार करने के आप विरोधी थे और आपने यह मत प्रकट किया था कि वैसा करने से हम नौकरशाही के पूरे सहयोगी हो जायँगे। कौंसिल-प्रवेश के कार्य का उद्देश्य आपकी दृष्टि में केवल सरकार के राष्ट्र घातक कार्यों का विरोध करना ही नहीं था, किन्तु कांग्रेस-अनुमोदित राष्ट्र हितकारी कार्यों का सरकार से स्वीकार कराना भी था। जनता की शिकायतों का अनुसन्धान करना भी आपकी सम्मति में कांग्रेस-कार्यक्रम का एक अङ्ग

होना चाहिए था। विधायक कार्यक्रम पर अमल करने, बेकारी को दूर करने, श्रमजीवियों की शिकायतों का प्रतिकार करने, देशी रियासतों का द्विविधापन्न अवस्था से उद्धार करने और प्रवासी भारतीयों की असुविधाओं को मिटाने की ओर भी आपने कांग्रेस का ध्यान आकर्षित किया था और कांग्रेसवादियों की एकता के लिए जोरदार अपील भी की थी।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता को हल करने के लिए आप अत्यन्त उत्सुक थे और उसी के लिए आपने सारे देश का दौरा विशेष उत्साह के साथ किया था। मई १६२७ में बम्बई में महा-समिति की बैठक में आपने एक विस्तृत योजना पेश की थी, जिससे सहमत होकर सिवाय सिन्ध के अन्य सब लोगों ने संयुक्त-निर्वाचन को स्वीकार कर लिया था। स्वर्गीय सर अली इमाम ने उस योजना की बहुत सराहना की थी। २७ अक्तूबर १६२७ को महा-समिति द्वारा आयोजित एकता-परिषद् का आपने उद्घाटन किया था। उस अवसर पर आपने एक बार फिर हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या को हल करने की अपने जीवन की महान् अभिलाषा को प्रकट किया था। उस परिषद् द्वारा स्वीकृत एकता-सम्बन्धी प्रस्ताव को महासमिति ने भी स्वीकार कर लिया था।

१६२८ में साइमन कमीशन के मदरास आने पर काँग्रेस के आदेशानुसार उसके बहिष्कार के लिए आपने काले झण्डों का जलूस संगठित करके उसका स्वयं नेतृत्व किया था। उसी वर्ष की गरमियों में आपका स्वास्थ गिर गया और डाक्टरों की सलाह से आप वायु-परिवर्तन के लिए यूरोप गये। इङ्गलैण्ड में आपने भारत-सम्बन्धी विविध विषयों

पर वहां के नेताओं के साथ विचार-विनिमय किया। फ्रान्स, जर्मनी, स्वीज़रलैण्ड और इटली आदि देशों में भी आप गये। आयरलैण्ड में आप श्रीयुत डी वैलरा के अतिथि हुए थे। जनेवा में आपने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया था। रूस में बतौर राजकीय अतिथि के आपका स्वागत किया गया था और आप वहां सरकार के मेहमान होकर रहे थे। स्टेलिन के साथ आपने राजनैतिक, आर्थिक तथा सामाजिक विषयों पर बातचीत की थी। सभी जगह आपका स्वागत हुआ और प्रशंसा हुई थी। १९२८ की सरदियों में आप स्वदेश लौटे। १९३० तक आप तामिलनाड प्रान्तिक कांग्रेस कमेटी के सभापति रहे।

जब आप विलायत से लौटे, तभी नेहरू-रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, जिसमें आपके द्वारा प्रस्तुत हिन्दू-मुस्लिम एकता की योजना को उलट दिया गया था। शौकतअली और जिन्ना भी उस पर बिदक गये थे। उनको मिलाने के लिए फिर प्रयत्न किया, किन्तु सफल नहीं हुए।

१९२८ में कलकत्ता में हुई कांग्रेस में नेहरू-रिपोर्ट के सम्बन्ध में गांधीजी ने समझौते का जो प्रस्ताव उपस्थित किया था, उसके आप विरोधी थे, किंतु अन्त में उनसे सहमत होकर आपने उनके प्रस्ताव का अनुमोदन किया था। १९२९ में लाहौर-कांग्रेस में भी आप सम्मिलित हुए थे, जिसमें कि पूर्ण स्वाधीनता का वह प्रस्ताव पास किया गया था, जिसके लिए आप १९२७ से आंदोलन करते आ रहे थे। फिर से सत्याग्रह शुरु करने के लिए गांधीजी को डिक्टेटर बनाये जाने का आपने विरोध किया था, क्योंकि सत्याग्रह में आपका विश्वास नहीं था। कार्य-समिति के चुनाव को लेकर कांग्रेस के नेताओं में परस्पर कुछ मतभेद

पैदा हो गया था उस चुनाव से भी आप असहमत और असंतुष्ट थे। इसीसे श्रीयुत सुभाशचंद्र बोस के साथ मिलकर आपने 'कांग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी' की स्थापना की थी। कांग्रेस के सत्याग्रह में लग जाने पर आप उससे उदासीन हो गये और आज तक वैसे ही उदासीन बने हुए हैं।

आप जैसे राष्ट्रवादी हैं, वैसे ही समाज-सुधारक भी हैं। 'मदरास सोशल रिफार्म एसोसिएशन के आप कुछ समय तक सभापति थे। सर शंकरन नायर के साथ मिलकर आपने रजोदर्शन के बाद विवाह करने, सामाजिक-समता को क़ायम करने और जातीय बंधनों को ढीला करने के लिए आंदोलन किया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अस्पृश्यता-निवारण के लिए १९२३-२४ में जब दक्षिण-भारत का दौरा किया था, तब आपने उनका विशेष रूप से साथ दिया था। समाज-सुधार-सभा की अनेकों सभा सम्मेलनों और परिषदों के आप सभापति हो चुके हैं। दक्षिण में हिन्दी प्रचार के साथ भी आपकी सहानुभूति है। शिक्षण और औद्योगिक पुनरुत्थान में आपकी विशेष रुचि है। गोखले की स्मृति में मदरास विश्वविद्यालय को, मालवीयजी के आग्रह पर हिन्दू विश्वविद्यालय को और गांधीजी के अनुरोध पर चरखा-संघ को आपने १०-१० हज़ार का दान दिया है। अन्य सार्वजनिक संस्थाओं को भी आप समय-समय पर सहायता देकर अपनी उदारता का परिचय देते रहे हैं।

१९०७ में आपने 'लॉ रिफार्म' पर एक मौलिक और अपूर्व पुस्तक लिखी थी और १९२७ में 'स्वराज्य-विधान' पर आलोचनात्मक वैसी ही

एक और पुस्तक लिखी है। अपनी पहली पुस्तक में आपने संयुक्त परिवार की वर्तमान प्रथा और सम्पत्ति के उत्तराधिकार की मिताक्षरा पद्धति में परिवर्तन करने पर जोर दिया है।

आपके महान् व्यक्तित्व, त्याग और संगठन-शक्ति की ओर अब तक भी आपके देशवासियों विशेषतः दक्षिण-भारत के लोगों की आँखें लगी हुई हैं और वे आपको एक बार फिर मार्गदर्शक नेता के रूप में कार्य-क्षेत्र में खड़ा हुआ देखना चाहते हैं। कई वर्षों के बाद कांग्रेस के प्रतिज्ञा-पत्र (ध्येय) पर हस्ताक्षर करके और वयोवृद्ध श्रीयुत विजयराघवाचार्य की सार्वजनिक सेवाओं की सुवर्ण जयन्ती-समारोह का सभापतित्व करके आपने उस आशा को पूरा करने के कुछ लक्षण भी प्रकट किये हैं। देखें, वह आशा कब और किस रूप में पूरी होती है!

मुख़्तार अहमद अन्सारी

[२५ दिसम्बर १८८०]

बयालीसवां अधिवेशन, मद्रास—१९२७

"भाग्यों का चक्र यह है कि एक मुसलमान ने उन्हें मौत के मुँह से बचाया और दूसरे ने तमंचे के घाट उतार दिया। परमात्मा की लीला ऐसे ही रूपों में अपनेको प्रकट किया करती है। डा० अन्सारी और अब्दुल रशीद मनुष्य जाति के रोशन और स्याह पहलुओं के दो नमूने हैं।" ये शब्द दिवगंत स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज के बलिदान के बाद कहे गये थे और इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यत्व के जितने भी सद्‌गुण हैं, वे सब डाक्टर अन्सारी में आवश्यकता से अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। सहृदयता, सज्जनता और सरलता की आप मूर्ति हैं। दुखियों के लिए दर्द, गरीबों के लिए ममता और बीमारों के लिए सहानुभूति से आपका हृदय भरा हुआ है। निराशापूर्ण भयानक बीमारी में स्वामी श्रद्धानन्दजी अपनेको डाक्टर अन्सारी के हाथों में पूरी तरह सुरक्षित समझा करते थे। इसी प्रकार गान्धीजी ने अपने लम्बे उपवास की कठोर अग्नि-परीक्षा के समय जब कि सारे देश की आंखें पूना की पर्णकुटी की ओर लगी हुई थीं, ठीक ही कहा था कि डाक्टर अन्सारी की गोद में मेरा जीवन सुरक्षित है।

स्वामी श्रद्धानन्द और गांधीजी के इस अनुभव को राष्ट्र की दृष्टि से इन शब्दों में कहा जा सकता है कि डाक्टर अन्सारी सरीखे नेता के हाथों में राष्ट्र का भविष्य सुरक्षित है। डाक्टर अन्सारी खरे देशभक्त और पक्के राष्ट्रवादी हैं। साम्प्रदायिकता की गंध तक से आप कोसों दूर हैं। शुद्धि-संगठन और तंजीम- तबलीग़ की गंदी हवा ने जब सारे देश में साम्प्रदायिकता की दुर्गन्ध फैला दी थी, तब आप राष्ट्रीयता की चट्टान पर दृढ़ता के साथ खड़े रहे थे। यदि कहीं आपमें देशबन्धु की विद्रोही वृति और मोतीलालजी की सर्व-त्याग की भावना होती, तो राष्ट्र निर्माताओं में आपका स्थान आज की अपेक्षा बहुत ऊँचा होता। फिर भी इस समय आपको जो गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है, वह अनायास ही प्राप्त नहीं किया गया है। वह आपकी राष्ट्रसेवा का उपयुक्त पुरस्कार है।

आपका जन्म २५ दिसम्बर १८८० में संयुक्तप्रान्त के गाज़ीपुर जिले के युसुफपुर गांव में एक दौलतमंद जमींदार हाज़ी अब्दुल रहमान के यहां हुआ था। छोटी आयु में आपकी शिक्षा बनारस में हुई थी। इलाहाबाद में एफ० ए० पास करने के बाद आप निजाम-कालेज-हैदराबाद (दक्षिण) में जाकर दाखिल हो गये और मदरास यूनिवरसिटी से आपने बी० ए० पास किया था। निजाम-रियासत से विदेश जाकर पढ़ने के लिए वजीफा मिलने पर आप १९०० में उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए विलायत चले गये। एडिनबरा यूनिवरसिटी से एम० डी० और एम० एस० और लन्दन यूनिवरसिटी से एल० आर० सी० पी० की डिग्रियां प्राप्त करके आपने लन्दन में ही काम शुरु कर दिया। आप पहले हिन्दुस्तानी थे, जिनको लन्दन के अस्पतालों में 'हाउस-सर्जन'

नियुक्त किया गया था। चेयरिंग क्रास अस्पताल में आप ने 'हाउस-सर्जन,' लाक हस्पताल में 'रेसिडेण्ड मैडिकल अफसर' और सेण्ट पीटर्स अस्पताल में 'क्लिनिकल एसिस्टेण्ट' का काम लगभग सात-आठ वर्ष किया। १९११ में स्वदेश लौटकर देहली में आपने डाक्टरी का काम शुरु कर दिया। एकाएक आप अपने धन्धे में सुप्रसिद्ध हो गये। चारों ओर से बीमार आपके पास आने लगे। अनेक देशी रियासतों के राजाओं, महाराजाओं और नवाबों के आप फैमिली डाक्टर बन गये। बीमारों की इतनी भीड़ रहने लगी कि कई बीमार ७-७, ८-८ दिनों तक आपसे मिलने के लिए प्रतीक्षा में बैठे रहते। अब भी यही अवस्था है। इस पर भी किसी बीमार को आप कभी टालते नहीं। पूरा ध्यान और समय लगाकर हर-एक बीमार को देखते हैं। आधी बीमारी तो आपके देखने मात्र से दूर हो जाती है। राजनैतिक अथवा सार्वजनिक कार्य करनेवाले बीमारों के प्रति आपकी विशेष सहानुभूति रहती है। इस समय आपकी गिनती देश के उच्चकोटि के चार-पांच डाक्टरों में की जाती है।

सार्वजनिक-जीवन का अनुराग आपमें विद्यार्थी अवस्था में ही पैदा हो चुका था। १८९९ में जब आप मदरास में मैडिकल कालेज के छात्र थे, तभी आप पहली बार कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित हुए थे। १९११ में देहली में प्रेक्टिस शुरु करने के साथ ही आप सार्वजनिक-कार्यों में योगदान देने लग गये थे। प्रैक्टिस के समान ही राजनैतिक क्षेत्र में भी अग्रणी नेताओं में स्थान प्राप्त करने में आपको अधिक समय नहीं लगा। १९१२—१३ में टर्की-बालकन-युद्ध के समय 'आल इण्डिया मैडिकल मिशन' आपके नेतृत्व में टर्की भेजा गया था।

१९१७-१८ में होमरूल के आन्दोलन में भी आपने प्रमुख भाग लिया था। १९१५ में अली-बन्धुओं और मौलाना आजाद आदि के नजर-बन्द किये जाने पर 'नजरबन्द सहायक फण्ड' खोला गया था, जिसके कि आप सभापति थे। १९१८ में देहली में कांग्रेस के साथ आल इण्डिया मुस्लिम लीग का जो अधिवेशन हुआ था। आप उसके स्वागताध्यक्ष थे। आपका स्वागत-भाषण ऐसा मार्के का था कि सरकार द्वारा वह जब्त कर लिया गया था। १९१९ में गान्धीजी ने रॉलेट एक्ट के विरुद्ध जो सत्याग्रह आन्दोलन शुरू किया था। उसमें आपने गांधीजी का पूरा साथ दिया और उस वर्ष मार्च-अप्रैल में देहली में भयानक किन्तु गौरवपूर्ण घटनाएँ घटी थीं, उनमें आपका भी यशस्वी हाथ था। अमृतसर की कांग्रेस में भी आप सम्मिलित हुए थे और उस के बाद प्रायः सभी अधिवेशनों में उपस्थित होकर उनकी कार्यवाही में प्रमुख भाग लेते रहे हैं। गया में १९२३ में कांग्रेस के साथ होनेवाली खिलाफत कान्फ्रेंस के आप सभापति हुए थे। १९२३ में कांग्रेस द्वारा नियुक्त सत्याग्रह-जांच-कमेटी के आप सभासद् थे। आपने कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध सत्याग्रह एवं विधायक-कार्यक्रम के पक्ष में अपना मत प्रकट किया था। १९२२ में देहली में हुए कांग्रेस के विशेषाधिवेशन की स्वागत-समिति के आपअध्यक्ष हुए थे। अपने उस भाषण में आपने सत्याग्रह-जांच-कमेटी की रिपोर्ट में पेश किये विचारों को ही विस्तार के साथ प्रकट किया था।

हिन्दू-मुस्लिम-एकता में आपकी दृढ़ आस्था और पूर्ण विश्वास है। पारस्परिक सन्देह अविश्वास और मतभेद को दूर करके दोनों को एक

करने के यत्न में आप सदा लगे रहते हैं। गया में खिलाफत कान्फ्रेंस के से अध्यक्ष-पद से दिये हुए अपने भाषण में आपने कहा था कि देश में एक ऐसा जातीय संगठन बनाया जाना चाहिए, जिससे कि परस्पर विवादात्मक धार्मिक तथा सामाजिक मामलों को राष्ट्रीय जीवन से अलग कर दिया जाय। कांग्रेस के १६२२ के विशेषाधिवेशन के पद से दिये गये भाषण में आपने अपने उक्त विचार को फिर से दोहराया था और उस समय के साम्प्रदायिक दंगों की तीव्र आलोचना करते हुए आपने यह कहा था कि "अभी भी मामला बिगड़ा नहीं है। मैं आशावादी हूँ और आशा करता हूँ कि यदि हमने साम्प्रदायिक-समस्या को हल करने का निश्चित तौर पर प्रयत्न किया, तो हम कृतकार्य होंगे। मैंने यह कई बार कहा है और अब भी हृदय से कहता हूँ कि मैं इसको हल करने का काम अपने हाथ में ले सकता हूं।" १६२३ में स्वर्गीय लाला लाजपतरायजी के साथ मिलकर आपने एक साम्प्रदायिक समझौता तैयार किया था, जिसको 'लाजपत-अन्सारी-पैक्ट' नाम दिया गया था। १६२४ में गान्धीजी के उपवास के बाद मोतीलालजी के सभापतित्व में देहली में जो एकता-सम्मेलन हुआ था उसके संयोजकों में आप भी एक थे। उसके बाद १६२७-२८ में नेहरू-रिपोर्ट के रूप में और १६३२ में मालवीयजी द्वारा किये गये उद्योग में भी आपने पूरा हाथ बटाया था। अपने समाज में राष्ट्रीय भावों को उद्दीप्त करने और सम्प्रदाय-वादियों की राष्ट्र विरोधी करतूतों का सामना करने के लिए आपने 'राष्ट्रीय-मुस्लिम-दल' की स्थापना की थी।

आपकी इन सब सेवाओं के पुरस्कार स्वरूप देशवासियों ने १६२७

में मदरास में होनेवाले कांग्रेस के अधिवेशन का आपको सभापति चुना। अपने भाषण में आपने साम्प्रदायिक समझौते की विशेष चर्चा की। असहयोग आन्दोलन के बारे में आपने कहा था कि "असहयोग असफल नहीं हुआ, हम ही असहयोग के लिए असफल हुए हैं।" उस अधिवेशन का महत्वपूर्ण निश्चय साइमन कमीशन के बहिष्कार का था। पूर्ण स्वतन्त्रता को कांग्रेस का ध्येय बना देने के सम्बन्ध में भी उस अधिवेशन में अच्छी चर्चा हुई थी। ब्रिटिश माल के बहिष्कार का प्रस्ताव भी उसमें स्वीकृत किया गया था। आपकी दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रस्ताव वह था जिसके द्वारा स्वराज्य का विधान तैयार करने का अधिकार कार्य समिति को दिया गया था। उसी प्रस्ताव के परिणाम स्वरूप 'नेहरू-रिपोर्ट' तैयार की गई थी, जिसके बनाने में आपने पूरा सहयोग दिया था। कांग्रेस कार्य समिति के आप प्रायः सभासद् रहे हैं और उसकी मन्त्रणाओं में आप सदा ही प्रमुख भाग लेते रहे हैं।

१९३० के सत्याग्रह आन्दोलन में आप अपने ही मकान पर देहली में कांग्रेस की गैर-कानूनी कार्य समिति की बैठक करते हुए २७ अगस्त को गिरफ्तार किये गये थे। उस समय कार्य समिति के आप ही सभापति या राष्ट्रपति थे। मालवीयजी प्रेसिडेण्ट पटेल और डाक्टर बिधानचन्द्र राय आदि भी आपके साथ ही गिरफ़्तार किये गये थे। छः मास की आपको सजा हुई थी। गान्धी-अर्विन-पैक्ट के निमित्त से आप २५ जनवरी १९३१ को रिहा किये गये थे। उस पैक्ट की चर्चा के दिनों में आपका मकान राष्ट्र का अतिथि-गृह और राष्ट्रनायक गान्धीजी का निवास स्थान होने से राष्ट्रीय मन्त्रणा-गृह बना हुआ था। कार्य-

समिति की लम्बी-लम्बी बैठकें और नेताओं का सब सलाह-मशविरा आपके ही यहां होता था। सरकार की दृष्टि से वायसराय भवन को जो महत्व प्राप्त था, राष्ट्र की दृष्टि से उन दिनों में वह महत्व आपके मकान को प्राप्त था।

गान्धी अर्विन पैक्ट के बाद आप मुसलमानों में राष्ट्रवाद का प्रचार करने के लिए 'राष्ट्रीय मुस्लिम दल' को सुसंगठित करने के लग गये। उन दिनों में फ़रीदपुर बंगाल में राष्ट्रीय मुस्लिम दल की कान्फ्रेंस और लाहौर में पंजाब के राष्ट्रीय मुस्लिम दल की बैठक में सभापति की हैसियत से जो आपने भाषण दिये थे, वे बहुत महत्वपूर्ण थे। हिन्दू मुस्लिम पैक्ट बनाने के लिए कांग्रेस की कार्य समिति ने एक उपसमिति बनाई थी, आप भी उसके सभासद् थे। उसने एक समझौता तैयार किया था, जिसे साम्प्रदायिक मुस्लिम नेताओं से स्वीकार कराने के लिए आपने कोई बात उठा न रखी थी। मौलाना शौक़तअली और सर मुहम्मद इकबाल सरीखों को भी आपने उससे सहमत कर लिया था। १९३१ के अंत में मुसलमान नेताओं की एक कान्फ्रेंस बुलाकर आप उसको उनकी ओर से गान्धीजी के सामने पेश करने की तैयारी में थे कि १९३२ का आंन्दोलन शुरू हो गया और आपका वह यत्न अधूरा ही रह गया।

राष्ट्रवादी मुसलमानों के माने हुए नेता होने पर भी दूसरी गोल-मेज-परिषद् के लिए आपको निमन्त्रित नहीं किया था। साम्प्रदायिक-मुस्लिम-नेताओं को चुन-चुनकर बटोरा गया था और राष्ट्रवादियों की पूर्ण उपेक्षा की गई थी। सरकार के इस कार्य पर विक्षोभ प्रकट

किया गया और उसकी निन्दा की गई। गांधीजी ने विलायत जाकर भी आपकी अनुपस्थिति को अनुभव किया और आपको निमन्त्रित कराने के लिए यत्न भी किया, किन्तु सफलता नहीं मिली। सरकार द्वारा की गई उस उपेक्षा से आपकी लोकप्रियता में चार चांद और लग गये।

१९३२ के आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों में ही मौलाना मुहम्मदअली की बरसी की सभा में आपका भाषण हुआ और दूसरे दिन आप गिरफ़्तार कर लिये गये। छः मास की सजा हुई। जेल में आपकी सेहत कुछ बिगड़ गई थी। इसलिए जेल से छूटने पर आप विलायत गये। वहां आप चुप नहीं रहे, किन्तु भारत के सम्बन्ध में आपने वहां विशेष आन्दोलन किया।

गांधीजी के प्रति आपका प्रेम अगाध है। १९२४ में देहली में गांधीजी ने जब २१ दिन का उपवास किया था, तब हकीम जी और स्वामी श्रद्धानन्दजी तो अपने आस्तिकता में लीन रहकर भगवान् पर भरोसा रखने की सबको सलाह दिया करते थे, किन्तु आप प्रेम-विह्वल हो दवा लेने के लिए गांधीजी के पीछे पड़ जाते थे। आपकी वह विह्वलता गन्धीजी के प्रति आपके अनुराग का परिणाम थी। पूना में किये गये उपवास के समय भी आपकी वैसी ही अवस्था थी।

जुलाई १९३३ की पूना-परिषद् के बाद कौंसिल-प्रवेश-वादियों की संख्या देश में बढ़ने लगी और सत्याग्रह स्थगित करके, १९२३-२४ में देशबन्धु दास ने जैसे 'स्वराज्य-दल' का सङ्गठन किया था, वैसा ही एक दल बनाकर कौंसिलों का कार्यक्रम शुरू करने की चर्चा की जाने

लगी। १९२३ में कौंसिल-प्रवेश के आप कट्टर विरोधी थे, किन्तु अब ३१ मार्च १९३४ को आपके ही मकान पर आपके ही सभापतित्व में कुछ नेताओं की सभा होकर 'स्वराज्य-दल' को फिर से सङ्गठित करने का निश्चय किया गया। रांची में २-३ मई को इसी सम्बन्ध में नेताओं का एक सम्मेलन और हुआ और १८-१९ मई को पटना में महा-समिति की बैठक होकर कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड की स्थापना की गई। आपको उसका अध्यक्ष बनाया गया और मालवीयजी के साथ आप पर उसको सङ्गठित करने का कार्य सौंपा गया। बम्बई की कांग्रेस से महासमिति के इस निश्चय को स्वीकार कराने और असेम्बली के चुनाव की लड़ाई में कांग्रेस को शानदार विजय प्राप्त कराने के लिए आपने विशेष उद्योग किया था। यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है कि कौंसिल-प्रवेश के लिए इतना आन्दोलन करने और असेम्बली के लिए आपके निर्विरोध चुने जाने का पूरा अवसर होने पर भी आप उससे दूर ही रहे।

शिक्षा के क्षेत्र में भी आपकी सेवायें उल्लेखनीय हैं। अलीगढ़ यूनिवरसिटी के संचालन में आपका प्रधान हाथ है। उसमें एक दल के आप नेता हैं, जिसकी दूसरे दल के साथ खींच-तान प्रायः बनी रहती है। असहयोग के दिनों में अलीगढ़ में मुस्लिम नेशनल यूनिवर-सिटी (जामिया मिलिया इस्लामिया) की स्थापना में आपका प्रमुख हाथ था। जुलाई १९२५ में उसके देहली आ जाने के बाद से तो आप उसके प्रधान कर्णधार हैं। उसको उन्नत बनाने का यत्न आप बराबर करते हैं। इण्डियन मैडिकल एसोसियेशन के संचालन में

भी आपका प्रधान हिस्सा है। उसके एक वर्ष आप सभापति भी रह चुके हैं।

सेहत के कारण सार्वजनिक जीवन से १६३५ के अप्रैल मास से आप फिर अलग हो गये हैं, किन्तु जबतक देश की जटिल और विकट साम्प्रदायिक-समस्या हल नहीं हो जाती, तबतक आप सरीखे साम्प्रदायिक-एकता में दृढ़ आस्था रखनेवाले राष्ट्रवादी नेताओं की इस अभागे देश को विशेष आवश्यकता है, जिससे राजनैतिक गगन-मण्डल से पारस्परिक सन्देह, अविश्वास और मतभेद की निराशापूर्ण काली घटायें दूर हो जायँ और उज्ज्वल नक्षत्र की तरह उसका भविष्य चमकने लग जाय।
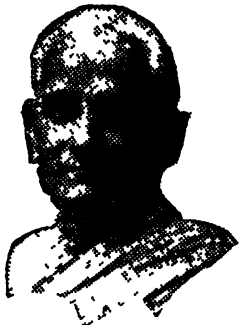
मोतीलाल नेहरू

[१८६१—१६३१]

चौंतीसवां अधिवेशन, अमृतसर—१९१९

तैंतालीसवां अधिवेशन, कलकत्ता—१९२८

"मैं रोग से लड़ूंगा, मैं मृत्यु से लड़ूंगा, और मैं दासता-रूपी दानव से लड़ूंगा।......भारत के भाग्य का निर्णय स्वराज्य-भवन में करो। मेरे सामने करो। मेरी मातृभूमि के अन्तिम सन्मान पूर्ण समझौते में मुझे भी भाग लेने दो। यदि मुझे मरना ही है तो मैं स्वतन्त्र भारत की गोद में मरूँ। मैं अपनी नींद एक स्वतन्त्र देश मैं सोऊँ, पराधीन में नहीं।"—१६३०-३१ के सत्याग्रह-आन्दोलन में बीमारी के भयानक हो जाने के कारण ८ सितम्बर को आपको और देश में शासन-सुधारों के अनुकूल वातावरण पैदा करने तथा कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने के लिए २६ जनवरी १६३१ को कार्य-समिति के सब सभासदों को रिहा कर दिया गया था। रिहा होते ही सब नेता आपको देखने के लिए प्रयाग गये थे। कार्य-समिति की बैठक कहां की जाय, इस विषय की चर्चा होने पर आपने जीवन की अन्तिम बीमारी की निराशापूर्ण अवस्था में ऊपर के शब्द कहे थे, जो कि देश की स्वतन्त्रता के लिए आपके हृदय में उद्दीप्त तीव्रतम भावना के द्योतक हैं और जिनसे आपके योद्धा-स्वभाव का पूरा परिचय मिलता है। आपके इस

स्वभाव का लोहा सरकार भी मानती थी। आपके देहावसान पर सरकार की ओर से समवेदना प्रकट करते हुए होम मेम्बर ने असेम्बली में कहा था—"उनका नेतृत्व प्रत्येक व्यक्ति पर प्रभाव डालनेवाला था। वह एक प्रसिद्ध वकील और वक्ता थे और प्रथम कोटि के नेता थे। इसलिए यह स्वाभाविक था कि वह जहां जाते थे, सबसे आगे की श्रेणी में रहते थे। उनकी तीव्र प्रतिभा, विवाद में चतुरता और युद्ध-कला में निपुणता ऐसी थी कि सरकार के लिए वह एक खतरनाक विरोधी थे।" विश्ववन्द्य महात्मा गान्धी के व्यक्तित्व ने देश का जो कायापलट किया है, उसके श्री मोतीलालजी सर्वोत्कृष्ट उदाहरण थे; और आपमें जो परिवर्तन हुआ था, उसके लिए 'आनन्द-भवन' को 'स्वराज्य-भवन' नाम देकर राष्ट्र को समर्पित कर देने की घटना की ओर संकेत कर देना बस है। आमोद-प्रमोद, सुख-वैभव और राजसी ठाठ-बाट में ही इस जीवन को सफल माननेवाले भी जिसकी कल्पना तक नहीं कर सकते, उसपर 'आनन्द-भवन' की नींव डाली गई थी। १६१० में सुप्रसिद्ध पत्रकार सेण्ट निहालसिंह आपके यहां मेहमान थे। उस समय का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा था कि "उनके सुन्दर, गठित, विशाल मस्तक पर बाल किसी चतुर नाई द्वारा काटे और बड़ी होशियारी के साथ सँवारे गये थे। उनकी सब पोशाक ऊपर से नीचे तक पूरी अंग्रेजों की-सी थी। ऐसा मालूम होता था कि वह सब पोशाक-अभी-अभी लण्डन की बाण्ड-स्ट्रीट के किसी दर्जीखाने से सिलकर आई है। 'आनन्द-भवन' का मद्य-भण्डार यूरोप के प्रसिद्ध मदिरालयों से कहीं अच्छा था।" आपकी पोशाक लण्डन में सिलती और पैरिस में धुलती थी। १६२१ के मध्य

में वायु-परिवर्तन के लिए आप रामगढ़ गये थे, तब आपने गान्धीजी को एक पत्र लिखा था। उस पत्र के पहले भाग में आपने अपनी यौवनावस्था के वैभव की दोपहरी का चित्र अङ्कित किया था और पिछले हिस्से में गान्धीजी के जादू में फँसकर फ़कीरी जीवन बिताने की कहानी लिखी थी। वह सब वैभव आपका अपना बटोरा हुआ और ऐश्वर्य अपना कमाया हुआ था। रुपये-पैसे और सम्पत्ति की कुबेर-राशि जमा हो जाने पर भी आपने जमींदारी में अपना रुपया नहीं लगाया। एक मित्र ने जब आपको वैसा करने की सलाह दी, तब आपने कहा कि इस प्रान्त का कौनसा मालगुजार या ताल्लुकदार है, जिसकी ज़मींदारी का पैसा इस 'आनन्द-भवन' की नींव में नहीं डाला गया है? आप पहले दरजे के वकील थे, न केवल योग्यता में किन्तु पैसा कमाने में भी। ऐसे ज़ीवन का परिवर्तन गान्धी-युग का एक चमत्कार है।

उस सब भोग, विलास, ऐश्वर्य और वैभव की राजसी माया को देश की स्वतन्त्रता की पुकार पर तिनके की तरह छोड़ देनेवाले मोतीलालजी का जन्म ६ मई १८६१ को देहली में हुआ था। आपके पिता गङ्गाधरजी देहली में कोतवाल थे और माता की गर्भावस्था में ही पिता का देहान्त हो गया था। बड़े भाई नन्दलाल ने पितृवत् आपका पालन किया। १२ वर्ष की आयु तक इस्लामी मकतब में फारसी-अरबी सीखी। १८७३ में कानपुर के सरकारी स्कूल में भरती हुए। १८७६ में इन्ट्रेंस पास करके प्रयाग के म्योर कालेज में दाखिल हुए। आप बहुत प्रतिभा-सम्पन्न और तीव्र-बुद्धि थे। १८८२ में आपने वकालत की परीक्षा पास की। २२ वर्ष की अवस्था में १८८३ में कानपुर में वकालत शुरू की।

१८८६ में वकालत के लिए ही इलाहाबाद चले गये। वहां बड़े भाई नन्दलाल के साथ वकालत करने लगे। उन्हीं दिनों में आपने वह बंगला खरीदा, जिसका पहला नाम आनन्द-भवन था और अब है स्वराज्य-भवन। वकालत में नाम पैदा करने में आपको अधिक समय नहीं लगा। जज तक अपने फैसलों में आपकी योग्यता और वाक्‌चातुर्य्य की प्रशंसा किया करते थे। समाचारपत्रों में भी चर्चा हुआ करती थी। १८९६ में हाईकोर्ट के जजों को एडवोकेट नियुक्त करने का जब अधिकार प्राप्त हुआ, तब जो चार एडवोकेट इलाहाबाद में नियुक्त किये गये थे उनमें आप सबसे छोटी आयु के थे। १९२१ में असहयोग-आन्दोलन में वकालत छोड़ने तक आप वकील-एसोसियेशन के सभापति रहे थे।

१८८८ में अलाहाबाद में कांग्रेस का चौथा अधिवेशन सर जार्ज यूल के सभापतित्व में हुआ था। आप उसमें पहली बार शामिल हुए थे। १८९२ में फिर इलाहाबाद में जो अधिवेशन हुआ, उसकी स्वागत-समिति के आप पदाधिकारी चुने गये थे। १९०३ में बम्बई की कांग्रेस में आप जवाहरलालजी के साथ शामिल हुए थे। १९०६ में नरम-गरम दल का झगड़ा कांग्रेस में पैदा हो चुका था। तब आपने नरम-दल का साथ देकर कांग्रेस को उनके हाथों में से निकलने से बचाया। १९०७ और १९१३ में आप प्रान्तीय कान्फ्रेंसों के सभापति हुए थे। उग्र राजनीतिज्ञों की बायकाट तथा कानून-भंग आदि की नीति के आप विरोधी थे। इसलिए आपके भाषणों पर प्रायः असन्तोष प्रकट किया जाता था। सात वर्ष तक युक्तप्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के आप सभापति रहे थे। सेवा-समिति-प्रयाग के उपाध्यक्ष भी कई वर्षों तक रहे

थे। समाज-सुधार-सम्मेलन का भी आपको सभापति चुना गया था। १६०६ में कई मित्रों के सहयोग से आपने संयुक्तप्रान्त के सुप्रसिद्ध-पत्र 'लीडर' को जन्म दिया। 'लीडर' से आपको इतनी ममता थी कि आपने १६१० में पत्रों के विरुद्ध सरकारी दमन के दिनों में कहा था कि "मेरे मकान में एक ईंट के ऊपर दूसरी ईंट जबतक खड़ी है, तब-तक मैं 'लीडर' के स्वतन्त्रता के लिए लड़ने के अधिकार के लिए लड़ूंगा।" पीछे नीति-सम्बन्धी मतभेद के कारण आपने 'लीडर' से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया।

१६०६ में आप युक्तप्रान्तीय कौंसिल के सदस्य हुए। १६१७ में रुड़की के कालेज के गोरे प्रिंसिपल द्वारा भारतीय विद्यार्थियों के अपमान के प्रतिवाद-स्वरूप कौंसिल में आपने उसकी निन्दा का प्रस्ताव पेश किया था। विवाद का प्रत्युत्तर देने का सरकार ने आपको अवसर नहीं दिया। तब आप कौंसिल से उठकर चले आये। गवर्नर और सर सुन्दरलाल के आग्रह पर आपने उसमें फिर जाना स्वीकार किया था। १६१८ में आपने माण्टफोर्ड-सुधारों का विरोध किया था और अपनी एक स्वतन्त्र योजना भी उसमें पेश की थी। होमरूल-आन्दोलन का आपने पूरा समर्थन किया था। प्रान्तीय लीग के आप ही सभापति थे। 'पायोनियर' आपको 'होमरूल का ब्रिगेडियर जनरल' लिखा करता था। ५ फरवरी १६१८ को बसन्त के दिन आपने 'इण्डिपेण्डेण्ट' नाम से बहुत निर्भीक और जोरदार दैनिक पत्र निकालना शुरू किया। उसकी उस समय चारों ओर धूम थी। सरकार ने प्रेस ज़ब्त कर लिया, तब वह हाथ से लिखकर निकाला जाने लगा था।

सब देश की मनोवृत्ति को बदल देनेवाली १६१६ की दुर्घटनाओं ने आपका दिल भी बदल दिया। महायुद्ध की सेवाओं के पुरस्कार रौलेट एक्ट ने, उसके विरोध में सत्याग्रह की घोषणा ने और पंजाब में फौजी-शासन के अनाचार ने आपको उद्विग्न कर दिया। आप नरम राजनीति का त्याग कर ऐसे गरम और उग्र राजनैतिक नेता बन गये कि कांग्रेस की बागडोर जीवन के अन्त तक किसी न किसी रूप में आपके ही हाथों में रही। कई वर्षों तक आप उसके प्रधान-मन्त्री रहे और दो बार राष्ट्रपति हुए। आपकी ही अध्यक्षता में कांग्रेस की ओर से पंजाब-हत्याकाण्ड के लिए जाँच-कमिटी नियुक्त की गई थी। उस जाँच में और वैसे भी मर्माहत पंजाब की आपने जो सेवा की थी, उसीका आभार मानते हुए आपको उस वर्ष अमृतसर में होनेवाली कांग्रेस का सभापति एकमत से चुना गया था। १६१८ में भी यह सम्मान आपको सौंपा गया था, किन्तु बीमारी के कारण आप उसको स्वीकार नहीं कर सके थे। राजनैतिक दृष्टि से स्वभाव में उग्रता और गर्मी आजाने पर भी आप शुरू में असहयोग के विरोधी थे। कलकत्ता में कांग्रेस के विशेषाधिवेशन में असहयोग का कार्यक्रम पेश होने पर उसका विरोध करते हुए आपने श्रीयुत विपिनचन्द्र पाल के संशोधन का समर्थन किया था और नागपुर कांग्रेस में भी आप देशबन्धु दास के साथ उसका विरोध करने के लिए ही गये थे। पर लौटे वहाँ से उसका पूरा समर्थन करते हुए। बाद में असहयोग का जो प्रचण्ड आन्दोलन देश में शुरू हुआ, उसमें आप एक महान् शक्ति के रूप में शामिल हुए। आपका सारा जीवन ही एकदम बदल गया। लाखों की आमदनी की फलती-फूलती

वकालत आपने राष्ट्र का आदेश शिरोधार्य कर तुरन्त त्याग दी। ऊपर जिस परिवर्तन की ओर संकेत किया गया है, वह इसी समय सिनेमा के चित्र की तरह होगया। लखनाराज का मुदद्मा वचनबद्ध होने से आप न छोड़ सके। उसको प्रिवीकौंसिल तक लड़े और विजयी हुए। असहयोग-आन्दोलन के मन्द पड़ने पर आपने १९३० तक मुख्यतः चेम्बर प्रैक्टिस की। १९२८ में 'सर्चलाइट' और १९२९ में कायस्थ-पाठशाला तथा सेठ सर हुकुमचन्द के मुकदमों में विशेष रूप से बहस की। कार्य-समिति की विशेष अनुमति से महाराज दरभंगा का मामला भी आपने लड़ा और उसकी तीन-चौथाई आय कांग्रेस को दे दी। इलाहाबाद हाईकोर्ट के नामी वकील और भूतपूर्व जज इकबाल अहमद ने कहा था कि "मैंने अपनी सारी आयु में उनसे बड़ा एडवोकेट और अद्भुत वकील नहीं देखा। उनके समान व्यक्ति ही इस पेशे की मर्यादा को बढ़ाते हैं।" इसी प्रकार चीफ जस्टिस सर ग्रीमाउड़े निर्स ने वकीलों को सम्बोधन करते हुए कहा था कि "आपमें से बहुतों को इटावा के मुकदमे में की गई उनकी पैरवी याद होगी। सारे संसार में कोई और वकील उस मुकदमे को उनसे ज्यादा अच्छा नहीं लड़ सकता था।" यह सब प्रतिष्ठा और योग्यता और उससे होने वाली लाखों की आमदनी को आपने देश की स्वतंत्रता की वेदी पर न्यौछावर कर दिया। त्याग, तपस्या और साधना में भी आपने सबसे पहली पंक्ति में सबसे आगे खड़े होकर दिखा दिया।

नवम्बर १९२१ में युवराज के स्वागत के बहिष्कार का जोर था। स्वयंसेवक-दलों के गैरकानूनी ठहराये जाने पर आपने परिवार के सब

लोगों के साथ स्वयंसेवकों में अपना नाम लिखवाया। ६ दिसम्बर को आप गिरफ्तार किये गये। अहमदाबाद-कांग्रेस के अवसर पर समझौते की चर्चा चली। आपने गांधीजी को अपनी शर्तों पर दृढ़ रहने की सलाह दी। जेल से अस्वस्थ होकर लौटे, किन्तु आराम से नहीं बैठे। कांग्रेस के प्रधान-मंत्री का काम तुरन्त सम्हाल लिया।

चौरीचौरा-काण्ड पर सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया। महात्मा गांधी को ६ वर्ष की सजा हुई। आन्दोलन में शिथिलता पैदा हुई। ७ जून १६२२ को लखनऊ में कार्य-समिति की बैठकें हुईं। आप-के सभापतित्व में 'सत्याग्रह-जाँच-कमिटी' नियुक्त की गई। कमिटी ने सारे देश का दौरा किया और यह सम्मति प्रकट की कि देश सत्याग्रह के लिये तय्यार नहीं हैं, कौंसिलों पर धावा बोलना चाहिए। १६२२ में गया में देशबन्धु के सभापतित्व में कांग्रेस हुई। उसमें वह रिपोर्ट स्वी-कृत नहीं हुई। फिर आप और देशबन्धु दास ने मिलकर कांग्रेस के अन्तर्गत स्वराज्य-दल का संगठन किया। कांग्रेसवादियों में परिवर्तन-वादी और अपरिवर्तनवादी दो दल बन गये। उनमें भयानक संघर्ष हुआ। सितम्बर १६२३ में देहली में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन होकर स्वरा-ज्य-दल की नीति का समर्थन किया गया। असेम्बली के लिए आप निर्विरोध चुन लिये गये और स्वराज्य-दल के अन्य उम्मीदवारों के लिए आपने प्रचण्ड आन्दोलन किया। असेम्बली में स्वराज्य-दल ने उस समय जिस संगठन और कार्यक्षमता का परिचय दिया, वह आपकी प्रतिभा, योग्यता, दृढ़ता, राजनीतिज्ञता और अनुशासन-शक्ति का परिणाम था। जब आप बोलने खड़े होते थे, तब सरकारी सदस्य सहम जाते थे।

उसी समय देश में हिन्दू-मुस्लिम-संघर्ष ज़ोरों पर था। आप उस समय राष्ट्रीयता की चट्टान की तरह अविचल बने रहे और अपने आचार-विचार या उच्चार में कभी भी साम्प्रदायिकता को आने नहीं दिया। आपसे किसी ने पूछा कि आप हिन्दू-महासभा के सभासद् क्यों नहीं बनते? आपने फौरन उत्तर दिया—'महज़ इसलिए कि मैं मुस्लिम लीग का मेम्बर नहीं बना हूँ।' १६२४ में देहली में जब गांधीजी ने हिन्दू-मुसलमानों की कलह के प्रायश्चित्त के लिए २१ दिन का उपवास किया था, तब आपके ही सभापतित्व में एकता-सम्मेलन हुआ था, जिससे स्पष्ट था कि उन दिनों में भी आप पर हिन्दू-मुसलमान दोनों का एक-सा विश्वास था। १६२६ के असेम्बली-चुनाव में मालवीयजी और लालाजी ने स्वराज्य-दल से रूठकर नैशनलिस्टपार्टी के नाम से स्वराज्य-दल के विरोध में उम्मीदवार खड़े किये थे। हिन्दू-महासभा को भी आप लोगों ने अपने साथ ले लिया था। हिन्दू महासभा वालों ने आपपर बहुत कीच उछाला था। पर, आप विचलित नहीं हुए। आपकी राष्ट्रीयता तप कर खरे सोने की तरह चमकती रही। १६२६ के चुनाव के बाद भी आपने अपने दल की धाक असेम्बली में जमाई हुई थी। पब्लिक सेफ़्टी बिल पर तब सरकार को मुँह की खानी पड़ी थी।

१६२७ में लखनाराज के मुकद्दमे के लिए आप विलायत गये थे। उसी वर्ष नवम्बर में साइमन-कमीशन की नियुक्ति हुई थी। साइमन-साहब से मिलने के लिए आपको इशारा किया गया। चूंकि भारत में कमीशन का बायकाट करना तय हुआ था, इसलिए आपने मिलने से इनकार कर दिया। सोवियट-सरकार के निमंत्रण पर आप उसके दसवें वार्षिकोत्सव में शामिल होने के लिए रूस गये थे।

मदरास-कांग्रेस में कार्य-समिति को विभिन्न दलों के लोगों से परा-मर्श करके भारत के शासन-विधान की सर्वसम्मत योजना तय्यार करने का काम सौंपा गया था। कार्य-समिति ने वह कार्य-भार आप पर डाल दिया। आपने तन्मय होकर उस कार्य को किया। दिल्ली में सर्वदल-सम्मेलन के अधिवेशन हुए। मुस्लिम-लीग और हिन्दू-महासभा के अड़ंगा डालने पर भी आपने योजना तय्यार की। वही 'नेहरू-रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुई। आपके शासन-पद्धति के गूढ़ ज्ञान और प्रखर राजनैतिक योग्यता की वह उज्ज्वल निशानी है। लखनऊ और कल-कत्ता में सर्व-दल-सम्मेलन होकर उसपर फिर विचार हुआ। १९२८ में कलकत्ता में कांग्रेस आपकी ही अध्यक्षता में हुई। आपका शानदार स्वागत इन्द्र को भी ललचाने वाला था। कांग्रेस ने उस रिपोर्ट को राष्ट्रीय माँग के रूप में सरकार के सामने पेश किया और सरकार को उसपर विचार करने के लिए एक वर्ष की मोहलत दी। १९२९ में उसको लेकर सारे देश में आन्दोलन हुआ और साइमन-कमीशन का पूर्ण बहिष्कार हुआ। सरकार भी घबरा-सी गई। पर अपनी ज़िद छोड़ने को तय्यार न हुई। लाहौर-कांग्रेस से ठीक पहले वाइसराय ने आपको और गांधीजी को मिलने के लिए बुलाया। मुलाकात का कुछ परिणाम न निकला। लाहौर कांग्रेस ने एक साल की मियाद पूरी होने पर ३१ दिसम्बर की आधी रात को अपना ध्येय पूर्ण-स्वतंत्रता कायम किया। शेष आधी रात लोगों ने नाचने, गाने, बजाने और खुशियों में बिताई। आप बुढ़ापा भूल गये। सिर पर सरहदी कुल्ला रख लुङ्गी पहन बच्चों के नाच-गान में शामिल हो गये। उस बुढ़ापे में यदि कहीं स्वतन्त्रता

मिल जाती, तो उस दिन की खुशियों का अनुमान इस नाच-गान से सहज में किया जा सकता है। पूर्ण-स्वतन्त्रता ध्येय बना होने पर कौंसिलों में कैसे रहा जा सकता था? स्वराज्य दल टूट गया। कौंसिलें खाली कर दी गईं। २६ जनवरी को स्वतन्त्रता-दिवस मनाकर देश ने सत्याग्रह की ओर कदम बढ़ाया। गांधीजी ने दांडी-महायात्रा को पूरा करके ६ अप्रैल को नमक-कानून भङ्ग किया ही था कि सारे देश में सत्याग्रह का बिगुल बज गया। १४ अप्रैल को जवाहरलालजी गिरफ़्तार कर लिये गये। पिता ने लाहौर में पुत्र के सिर पर कांटों का ताज रखा था, अब पुत्र ने फिर पिता के ही सिर पर वह ताज रख दिया। पुत्र के लिए पिता का उत्तराधिकारी होना साधारण बात है, किन्तु पिता के पुत्र का उत्तराधिकारी होने की यह असाधारण घटना थी, वह भी तब जब सारा देश युद्ध के मैदान में खड़ा था और एक सेना के समान उसका संचालन करना था। आपने अपने हाथ से नमक बनाया और बार-बार बनवाया। इलाहाबाद में वह खूब बिका। विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार और देशी मिलों को भी पूरी तरह स्वदेशी बनाने का आपने सफल आन्दोलन किया। सत्याग्राहियों के प्रति पुलिस का दुर्व्यवहार और सरकार का दमन जोरों पर था। धरासना और शोलापुर की ज्यादतियों में दमन सीमा को लांघ गया था। कार्य-समिति ने आपकी अध्यक्षता में पुलिस और फौज वालों को स्वदेश के प्रति कर्तव्य पालन करने के लिए आह्वान किया। सरकार ने उसको गैर-कानूनी घोषित किया और आपको गिरफ़्तार करके ६ मास की सजा दे दी गई। जयकर-सप्रू ने सन्धि चर्चा शुरू की। आपको और

जवाहरलालजी को विशेष रूप से नैनी जेल से यरवडा जेल ले जाया गया। पर, सन्धि न हुई।

आपके लिए अस्वाभाविक एवं कठोर जेल-जीवन में आपकी पुरानी बीमारी उठ खड़ी हुई। दमा और ज्वर ने जोर पकड़ा। फेफड़ों में सूजन पैदा हो गई, थूक में खून आने लगा। बीमारी के बढ़ जाने पर आपको ८ सितम्बर को जेल से रिहा कर दिया गया। औषधोपचार के लिए कलकत्ता और आराम के लिए मन्सूरी गये। सरदियों में इलाहाबाद लौट आये। आपके मन को शान्ति कहीं नहीं मिली। पहले विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार में लगे रहे, फिर बंगाल के कांग्रेसियों में सुलह कराने का यत्न किया, और बाद को आन्दोलन को जीवित बनाये रखने की चिन्ता करते रहे। स्वास्थ गिरता गया। आपकी बीमारी के कारण ही जवाहरलालजी को भी रिहा कर दिया और गान्धी-अर्विन-समझौते की चर्चा के लिए अन्य नेता भी छोड़ दिये गये। गान्धीजी सीधे आपके पास आये। ४ फरवरी को एक्सरे-परीक्षा के लिए आपको लखनऊ मोटर से ले जाया गया। ५ की दोपहर तक अच्छे रहे। शाम को शरीर की शक्ति-क्षीण और चेहरा पीला पड़ने लगा। आधी रात बाद बेचैनी बढ़ गई। सबेरे ६ बजे पानी माँगा। गला सूख गया। रोग की शरशैया पर पड़े हुए पितामह ने ६-४० पर प्राण त्याग दिये। राष्ट्रीय पताका के कफन से शव को ढककर मोटर से इलाहाबाद लाया गया। त्रिवेणी पर शाम को साढ़े छः बजे दाह-संस्कार हुआ। महात्मा गान्धी ने चिता की ओर संकेत करके कहा—"यह चिता नहीं, राष्ट्रयज्ञ का हवन-कुण्ड है।" भारत का स्वतन्त्रता-आन्दोलन युद्ध नहीं एक

बृहद् यज्ञ है, आत्मोत्सर्ग का एक महान् अनुष्ठान है। १६३०-३१ के उस अनुष्ठान में, बृहद् यज्ञ के उस अग्नि-कुण्ड में, राष्ट्र ने बहुत-सी आहुतियां डाली थीं, किन्तु समझौते से ठीक पहले डाली गई वह पूर्णाहुति सचमुच बहुत बड़ी और दिव्य थी। वह उस आन्दोलन के शान्तिपर्व का प्रारम्भ नहीं, अवसान था।

महापुरुषों का व्यक्तित्व जीवन की अपेक्षा मृत्यु के बाद अधिक चमकता है। मोतीलालजी के देहावसान के बाद भारत में ही नहीं, विश्व के कोने-कोने में मातम मनाया गया। विरोधी भी उस मातम में आत्मीय जनों की तरह शामिल हुए। ऐसा विश्वव्यापी मातम उससे पहले किसी भी भारतीय के लिए नहीं मनाया गया था। उससे आपकी प्रतिष्ठा, प्रभाव और गौरव का अनुमान सहज में किया जा सकता है।

वल्लभभाई झवेरभाई पटेल

पैंतालीसवां अधिवेशन, कराची—१९३१

"वल्लभभाई बरफ से ढका हुआ ज्वालामुखी है।" मौलाना शौकतअली के इस एक वाक्य में और 'सरदार' इस एक शब्द में ही वल्लभभाई का यथार्थ चित्र अङ्कित हो जाता है। आपको बर्फ से ढका हुआ ज्वालामुखी का-सा शान्त किन्तु उग्र स्वभाव और सरदार की-सी योद्धा-वृत्ति विरासत में अपने पिता से ही प्राप्त हुई। आपके पिता झवेरभाई वीर, साहसी, निर्भीक और योद्धा-वृत्ति के थे। सन् १८५७ में तीन वर्ष तक अपने गांव करमसद या ताल्लुका पेटलाद में किसी को कुछ पता न था कि वह कहां हैं! पीछे पता चला कि वह अपनी खेती-बाड़ी सब कुछ छोड़ झांसीवाली महारानी लक्ष्मीबाई की सेना में जाकर शामिल हो गये थे। ६२ वर्ष की आयु में उनका देहान्त हुआ था। उनमें जैसी साहसिकता थी, वैसी ही आस्तिकता और ईश्वर-भक्ति भी थी। अपने पिता के इन सब सद्गुणों का वल्लभभाई में जब विकास हुआ, तब साँप की काँचली की तरह

सैर-सपाटों और आनन्द-विनोद के जीवन का परित्याग कर आप सहसा ही 'सरदार' बन गये। बड़े भाई विट्ठलभाई ने असेम्बली में प्रेसिडेण्ट के कार्य को जिस शान के साथ निबाहा था, उसी प्रकार आपने 'सरदार' की शान को निबाहा है। किसानों के नेतृत्व के ही कारण आपको सरदार कहा जाता है और काका कालेलकर का यह कथन आपके सम्बन्ध में बिलकुल ठीक है कि "जब किसान व्याकुल होने लगता है, तब वल्लभभाई का खून खौलने लगता है।" गुजरात के किसानोंकी निरन्तर सेवा इस कथन का समर्थक है।

पिता के समान माता भी धर्मशीला और साध्वी स्त्री थीं। ८० वर्ष की आयु में भी उन्होंने चरखा चलाना और भगवद्भक्ति करना न छोड़ा था। आपके चरित्र-निर्माण में माता का भी काफी हिस्सा है।

आपकी जन्मतिथि का कोई पता नहीं चलता। स्वयं वल्लभभाई या आपके रिश्ते-नाते में भी किसी व्यक्ति को उसका कुछ पता नहीं है। आपकी शिक्षा पहले घर पर ही हुई, फिर पेटलाद, नड़ियाद और बड़ौदा में मैट्रिक आपने नड़ियाद से पास किया।

विद्यार्थी-जीवन में आप बहुत नटखट थे। अध्यापकों के स्वभाव के साथ आपका स्वभाव कभी मेल नहीं खाता था। नड़ियाद-स्कूल के एक शिक्षक स्कूली पुस्तकें खरीदने का दबाव डाला करते थे। आपने उसके विरुद्ध आन्दोलन किया। स्कूल में हड़ताल हो गई। छः दिन हड़ताल रही। शिक्षक को हार माननी पड़ी। इसी प्रकार की घटना बड़ौदा में हुई। आपने मैट्रिक में संस्कृत छोड़कर गुजराती ले ली। गुजराती के शिक्षक श्री छोटालाल संस्कृत के प्रेमी थे। उनको किसी

भी विद्यार्थी का वैसा करना न जंचता था। आप जब उसकी कक्षा में गये तो उन्होंने व्यंग में कहा कि— "पधारो, महापुरुष! संस्कृत छोड़ कर गुजराती ले तो रहे हो, लेकिन बिना संस्कृत के गुजराती नहीं शोभती।" बालक ने धीरे से कहा कि "यदि सभी संस्कृत पढ़ें, तो फिर आप किसको पढ़ायेंगे?" नटखट बालक को पिछली बैंच पर दिन भर खड़ा रहने की आज्ञा दी गई। गुरु-शिष्य का मनोमालिन्य बढ़ता गया। गुरु तङ्ग करने के लिए शिष्य को घर से पहाड़े लिखकर लाने का काम देने लगे और कक्षा में आने पर पूछते कि "क्या तुम पाड़े करके लाये? नटखट बालक के धैर्य का बांध टूट गया। उसने एक दिन कह दिया—"मास्टर साहब! पाड़े लाया तो था, पर दरवाजे पर दो-एक के भड़कने पर सारे के सारे भाग गये।" पाड़े का अर्थ पहाड़ा और गाय-भैंस वगैरः का बच्चा भी होता है। मामला हैडमास्टर के पास पहुँचा। विद्यार्थी ने सच बात सच-सच कह दी। हैडमास्टर ने बिना कुछ कहे-सुने बात टाल दी। हैडमास्टर श्री नरवण का अब भी यही मत है कि "मैंने वैसा लड़का कभी नहीं देखा।" गुरु छोटालाल होते, तो वे भी देख लेते कि उन्होंने अपने शिष्य के साथ किसी दिन 'महापुरुष' का जो व्यंग किया था, वह भविष्यवाणी की तरह सत्य सिद्ध होगया है।

माता-पिता साधारण स्थिति के थे। आपको ऊँची शिक्षा प्राप्त करने का शौक तो न था, किन्तु बैरिस्टरी पास करने के लिए विलायत जाने की इच्छा अवश्य थी। मुख्तारी पास करके आपने गोधरा में प्रेक्टिस शुरू करदी। विट्ठलभाई उस समय बोरसद में वकालत करते थे। कुशाग्र बुद्धि और मेहनती होने तथा लगन के साथ काम

करने के कारण आपकी प्रैक्टिस खूब चल निकली। अधिकारियों तथा पुलिस अफसरों पर भी धाक जम गई। अदालत में खड़े होकर जब बहस करते, तब हाकिम दंग रह जाते थे। खून-खराबी, डाकेज़नी और झूठे दस्तावेजों के फौजदारी मामले ही आपके पास अधिक आते थे। कानून-ज्ञान की अपेक्षा जिरह करने की खूबी पर ही आपकी सफलता का सब दारोमदार था।

गोधरा में प्लेग फैलने पर नाज़िर के बीमार लड़के की सेवा-सुश्रुषा करते हुए आपको भी प्लेग ने आ दबाया। आग्रह करके पत्नी को करमसद भेज दिया और आप नड़ियाद चले गये। आप तो वहां अच्छे होगये, किन्तु पत्नी बीमार पड़ गईं। आपरेशन के लिए उनको बम्बई पहुंचा आये। आपरेशन के बाद स्वास्थ सुधरने के समाचार प्रायः रोज ही मिलते रहते थे। पर, एकाएक तबीयत बिगड़ गई। एक दिन अदालत में मुकदमा लड़ते हुए पत्नी के वियोग का तार मिला। तार पढ़ा और सामने रख दिया। सब काम समाप्त करने के बाद मित्रों से उसकी चर्चा की। विपत्ति में धैर्य का इससे बढ़िया उदाहरण और कहां मिलेगा?

कुछ रुपया जमा हो जाने पर विलायत जाकर बैरिस्टर बनने की पुरानी अभिलाषा फिर जाग उठी। एक कम्पनी से पत्र-व्यवहार करके सब प्रबन्ध कर लिया कि अन्तिम पत्र विट्ठलभाई के हाथ पड़ गया। बड़े भाई ने पहले विलायत जाने की इच्छा प्रकट की। आपने उसे मान लिया और पन्द्रह दिन ही बाद आपकी जगह वह विलायत के लिए बिदा हो गये। तीन वर्ष बाद बैरिस्टर होकर उनके लौट आने के बाद

आप विलायत गये। वहां जाकर आपका स्वभाव और रहन-सहन एकदम बदल गया। एकान्तसेवी होकर आप पढ़ाई में तन्मय हो गये। निवासस्थान से ११ मील दूर पुस्तकालय में बड़े सबेरे ही पहुंच जाते और तब उठते जब चपरासी आकर उसको बन्द करने की आपको सूचना देता। खाना भी वहीं मंगा कर खा लेते। प्रथम श्रेणी में प्रथम रह कर बैरिस्टरी की परीक्षा पास की, ५० पौण्ड की छात्रवृत्ति मिली और चार टर्म की फीस भी माफ हो गई। परीक्षकों में से एक ने आपकी प्रतिभा और योग्यता पर मुग्ध होकर चीफ़ जस्टिस स्कॉट को आपको न्याय-विभाग में ऊंची से ऊंची जगह देने की सिफारिश करते हुए एक पत्र लिखा। परीक्षा से छुट्टी पाकर दूसरे ही दिन आप स्वदेश लौट आए। विलायत या यूरोप की सैर के लिए वहां आप एक दिन भी नहीं ठहरे।

अहमदाबाद में आकर बैरिस्टरी शुरू की और दोनों हाथों से पैसा बटोरना शुरू किया। विट्ठलभाई बम्बई में प्रैक्टिस करते थे और साथ में लोक-सेवा भी। दोनों भाइयों में आपस में तय होगया कि छोटा भाई पैसा कमाये, तथा घर का खर्च चलाये और बड़ा भाई लोक-सेवा की धूनी रमाये। पर, जो स्वेच्छा से इस प्रकार बड़े भाई को देश-सेवा की धूनी रमाने की सलाह और सुविधा दे सकता था, वह स्वयं कब तक उससे अलग रह सकता था? गान्धीजी के सम्पर्क में आने पर आप भी देश-सेवा के रंग में पूरी तरह रंग गये।

शुरू-शुरू में आप गान्धीजी का मज़ाक उड़ाया करते थे कि "गान्धी क्यों इन लोगों के सामने ब्रह्मचर्य की बातें करता है? यह तो

भैंस के सामने भागवत कहने सरीखा है।" अपने उन दिनों के स्वच्छन्द जीवन के बारे में आपने स्वयं ही एक बार कहा था कि "मैं दुर्गा पूजा के दिन सैर-सपाटों और आनन्द-विनोद में गुजारा करता था। उन दिनों मैं मानता था कि इस अभागे देश के निवासियों के लिए यही आवश्यक है कि वे विदेशियों के पद-चिह्नों पर चलें। मैं जो कुछ पढ़ता था, उसका यही निष्कर्ष निकालता था कि हमारे देशवासी नासमझ हैं और हम पर शासन करनेवाले हमारे हितचिंतक, उद्धारक और उन्नत हैं। हमारे देशवासी तो केवल गुलाम रहने के योग्य हैं।" पर, इन विचारों के बदलने में अधिक समय नहीं लगा। गान्धीजी के क्रियामय जीवन का आप पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि स्वच्छन्दता की तह में सोई हुई आस्तिकता जाग उठी और आपका एकाएक काया-पलट हो गया। सत्य और अहिंसा में आपकी श्रद्धा स्थिर हो गई। गोधरा में प्रान्तीय-राजनैतिक-सम्मेलन हुआ। गान्धीजी उसके सभापति थे। कान्फ्रेंस के कार्य की पूर्ति के लिए एक कमेटी बनाई गई। आपको उसका मन्त्री बनाया गया। गान्धीजी चम्पारन चले गये। उसका सब काम आपको संभालना पड़ा। आपके सामने बेगार की समस्या उपस्थित हुई। आपने कमिश्नर के साथ उसके बारे में पत्र-व्यवहार किया। जब कुछ सन्तोषजनक उत्तर न मिला, तब सात दिन का नोटिस देकर लिख दिया कि हाईकोर्ट के अमुक फैसले के अनुसार बेगार के गैर-कानूनी होने से लोगों में बेगार न देने के लिए आन्दोलन शुरू कर दिया जायगा। छठे दिन कमिश्नर ने आपको बुलाया और आन्दोलन किये बिना ही बेगार की समस्या हल हो गई।

खेड़ा में सत्याग्रह करने की तैयारी शुरू होने पर गान्धीजी का सब से पहले साथ देनेवाले आप ही थे। उसके लिए गांव-गांव घूमकर आन्दोलन किया था। महायुद्ध के समय रंगरूटों की भरती करने में भी आप गान्धीजी के साथ थे। रौलेट-एक्ट के प्रतिकूल किये गये सत्याग्रह में आपने सब प्रकार के कष्ट उठाकर भी गान्धीजी का साथ दिया और असहयोग के युग में रही-सही वकालत को भी तिलांजलि देकर आप सर्वतोभावेन गान्धीजी के साथ हो गये। लड़के और लड़की को विलायत भेज कर आप उच्च शिक्षा दिलाना चाहते थे। पर, यहां भी कुछ अधिक न पढ़ा सके। सरकारी संस्थाओं का बहिष्कार होने पर दोनों को आपने पढ़ाई से हटा लिया। गुजरात विद्यापीठ आपके अनथक श्रम का ही परिणाम था, जिसके लिए आपने १० लाख रुपया जमा किया था। विजयी-बारडोली का अद्भुत संगठन आपकी कर्तृत्व शक्ति का परिचायक है। आपके ये शब्द किसानों के हृदयों में सीधे पहुंचते और स्थिर स्थान बना लेते हैं—"शत्रु का लोहा भले ही गरम हो जाय, पर हमारा हथौड़ा तो ठण्डा रह कर ही काम दे सकता है।" "किसान होकर यह मत भूल जाना कि बैसाख-जेठ की भयानक गरमी के बिना आषाढ-श्रावण की वर्षा नहीं होती।" "मरने-मारने की तालीम सिपाहियों को देने में सरकार को छः महीने लगते हैं। हमें तो सिर्फ मरना ही सीखना है, उसमें तीन महीने भी क्यों लगने चाहिएँ।" "अरे सांप को क्या अपनी कांचली उतार फेंकने में कष्ट होता है या कोई मेहनत करनी पड़ती है? इसी तरह हम भी एक दिन पराये शासन की कांचली उतार फेंकेंगे। उसके लिए श्रम और कष्ट कैसा?"

"यदि राजसत्ता अत्याचारी हो तो किसान का सीधा उत्तर है,जा, जा तेरे ऐसे कितने ही राज मैंने मिट्टी में मिलते देखे हैं।" ऐसे सीधे-सादे शब्दों में मतलब की सीधी बात कहना आप जानते हैं। आप व्याख्याता या वक्ता नहीं हैं, किन्तु आपके शब्दों में अपने क्रियात्मक जीवन की जो प्रचुर शक्ति सदा समाई रहती है, वह जैसा भयानक तूफान पैदा कर देती है, उसका परिचय कई बार मिल चुका है। १६२३ में नागपुर में हुए झण्डा-सत्याग्रह की विजय भी उसकी एक स्पष्ट साक्षी है। सब स्थानीय नेताओं और कार्यकर्ताओं के गिरफ्तार होने पर आपने नागपुर जाकर आसन जमा दिया और सत्याग्रह के संचालन का सब काम अपने हाथों में ले लिया। १०-१५ दिन में ही सरकार ने घुटने टेक दिये। विजय का झण्डा फहराते हुए आप गुजरात लौटे।

फरवरी १६२४ में गांधी जी जेल से छूट आये। वल्लभभाई को शुद्ध कांग्रेसी कार्यों के सिवा अन्य कामों में भी हाथ लगाने का अवसर मिला। सन् १६२५ में आपके नेतृत्व में अहमदाबाद के कांग्रेसियों ने स्थानीय म्युनिसिपैलिटी का चुनाव लड़ा और उसको हस्तगत कर लिया। वल्लभभाई म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन चुने गये। इस पद पर रह कर पांच वर्षों तक आपने शहर की सफाई और शिक्षा को राष्ट्रीय बनाने का अभूत-पूर्व कार्य किया। म्युनिसिपल शिक्षणालयों में राष्ट्रीय पर्वों की छुट्टियां करना, राष्ट्रीय गीतों का गाना, पाठ्य पुस्तकों में सुधार आदि के लिए सरकार से बार-बार टक्करें लेनी पड़ीं।

१६२६ में गुजरात के कई जिलों में अति वर्षा के कारण बाढ़ आ गई थी। उसमें भी आपने पीड़ितों को सहायता पहुँचाने का

बहुत बड़ा काम किया। उस समय आपकी सङ्गठन की शक्ति का लोहा सरकार ने भी माना और सरकारी अकाल कोष में से एक करोड़ रुपया बाढ़-पीढ़ितों की सहायतार्थ आपके हाथों में रख दिया। जनता द्वारा भी लाखों रुपयों की आर्थिक सहायता मिली उस समय की सेवा द्वारा आप जनता की दृष्टि में 'गुजरात-बल्लभ' बन गये। गुजरात की जनता के हृदयों पर आपका सदा के लिए अधिकार हो गया। सरकार।पर भी आपकी कार्य-दक्षता की छाप लग गई।

आपका सब से बड़ा काम, जिसके कारण आप पहले-पहल 'सरदार' कहलाये, १६२८ का बारडोली-सत्याग्रह है। १६२७ में बम्बई सरकार ने प्रान्तिक लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रस्ताव के विरुद्ध और बारडोली के किसानों की प्रार्थना की परवा न करके नया ज़मीन-बन्दोबस्त करके उस ताल्लुके का ज़मीन-लगान २२ प्रतिशत बढ़ा दिया। ताल्लुका के किसानो ने जब देखा कि सरकार किसी भी प्रकार उस आज्ञा को वापिस नहीं लेगी तब उन्होने आपके नेतृत्व में सत्याग्रह करने की ठान ली और सरकार को लगान न देने का निश्चय कर लिया। लगान जमा करने के लिए सरकार की नियत की हुई अन्तिम तारीख १२ फरवरी १६२८ को सत्याग्रह की घोषणा कर दी गई। सरकार ने किसानों को डराया-धमकाया, मारा-पीटा, उनके पशु तथा अन्य सम्पत्ति जब्त की और बदमाश पठानों को ताल्लुके में तैनात कर दिया, उन्होंने चोरियां कीं, स्त्रियों का अपमान किया तथा लड़ाई-झगड़े किये। अन्त में किसानों की ज़मीनें तक ज़ब्त कर ली गईं, परन्तु सङ्गठन ढीला नहीं पड़ा। वह इतना प्रबल था कि स्वयं

सरकारी अफसरों तक को कई-बार ग्रामों में सवारी, रसद आदि मिलना मुश्किल हो जाता था और सत्याग्रही स्वयंसेवकों का सहारा लेना पड़ता था। अगस्त के आरम्भ में सरकार झुकी और प्रान्तिक कौंसिल के कई सदस्यों ने बीच में पड़ कर ९ अगस्त को सरकार और सत्याग्रहियों में समझौता करा दिया। ज़ब्तशुदा ज़मीनें लौटा दी गईं, कैदी छोड़ दिये गये, बरखास्त मुखिया और पटवारी फिर बहाल किये गये और सरकार ने बन्दोबस्त बिल्कुल नये सिरे से करवाया। ११ अगस्त को समस्त ताल्लुके में विजयोत्सव मनाया गया।

१९२९ का सारा वर्ष सरदार पटेल ने अपने प्रान्त में कांग्रेस का रचनात्मक कार्य करने में बिताया। १९३० के मार्च में जब देश-भर में सत्याग्रह की तैयारियां हो रही थीं तब ७ मार्च को रास नामक ग्राम में जिला मजिस्ट्रेट की भाषण न करने की आज्ञा भङ्ग करने के अपराध में आप गिरफ्तार कर लिये गये और आपको ३ मास कैद तथा ५०० रु० जुर्माने की सज़ा हुई। ९ जून को जब जेल से छूटे, तब गांधी जी और पं० जवाहरलाल नेहरू आदि प्रायः सभी प्रमुख नेता जेल में बन्द किये जा चुके थे। कांग्रेस वर्किंग कमेटी के गैर-कानूनी घोषित किये जाने के बाद मोतीलालजी नेहरू ने अपने गिरफ्तार होने पर आपको ही स्थानापन्न राष्ट्रपति अथवा 'डिक्टेटर' नियत किया था। उन दिनों जगह-जगह सरकार की तरफ से लाठी-मार, अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों और गोली चलाने आदि की धूम थी। पहली अगस्त को बम्बई में लोकमान्य तिलक की वर्षी के उपलक्ष में जो विराट जलूस निकला, उसे स्थानीय अधिकारियों ने हार्नबी रोड पर रोक दिया।

पं० मालवीय, डा० हर्डीकर, श्री तसद्दुक अहमदखाँ शेरवानी और आप तथा अन्य अनेक नेता उस जलूस के साथ थे। जलूस सायंकाल के ४ बजे से दूसरे दिन प्रातःकाल ~~६~~ बजे तक सड़क पर ही डटा रहा। अन्त में पुलिस अधिकारियों ने नेताओं को गिरफ़्तार कर लिया और लोगों पर लाठियां बरसा कर तितर-बितर कर दिया। आपको इस बार भी तीन मास की सजा हुई। जेल से छूटने पर आपने फिर देश-व्यापी सत्याग्रह का नेतृत्व किया। गांधी-अर्विनन-समझौते के लिए जनवरी १९३१ में सब नेता छोड़ दिये गये। ५ मार्च को समझौता होकर आन्दोलन बंद कर दिया गया। और करांची में कांग्रेस का अधिवेशन करने की तय्यारियां की जाने लगीं।

मार्च के अन्त में करांची में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। वह कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण था और जिन परिस्थितियों में वह हुआ वे भी कुछ कम महत्वपूर्ण नहीं थीं। लाहौर में सरदार भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरु को फांसी होने के कारण नवयुवक अत्यन्त अधिक विक्षुब्ध थे और कानपुर के भयानक हिन्दू-मुस्लिम दंगे तथा अमर शहीद श्री गणेश शङ्कर जी विद्यार्थी की हत्या ने तो सारे ही वातावरण में भयानक विक्षोभ पैदा कर दिया था। उस विषाद, सन्ताप और विक्षोभ की घटाओं में राष्ट्र के नेतृत्व की बागडोर को मजबूत हाथों में संभालना सरदार का ही काम था। आपने अपने छोटे से भाषण में कहा था कि वह गौरव आपने मुझ सरीखे किसान को नहीं दिया किन्तु स्वतंत्रता के युद्ध में बलिदान होनेवाले गुजरात प्रान्त को दिया है। सचमुच; सेवा, त्याग और कष्ट-सहन द्वारा आपने अपनेको गुजरात के साथ तन्मय

कर लिया है। गुजरात और वल्लभभाई एक ही अर्थ और भाव के द्योतक दो शब्द हैं। नागरिकों के मौलिक अधिकारों तथा कर्तव्यों की घोषणा और गोलमेज परिषद् के लिए गांधीजी को भारतीय-राष्ट्र का एकमात्र प्रतिनिधि नियुक्त करना,—यह दोनों उक्त अधिवेशन के महत्वपूर्ण कार्य थे।

गांधी-अर्विन-पैक्ट के अनुसार संयुक्त-प्रान्त और गुजरात के किसानों के साथ पूरा न्याय न होने की शिकायत को लेकर गांधीजी का गोल-मेज-परिषद् के लिए विलायत जाना नामुमकिन हो रहा था कि सरकार को फिर झुकना पड़ा और उन शिकायतों की विशेष रूप में जांच करानी पड़ी। श्री भूलाभाई देसाई के द्वारा आपने गुजरात के किसानों की शिकायतों को सरकार के सामने पेश किया था।

गांधीजी गोल-मेज-परिषद् से भारत लौटे भी न थे कि गांधी अर्विन-पैक्ट को कबर में दफना कर दमन का सिलसिला उसी सिरे से शुरू हो चुका था, जहां कि उसको उक्त पैक्ट से पहले छोड़ा गया था। गांधीजी की वायसराय से मिलने तक की मांग स्वीकार न की गई। दमन का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि आन्दोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। आपको भी अन्य अनेक नेताओं के समान आन्दोलन प्रारम्भ होने से पहले ही ४ जनवरी को गिरफ़्तार करके १८१८ के तीसरे रेगुलेशन के अनुसार अनिश्चित काल के लिए जेल में बन्द कर दिया गया। यरवडा जेल में आपको गांधीजी के साथ रखा गया। हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध में गांधीजी के आमरण उपवास करने के निश्चय का आपके मन पर बहुत गहरा असर पड़ा था। गांधीजी के

उपवास के उन दिनों में आपने एक दम मौन रहने का व्रत ले लिया था। न कभी आप बोलते थे और न हँसते ही थे।

गांधीजी जेल से छोड़ दिये गये थे और उन पर सत्याग्रह को स्थगित करने के लिए कुछ नेताओं और कार्यकर्त्ताओं की ओर से दबाव डाला जा रहा था। सरकार भी सन्धि या समझौते की बात करने से पहले सत्याग्रह को तिलाञ्जलि दे देने की मांग कर रही थी। तब गांधीजी ने लिखा था कि "सत्याग्रह उस समय तक नहीं उठाया जा सकता, जब तक सरदार वल्लभभाई पटेल, खान अब्दुल गफ्फार खां और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जीवित ही समाधिस्थ हैं। तब तक कोई समझौता भी नहीं हो सकता।" पूना की परिषद, देहली तथा राँची में कौंसिलवादियों के सम्मेलन, बिहार का भूकम्प, पटना में कार्य-समिति तथा महा-समिति की बैठकें और सत्याग्रह को स्थगित करके कांग्रेस-पार्लमैण्टरी-बोर्ड की स्थापना आदि सब जब हुआ, तब आप जेल में ही थे। स्वास्थ्य के एकदम बिगड़ जाने से आपको १९३४ के अन्त में जेल से रिहा किया गया। कौंसिलों के कार्यक्रम में आपका न कुछ विश्वास है और न आपको उस पर कुछ भरोसा ही है, पर कांग्रेस का नियन्त्रण, व्यवस्था, प्रतिष्ठा और महत्व आपके लिए सर्वोपरि हैं। गांधीजी में भी आपकी अगाध श्रद्धा और अनन्य भक्ति है। इसी लिए सत्याग्रह के समान ही आपने कौंसिल-कार्यक्रम का भी समर्थन एकनिष्ठ होकर किया और कांग्रेस पार्लमैण्टरी बोर्ड के उम्मीदवारों की सफलता के लिए आपने कोई बात उठा नहीं रखी। मालवीयजी की नैशनलिस्ट पार्टी से लोहा लेनेवालों और देहली तथा पंजाब सरीखे

साम्प्रदायिकता के अजेय दुर्गों पर भी राष्ट्रीयता की पताका फहराने वालों में आपका पहला स्थान है। देहली और रोहतक के और बादमें जालन्धर के चुनावों में कांग्रेस की विजय का अधिकांश श्रेय आपको है।

गांधीजी द्वारा शुरू किये गये हर एक आन्दोलन के आप अनन्य समर्थक हैं। खादी, राष्ट्रीय शिक्षण, अस्पृश्यता-निवारण और ग्राम-उद्योग-संघ के कार्यों को सफल बनाने में आप निरन्तर लगे रहते हैं। गुजरात के हरिजन-आन्दोलन को आपका पूरा सहयोग प्राप्त है। गांधीजी के कार्यक्रम की अपेक्षा आपको गांधीजी के स्वास्थ्य की भी कुछ कम चिन्ता नहीं रहती। उनके प्रति आपकी ममता माता से भी अधिक है और इसीलिए उन पर आपका नियन्त्रण जेल के अधिकारियों से भी अधिक कठोर है। बाहर से दर्शन के लिए आनेवाले भक्तों के लिए ही नहीं, किन्तु साथ में रहने वाले साथियों के लिए भी वह कभी-कभी क्रूरता का रूप धारण कर लेता है। बिना उसके इसमें सन्देह नहीं कि गांधी जी का जीवन अत्यन्त संकटापन्न हो जाय और इस वृद्धावस्था में ढाई हड्डी-पसलियों की देह उनको संभालनी भी कठिन हो जाय। दिसम्बर १६३५ से, जब से गांधीजी अस्वस्थ हुए हैं, आपकी कैद में नजरबन्द हैं। पुलिस की तरह आप वर्धा से उनके साथ हैं और बम्बई, अहमदाबाद, सावली और देहली आदि में सब स्थानों पर उनके साथ रहे हैं। ममता और कठोरता का कैसा अद्भुत मिश्रण है? सचमुच, आपका हृदय फूल की पंखड़ियों की तरह कोमल और वज्र की तरह कठोर है। गांधी जी ने स्वयं ही लिखा है कि "वह (सरदार पटेल) मुझे जिस स्नेह के साथ ढके रहते हैं, उससे मुझे अपनी प्यारी माता

के स्नेह की याद आ जाती है।" आपके चरित्र का ठीक-ठीक चित्रण महात्मा लूथर के निम्न लिखित शब्दों में किया जा सकता है कि "एक वीर और बहादुर सरदार अपने हज़ारों दुश्मनों को क़त्ल करने की अपेक्षा एक नागरिक की रक्षा करना अपना धर्म समझता है। इसलिए एक सच्चा नायक हलके दिल से कभी लड़ाई नहीं छेड़ता और न बिना अनिवार्य कारण के युद्ध घोषणा करता है। सच्चे सिपाही और सरदार बढ़-बढ़ कर बातें कभी नहीं करते; लेकिन जब बोलते हैं, तब काम फ़तह ही समझिए।" ऐसा प्रतीत होत है जैसे कि ये शब्द आपको ही सामने रखकर लिखे गये हों। आपका व्यक्तित्व देशवासियों के लिए आदर्श है और वह बार-बार यह घोषणा कर रहा है कि देश को आप सरीखे ही वीर तथा कर्तव्य परायण सिपाहियों और सरदारों की आवश्यकता है।

रणछोड़लाल अमृतलाल

छयालीसवां अधिवेशन

देहली, अप्रैल—१९३२

पुलिस की पूरी चौकसी और सरकार की भारी सतर्कता के बाद भी, खुला एलान करके दमन की तनिक भी परवा न करते हुए, उसकी नाक के तले दिल्ली में कांग्रेस के अधिवेशन का होना उसकी सबसे बड़ी विशेषता है। ऐसे महत्वपूर्ण अधिवेशन का सभापति होने का अहोभाग्य प्राप्त करने वाले सेठ रणछोड़लाल अमृतलाल वास्तव में बहुत भाग्यशाली हैं। आपके इस सौभाग्य पर किसको ईर्षा न होगी ? यह सौभाग्य आपको अनायास ही नहीं प्राप्त हो गया था। उसकी आपको काफी कीमत चुकानी पड़ी थी।

आपके पिता अहमदाबाद के प्रसिद्ध मिल व्यवसायी थे और छोटी अवस्था में ही आपने उनके कारबार में हाथ बटाना शुरू कर दिया था। १६२० में आपने अपनी मिलें खोलीं, जिनको चलाने में पूरी सफलता प्राप्त की।

आपने भारत और यूरोप का खूब भ्रमण किया है और जहां-तहां अपना व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित किया है। विदेशों के अनेक व्यापारिक केन्द्रों के साथ आपका सम्बन्ध है।

१९२४ में आपको गान्धीजी के सहवास में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ और तभी खादी, राजनीति और कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम की ओर आपका झुकाव हुआ। वहीं आपको सार्वजनिक क्षेत्र में खींच लाया। आप पिछले कुछ वर्षों तक चरखा संघ के ट्रस्टी थे। उसकी नीति और कार्यशैली में मतभेद होने से उससे आपने त्याग पत्र दे दिया।

गान्धीजी की डांडी की सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक महायात्रा के दिनों में आप साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम में गान्धीजी के साथ रहे थे। उनके डांडी के लिए प्रस्थान कर देने पर भी आपने कुछ महीनों तक आश्रम नहीं छोड़ा था। धरासना पर धावा बोलने का आन्दोलन जब कुछ धीमा पड़ रहा था, तब उसमें आपने जीवन संचार किया था और स्वयं धरासना पर धावा किया था। तब आपको ६ मास की कड़ी कैद और ५०० रुपये जुर्माने की सजा हुई थी।

१९३२ में आर्डिनेन्स राज में आपको दो सप्ताह के लिए नजरबंद किया गया था और अहमदाबाद के बाहर न जाने का नोटिस देकर रिहा किया गया था। अप्रैल १९३२ में देहली में कांग्रेस के निषिद्ध अधिवेशन का आयोजन होने पर आप उसकी अवज्ञा करके उसमें सम्मिलित होने के लिए देहली आये। मनोनीत सभापति महामना मालवीयजी देहली आते हुए जमुना के उस पार गिरफ़्तार कर लिये गये थे। स्टेशनों और रास्तों पर भी जहां-तहां प्रतिनिधियों को रोकने

और गिरफ़्तार करने का प्रबन्ध फौजी कानून की हुकूमत से कुछ कम नहीं किया गया था। चांदनी चौक के घण्टाघर के नीचे कांग्रेस के अधिवेशन के होने का ऐलान किया गया था। पुलिस ने टाऊन हाल के पीछे के मैदान में छावनी डाल देने पर भी उस ऐलान पर विश्वास न किया और नई देहली में कांग्रेस होकर नाक कट जाने की चिन्ता उसको कहीं अधिक सता रही थी। ठीक समय पर चारों ओर से ५०० प्रतिनिधि घण्टाघर पर आकर जमा हो गये। कांग्रेस की वार्षिक रिपोर्ट पढ़ी गई और चार प्रस्ताव पास किये गये। पुलिस के पहुँचने से पहले ही अधिवेशन का कार्य पूरा हो गया। आप ही को उस ऐतिहासिक अधिवेशन के सभापति होने का गौरव प्राप्त हुआ। अधिवेशन से पहले और बाद में कई-सौ प्रतिनिधि गिरफ्तार किये गये। आपको ६ दिन जेल में रख, अहमदाबाद न छोड़ने के नोटिस की अवज्ञा करने के अपराध पर देहली से अहमदाबाद लाया गया। ६ मास और ५ हज़ार रुपये जुरमाने की सजा हुई। दोनों बार नासिक रोड सेण्ट्रल जेल में रखा गया।

मिल-मालिक और पूँजीपति होने पर भी मजूरों के आप प्रेमी और हितचिन्तक हैं। अहमदाबाद-मिल-मालिक-संघ ने जब मजूरों की मजूरी में २५ सैकड़ा कमी करने का प्रस्ताव किया था, तब अकेले ही आपने उसका विरोध किया था और मिल-मालिक उस समय आपके विरोध के ही कारण वैसा नहीं कर सके थे।

आप अहमदाबाद और बम्बई के सुप्रसिद्ध व्यापारी और व्यवसायी हैं। आज-कल बम्बई में रहते हैं। आप जैसे धन का उपार्जन करते हैं, वैसे ही सार्वजनिक कार्यों में उसका विनियोग भी करते हैं।

नेली सेनगुप्त

[जन्म—१८६०]

सैंतालीसवाँ अधिवेशन
कलकत्ता—१९३३

श्रीमती नेली सेनगुप्त ने इङ्गलैण्ड में जन्म लेने पर भी भारत को अपनी जन्मभूमि बनाकर उसकी दीन-हीन तथा पराधीन अवस्था को दूर करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है। आपको बिना किसी सन्देह के आदर्श-महिला, आदर्श-पत्नी, आदर्श-माता और आदर्श देश-सेविका कहा जा सकता है। घर-गृहस्थी के काम-काज में लगे हुए जिन्होंने कभी आपको देखा है, उनको मालूम है कि आप एक आदर्श नारी हैं। आदर्श महिला के सब सद्गुण आप में विद्यमान हैं। पुत्रों पर आपकी ममता भी असाधारण है। पति के प्रति आपका अनुराग ही आपको जेल के भीतर तक खींच ले गया था और उसीने आपको आदर्श देशसेविका बना दिया है। देशप्रिय यतीन्द्रमोहन सेनगुप्त ने अपने प्रांत बंगाल में देशबन्धु के अभाव की पूर्ति की थी। श्रीमती सेनगुप्त कलकत्ता में देशप्रिय के अभाव की पूर्ति करने का सराहनीय यत्न कर रही हैं। देशबन्धु की योद्धा वृत्ति, अतुल साहस, निष्कलंक देशसेवा और सर्व त्याग की भावना का प्रतिबिम्ब देशप्रिय में दीख पड़ता था और देशप्रिय की लोकोत्तर विभूति की प्रतिछाया श्रीमती नेली सेनगुप्त का व्यक्तित्व है।

श्रीमती नेली सेनगुप्त का जन्म लगभग १८६० में केम्ब्रिज में हुआ था। आपके पिता का नाम था मि० ग्रे। उनके नाम पर आपका नाम मिस नेली ग्रे रखा गया था। आपके पिता की केम्ब्रिज में कुछ ज़मीन-जायदाद तथा समाज में अच्छी प्रतिष्ठा और ख्याति थी। केम्ब्रिज में ही आपकी शिक्षा हुई और आप सीनियर केम्ब्रिज की परीक्षा उत्तीर्ण हैं। आपके पिता बहुत मिलनसार थे और भारतीय विद्यार्थियों के प्रति बहुत सहानुभूति रखते थे। उनके ही कारण देशप्रिय सेनगुप्त का ग्रे परिवार के साथ परिचय होकर घनिष्टता स्थापित हो गई थी। १६०६ में जब वह केम्ब्रिज यूनिवरसिटी के डाइनिंग कालेज में अण्डर ग्रेजुएट थे तब आपका विवाह हुआ था और आप मिस नेली ग्रे से श्रीमती नेली सेनगुप्त हो गईं। बैरिस्टरी पास करके श्रीयुत सेनगुप्त जब स्वदेश लौटे तब आप भी उनके साथ भारत आ गईं और भारत को ही आपने अपना घर बना लिया।

देशप्रिय सेनगुप्त के सार्वजनिक जीवन के साथ ही आपके सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश होजाता है, किन्तु कांग्रेस कार्य में आप १६२१ से भाग लेने लगीं। उससे पहले चटगांव में रहते हुए श्रीयुत सेनगुप्त ने जब ईस्टर्न बंगाल रेलवे की हड़ताल को सफल बनाने के लिए मजूरों की ओर से अपनी सब जमीन-जायदाद की बाजी लगा दी थी, तब भी आपने अपने पति के उस सर्व-मेध यज्ञ में अर्धांगिनी का हिस्सा आर्य महिला की भांति अदा किया था। १६२१ से कांग्रेस के त्याग-तपस्या तथा कष्ट सहन के मार्ग का अवलम्बन करने पर आपने जिस वीरता, निर्भीकता, साहस तथा आत्मोत्सर्ग का परिचय दिया है,

वह अनुकरणीय है। तब देशप्रिय की 'गिरफ़्तारी के बाद चटगांव के सार्वजनिक जीवन की बागडोर आपने अपने हाथों में संभाल ली थी और विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देने तथा खादी के थान अपने कंधों पर उठा खादी की फेरी करने का आपने काम शुरू किया था। जिला मजिस्ट्रेट ने आपको उस कार्य से रोकने के लिए आप पर १४४ धारा का नोटिस जारी किया था। आपने उस समय मजिस्ट्रेट को जो उत्तर लिखा था, उससे आपके स्वाभिमान, स्वदेशाभिमान तथा स्वातन्त्र्य प्रेम का परिचय मिलता है। आपके हृदय में उद्दीप्त स्वदेश प्रेम की भावना उसके बाद कभी भी धीमी नहीं पड़ी। सुख-दुःख तंगी-तकलीफ में आप कभी भी अपने ध्येय से विचलित नहीं हुईं। कांग्रेस के आदेश को शिरोधार्य कर देशप्रिय सेनगुप्त ने बैरिस्टरी का जब परित्याग किया था, तब उनको जिस आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा था, वह उनको जानने वालों से छिपा हुआ नहीं है। देशबन्धु के स्वर्गवास के बाद बंगाल के सार्वजनिक जीवन में फंस जाने के बाद तो देशप्रिय ने सँन्यास ही ले लिया था और तब उनकी आर्थिक स्थिति वैसी ही थी जैसी कि जीवन के अन्तिम दिनों में देशबन्धु की थी। उस संकट में आपने देशसेवा के आदर्श से न अपने को और न देशप्रिय सेनगुप्त को ही विचलित होने दिया। देशसेवा' के जिस श्रेय मार्ग का उन्होंने अवलम्बन किया था, उस पर उनको सदा आगे ही आगे बढ़ते रहने के लिए आप प्रेरित करती रहीं।

१९३० के आन्दोलन के समय बंगाल में प्रान्तिक कांग्रेस कमेटी का संगठन ऐसे लोगों के हाथों में था, जिनको गान्धीजी के आन्दोलन

में आस्था नहीं थी, सत्याग्रह से वे उदासीन थे, उनकी दांडी यात्रा को वे निरर्थक समझते थे, और नमक सत्याग्रह का वे उपहास किया करते थे। तब देशप्रिय सेनगुप्त ने 'कौंसिल आफ सिविल डिस-ओबीडियेंस' (सविनय-कानून-भंग-समिति) की स्थापना करके उसका जाल सारे बंगाल में फैलाकर, सत्याग्रह आन्दोलन को संगठित किया था। उस समय उन्होंने धीरता, वीरता और कार्यक्षमता का अलौकिक परिचय दिया था। आन्दोलन शुरू होने से पहले ही आप बर्मा के वारण्ट पर गिरफ्तार कर लिये गये थे। वहां से लौटे ही थे कि कलकत्ता में फिर गिरफ़्तार कर लिये गये। छः मास की आपको सजा हुई। जेल अधिकारियों के साथ जेल में संघर्ष होने पर शहर में नाना प्रकार की अफवाहें उड़ती रहती थीं और कभी-कभी जेल के दरवाजे पर हजारों की भीड़ जमा हो जाती थी। श्रीमती सेनगुप्त के लिए वे कड़ी परीक्षा के दिन थे आपने उन दिनों में विशेष धैर्य और हिम्मत का परिचय दिया। जेल के भीतर होनेवाले संघर्ष के लिए बाहर आन्दोलन संगठित कर और जेल के दरवाजे पर सत्याग्रह करने की तैयारी करके सरकार को झुकने के लिए आपने मजबूर किया। छः मास की सजा काट कर देशप्रिय जब बाहर आये, तब उनको स्थानापन्न राष्ट्रपति के कार्यभार को संभालना और उत्तरीय भारत का दौरा करना पड़ा। तब आप भी उनके साथ थीं। २४ अक्तूबर १९३० को अमृतसर के जलियांवाला बाग़ में भाषण देने की मनाही के हुक्म की अवज्ञा करने पर वह वहां गिरफ्तार किये गये थे। मुकद्दमा वहां न चलाकर २६ अक्तूबर को उनको देहली लाया गया था और देहली में राजद्रोहात्मक भाषण देने के

अपराध में आपको छः मास की सजा दी गई थी। पति की गिरफ्तारी और सजा के बाद आप भी २६ अक्टूबर को एक गैरकानूनी सभा में भाषण देने के अपराध में गिरफ्तार कर ली गई थीं। सभा को पुलिस ने लाठियों की मार से तितर-बितर कर दिया था। सार्वजनिक-सभा पर लाठी वर्षा करने का देहली में सम्भवतः वह पहला ही अवसर था आपको तीन मास की सजा हुई। गान्धी-अर्विन-पैक्ट से पहले जब सब नेता रिहा किये गये थे, तब आपको भी देशप्रिय के साथ रिहा किया गया था। उस समय भी आपकी आर्थिक अवस्था कुछ अच्छी नहीं थी। लड़कों की पढ़ाई तक का खर्च निभाना आपके लिए कठिन हो रहा था। तब आपने उनको वीर राजपूत रमणी के शब्दों में पत्र लिखकर देश सेवा के लिए आह्वान किया था और माता-पिता के पद चिह्नों पर चलकर जेल चले जाने का आदेश दिया था।

१६३१ में स्वास्थ सुधार और सम्बन्धियों से मिलने के लिए देश-प्रिय का विदेश जाना आवश्यक हो गया। तब आप भी अपनी माता से मिलने के लिए उनके साथ विलायत गई थीं और आप दोनों ने ही इंग्लैण्ड में भारत के लिए विशेष आन्दोलन किया था। १६३२ के फरवरी मास में जब आप दोनों स्वदेश लौटे, तब यहां सत्याग्रह शुरू हो चुका था और देशप्रिय को जहाज से उतरने से पहले ही गिरफ़्तार करके नजरबन्द कर दिया गया था। नजरबन्दी में आपका स्वास्थ सदा ही गिरा रहा और अन्त में नजरबन्दी की अवस्था में ही वह बीमारी आपकी मृत्यु का भी कारण हो गई। श्रीमती सेनगुप्त के लिए वह कठोर अग्नि-परीक्षा का समय था। उस समय

भी आपने अपूर्व धैर्य का परिचय दिया। पति-वियोग, आर्थिक-संकट और लड़कों के शिक्षण की समस्या सबने मिलकर आप में कुछ विरक्ति सी पैदा कर दी थी, किन्तु मार्च १९३३ में कलकत्ता में सरकार की आज्ञा की अवज्ञा करके जब कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन का आयोजन किया गया, तब आप इस वैराग्य को तिलांजलि देकर फिर देशसेवा के मैदान में कूद पड़ीं। कलकत्ता के भीतर बाहर चारों ओर पुलिस के कठोर नियन्त्रण और निगरानी पर भी, उसकी लाठियों की तनिक भी परवा न कर चौरंगी-मैदान में उस अधिवेशन का आयोजन किया गया था और आपको ही उसके सभापतित्व का महान् गौरव प्राप्त हुआ था। चारों ओर गोरी पुलिस तथा सार्जेण्ट डंडे बरसा रहे थे और प्रतिनिधियों के बीच दृढ़ता के साथ बैठी हुई एक गौरांग महिला ही उस अधिवेशन का सभापतित्व कर रही थी। मार खाते हुए भी प्रतिनिधियों ने सब प्रस्तावों को पढ़ा। उनका अनुमोदन किया, समर्थन किया और घायल होकर गिरफ्तार भी हुए। कैसा था वह दृश्य ! कुछ दिन जेल में रखकर बिना कोई कार्यवाही किये सब को रिहा कर दिया गया। सात-आठ दिन बाद आप भी छोड़ दी गईं।

आपका शील-स्वभाव बहुत सरल और मिलनसार है। आपने भारतीय रहन-सहन और वेश-भूषा को पूरी तरह अपना लिया है। देशसेवा के निमित्त से ही आपने भारत का खूब भ्रमण किया है। देशसेवा के व्रत को आप अब तक भी पूरी तरह से निभा रही हैं। कलकत्ता के सार्वजनिक जीवन में आपका विशेष स्थान है। कलकत्ता कारपोरेशन की आप एलडरमैन हैं और उसके सब कार्यों में आप

विशेष दिलचस्पी से भाग लेती हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता की आप अन्यतम समर्थक हैं। उसमें आपकी दृढ़ आस्था और पूरी श्रद्धा है। दोनों में पैदा हुई गैर समझ को दूरकर दोनों में एकता स्थापित करने का यत्न आप सदा ही करती रहती हैं। कलकत्ता कारपोरेशन में पैदा हुई तुई को दूर करने का आपने विशेष यत्न किया है। देशप्रिय द्वारा स्थापित अंग्रेज़ी के राष्ट्रीय पत्र 'एडवांस' की आप डाइरेक्टर हैं। देश-प्रिय की स्मृति में चटगांव में स्थापित 'देशप्रिय जतीन्द्रमोहन काटन मिल्स का उद्‌घाटन आपने किया था। उसके बोर्ड आफ डायरेक्टर्स की चेयरमैन भी आप ही हैं। अनेकों जिला-बोर्डों और म्यूनिसिपल कमेटियों ने आपको मानपत्र देकर सम्मानित किया है।

आपके तीन सन्तान हुईं थीं। पहली सन्तान का पांच वर्ष की आयु में देहान्त हो गया था। देशप्रिय के देहावसान के बाद शिशिर और अनिल दोनों पढ़ाई छोड़कर काम में लग गये हैं। पहले टाटा के यहां पब्लिसिटी अफसर हैं, दूसरे कलकत्ता पोर्ट कमिश्नर के दफ़्तर में एसिस्टेण्ट सेक्रेटरी हैं।

राजेन्द्र प्रसाद

[जन्म—३ दिसम्बर १८८४]

अड़तालीसवां अधिवेशन, बम्बई—१९३४

महाराजा जनक, भगवान् गौतम और सम्राट अशोक का बिहार अपनी पुरानी सादगी, सरलता और सभ्यता को अब तक भी क़ायम किये हुए है। इस कथन के समर्थन के लिए बिहार-रत्न स्वनामधन्य बाबू राजेन्द्रप्रसाद जी की ओर संकेत मात्र कर देना ही बस होना चाहिए। विद्यार्थी-जीवन आपका सर्वोत्कृष्ट रहा है। वकालत में आपका स्थान देश के कुछ उन अग्रगण्य वकीलों में था, जिन्होंने उस पेशे में धन और प्रतिष्ठा दोनों का यथेष्ठ सम्पादन किया था। दुःखियों की सेवा, पीड़ितों की सहायता और पद-दलितों के उद्धार का ऐसा कोई अवसर खाली नहीं गया, जब आपने उनके लिए खून-पसीना एक न किया हो। देश-सेवा की धूनी रमाकर उसमें सर्वस्व होम देने का अवसर उपस्थित होने पर भी आप सबसे आगे की पंक्ति में स्वेच्छा से आकर खड़े हो गये। कहा जाता है कि यदि आप सरकार

के साथ असहयोग करके सत्याग्रह के मार्ग के पथिक न बने होते, तो आप कभी के हाईकोर्ट के जज बन गये होते। इस कथन में कुछ सचाई हो या न हो, किन्तु यह तो स्पष्ट है कि देशवासियों ने आपको सर्वोच्च सम्मान प्रदान किया है, आपकी अपील पर लाखों रुपया आपकी झोली में आँख मूंदकर डाल दिया है और जहां कहीं आप गये हैं आपका अलौकिक तथा अभूतपूर्व स्वागत हुआ है। देशवासियों का इतना सम्मान, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम और विश्वास गांधीजी के बाद, राजनैतिक आन्दोलन की प्रतिक्रिया के निराशापूर्ण दिनों में भी सिवा आपके और कौन सम्पादन कर सका है? फिर भी आपकी सादगी और सरलता में कुछ वृद्धि ही हुई है। अभिमान आपको छू तक नहीं गया है। साधारण से साधारण कार्यकर्त्ता भी बिना झिझक और संकोच के आपके पास जब चाहे तब जा सकता है। गांधीजी के पद-चिह्नों पर चलते हुए अपनेको सर्वतोभावेन देश, जाति, समाज तथा राष्ट्र की सेवा पर न्यौछावर कर देनेवालों में आपका स्थान बहुत ऊँचा है। आपकी देशभक्ति निष्कलंक, देशसेवा अत्यन्त उत्कृष्ट और सार्वजनिक जीवन बिलकुल पवित्र है। उसमें स्वार्थ का लवलेश भी नहीं है।

आपका जन्म बिहार के जिला सारन के जीरादेई ग्राम में बाबू महादेवसहाय के घर में ३ दिसम्बर १८८४ को हुआ था। आपकी प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू और फ़ारसी की घर पर मौलवी रख कर हुई थी। ६ वर्ष की आयु में आपको अपने बड़े भाई स्वर्गीय श्री महेन्द्र प्रसादजी के साथ छपरा-ज़िला-स्कूल में भरती किया गया था। १९०२ में वहीं से कलकत्ता-यूनिवरसिटी में सर्व प्रथम रहकर आपने एण्ट्रेंस की परीक्षा पास

की। तब बिहार स्वतंत्र प्रान्त न बना था। बिहार, बंगाल, आसाम और बर्मा की एक ही यूनिवरसिटी कलकत्ता में थी। उच्च शिक्षा आपकी कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी कालेज में हुई। वहीं से आपने १९०६ में बी० ए० और १९०७ में एम० ए० भी यूनिवरसिटी में सर्वप्रथम रह कर पास किया था। इसलिए आपको बराबर बहुत-सी छात्रवृत्तियां मिलती रही थीं। १९१५ में आपने एम० एल० की परीक्षा दी और उसमें भी आप यूनिवरसिटी में सर्वप्रथम रहे। पढ़ाई की तरह खेल-कूद में भी आप बहुत दिलचस्पी रखते थे। फुटबाल के तो आप बहुत अच्छे खिलाड़ी थे। छपरा-जिला-स्कूल की फुटबाल टीम के आप कप्तान थे।

एम० ए० पास कर के आपने कुछ मास तक मुज़फ्फ़रपुर के भूमिहार कालेज और कलकत्ता के सिटी कालेज में अध्यापक का कार्य किया, परन्तु वकालत करने की इच्छा होने से आपने १९०९ से कलकत्ता हाईकोर्ट में वहां के प्रसिद्ध वकील सर सैयद शम्सुलहुदा के मातहत आर्टिकल्ड क्लर्क का काम करना शुरू कर दिया था। बाद में स्वतंत्र प्रैक्टिस आरम्भ करने पर उसमें आपको अच्छी सफलता प्राप्त हुई। कुछ समय तक आपने कलकत्ता के लॉ कालेज में अध्यापक का भी काम किया। अपने समय के कलकत्ता हाईकोर्ट के जूनियर वकीलों में आपका ऊँचा स्थान था। १९१६ तक आपने कलकत्ता हाईकोर्ट में प्रैक्टिस की और बाद को पटना हाईकोर्ट क़ायम हो जाने पर आप पटना चले आये और १९२१ में वकालत छोड़ देने तक वहां ही प्रैक्टिस करते रहे। आर्थिक दृष्टि से वह आपके उत्कर्ष का आरम्भिक काल था और यथेच्छ आमदनी करने का द्वार आपके लिए खुल गया था। तब

भी ३०-४० हज़ार तक आपकी वार्षिक आमदनी थी और एक ही मुकद्दमा ३०-३२ हजार की फीस का आपके हाथों में था। सामने लक्ष्मी का हार होने पर भी आपने वकालत से मुँह मोड़कर स्वेच्छा से गरीबी के उस मार्ग का अवलम्बन किया था, जिसकी भावना आपके हृदय में १६१० में ही जाग चुकी थी। अपनी आमदनी का अधिकांश आप ग़रीब विद्यार्थियों पर ही खर्च कर देते थे।

लोक-सेवा और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेने का आपको विद्यार्थी अवस्था से ही शौक़ था। कलकत्ता के प्रेसिडेन्सी कालेज में पढ़ते हुए आप वहाँ की अनेक सभा सोसायटियों में भाग लेते रहते थे। कलकत्ता में बिहारी क्लब के नाम से बिहारी लोगों की एक संस्था थी। उसके आप कई वर्ष मन्त्री रहे। विद्यासागर कालेज के प्रोफेसर सर सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय ने नवयुवकों में स्वदेशी, स्वाध्याय और आध्यात्मिक विचारों के प्रचार के लिए 'डॉन सोसायटी' के नाम से एक संस्था स्थापित की थी। उसकी तरफ़ से 'डॉन' (प्रातःकाल) नाम का एक पत्र भी प्रकाशित होता था। उस सोसायटी के आप एक उत्साही सदस्य होने के अतिरिक्त उक्त पत्र में लेखादि भी लिखा करते थे। १६०६ में आपने बिहारी छात्र सम्मेलन का संगठन कर के उसका प्रथम अधिवेशन पटना में करवाया। १६२२ तक तक उस सम्मेलन के नियमित अधिवेशन होते रहे और उसने बिहार के विद्यार्थियों को जाग्रत तथा संगठित करने का बहुत बड़ा काम किया। १६२२ के बाद उस सम्मेलन का संगठन शिथिल पड़ गया। आपकी लोक सेवा की इस रुचि और प्रवृत्ति को देखकर १६१० में श्री गोपालकृष्ण गोखले ने आपसे सर्वेण्ट्स

आफ़ इण्डिया सोसायटी का सदस्य बनने के लिए आग्रह किया था। आप तो उसके लिए तैयार हो गये थे, परन्तु आपके बड़े भाई महेन्द्र-प्रसादजी ने और आपकी माता ने ऐसा न करने दिया।

आपने अपने बड़े भाई को उस सम्बन्ध में जो पत्र लिखा था, उस से आपके चरित्र पर काफी प्रकाश पड़ता है और यह पता लगता है कि आपके हृदय में उस समय १६१० में भी देशभक्ति की उत्कट भावना तीव्र रूप में किस प्रकार जाग रही थी। सरलता, सादगी, निस्पृहता और निस्वार्थ सेवा का भाव भी आपके हृदय में अपना स्थान बना चुके थे। आपने लिखा था "मैं आपसे आमने-सामने बात नहीं कर सका। मैं अपने में एक ऊँची और पवित्र भावना अनुभव कर रहा हूँ। आपको कठिनाई में डालना मेरे लिए शोभास्पद नहीं है। फिर भी मैं आपसे प्रार्थना करना चाहता हूँ कि आप ३० करोड़ के लिए कुछ त्याग करें। गोखले की सोसाइटी का सदस्य होना मेरे लिए कोई त्याग नहीं है। अच्छा हो या बुरा, परन्तु मुझे ऐसा अभ्यास है कि मैं अपने को कैसी भी परिस्थिति के अनुकूल बना सकता हूँ मेरा रहन-सहन भी इतना सीधा-सादा और सरल है कि मुझको कोई विशेष सुख-सुभीता और आराम नहीं चाहिए। मुझे सोसाइटी से जो कुछ मिलेगा, काफी होगा। पर, मुझे यह तो मानना ही चाहिए कि आपके लिए यह कुछ कम त्याग न होगा। आपने मुझसे बहुत बड़ी-बड़ी आशायें बांधी हुई हैं, वे सब एक क्षण में नष्ट हो जायेंगी। इस विनाशी संसार में पूँजी, पद और प्रतिष्ठा सभी कुछ नष्ट हो जाता है। जितनी पूंजी जमा होती है, उससे अधिक की इच्छा सदा बनी रहती है। प्रसन्नता बाहर से नहीं, भीतर से

पैदा होती है। एक ग़रीब आदमी अपनी छोटी-सी पूंजी में लखपति की अपेक्षा कहीं अधिक सन्तुष्ट रहता है। हमें ग़रीबी के प्रति घृणा नहीं करनी चाहिए। संसार में जितने भी महापुरुष हुए हैं, वे सब अत्यन्त ग़रीब रहे हैं। शुरू-शुरू में उनको बहुत कष्ट भोगने पड़े हैं और उनको घृणा से देखा गया है किन्तु अन्त में अत्याचार और घृणा करनेवाले धूल में मिल गये, उनको जानने-पहचाननेवाला भी कोई नहीं रहा। अत्याचार तथा घृणा करनेवालों को लाखों याद करते हैं और वे उनके हृदयों में बस जाते हैं। मेरी यदि कुछ भी महत्वाकांशा है तो वह यही है कि मैं भारत माता की भी कुछ तो सेवा कर सकूं। गोखले की-सी प्रतिष्ठा, गौरव और प्रभाव किस राजा को प्राप्त हुआ है? क्या गोखले भी ग़रीब नहीं हैं।" २५--२६ वर्ष की आयु में युवावस्था में जो शब्द आपने लिखे थे, आज आपके जीवन में उनकी सचाई पूरे रूप में प्रकट हो रही है। यदि आप उस समय गोखले की सोसाइटी के समासद् हो गये होते, तो कौन कह सकता है कि आप आज कहाँ होते और क्या होते? लेकिन यह स्पष्ट है कि उस समय सोसाइटी का सदस्य न होना आपके और देश के लिए भी कुछ अधिक ही लाभप्रद और उपयोगी सिद्ध हुआ है। सादगी, सरलता, देशभक्ति और देशसेवा की भावना का इस समय जैसा पूर्ण विकास हुआ है, वैसा तब होता कि नहीं, इस में सन्देह है और इसमें भी सन्देह है कि तब देश के लिए स्वेच्छा से ग़रीबी अंगीकार का संकल्प भी इस रूप में पूरा होता कि नहीं?

छात्रों को संगठित करने के समान शिक्षा के प्रेम में भी आपने महत्वपूर्ण कार्य किया है। १६१५ में सरकार ने पटना यूनिवरसिटी

कायम करने के लिए जो क़ानून बनाया था, वह अत्यन्त दोषपूर्ण था। यदि वह जैसा का तैसा पास हो जाता तो बिहारी युवकों के लिए शिक्षा की सुविधायें पहले से भी कम रह जातीं। उस क़ानून में उच्च शिक्षा देनेवाले कालेजों की संख्या नियत कर दी गई थी और यूनिवरसिटी पर सारा नियन्त्रण भी प्रायः सरकार के हाथ में रखा गया था। आपने आन्दोलन करके उस क़ानून में अनेक सुधार करवाये और यूनिवरसिटी की सिनेट तथा सिण्डीकेट में जनता के प्रतिनिधियों को स्थान दिलवाया। आप स्वयं १९२० तक यूनिवरसिटी की सिनेट, सिण्डीकेट और कई फेकल्टियों के सदस्य थे। मैट्रिक तक की शिक्षा हिन्दी में होने का प्रस्ताव भी आपने सिनेट से पास कराया था, परन्तु उन्हीं दिनों असहयोग आन्दोलन फिर शुरू हो जाने से आपने यूनिवरसिटी से अपना सम्बन्ध त्याग दिया।

हिन्दी की सेवा आपने यूनिवरसिटी में उसे उच्च स्थान दिलाने का यत्न करके ही नहीं की, किन्तु अन्य भी अनेक उपायों से की है। १९१२ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन के और १९२० में पटना अधिवेशन के स्वागताध्यक्ष आप ही थे। पटना से प्रकाशित होने वाले साप्ताहिक पत्र 'देश' के आप प्रवर्तक थे और कई वर्षों तक उसके सम्पादक भी रहे थे। १९२३ में कोकनाडा में कांग्रेस के साथ हुए दक्षिण भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप सभापति हुए थे। हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में आपकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि अंग्रेजी का उच्चतम शिक्षण प्राप्त करने पर भी आप अन्य अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीयों की तरह बोल-चाल में अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग बिलकुल नहीं करते। एक बार आपके कुछ मित्रों ने एक

ऐसा क्लब बनाया था कि उसमें बातचीत करते हुए जो व्यक्ति जितने अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग करता था उसे उतने पैसे जुरमाना देना पड़ता था। उस क्लब में सबसे कम जुरमाना आपको ही होता था।

फ़रवरी १६२१ में सरकारी शिक्षणालयों का बहिष्कार होने पर आपने अनेक मित्रों के साथ मिलकर राष्ट्रीय विद्यालयों और बिहार विद्यापीठ की स्थापना की थी। बिहारी-छात्र-सम्मेलन द्वारा सरकारी स्कूल कालेज छोड़ने का संगठित आन्दोलन किया गया था। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही महीनों में विद्यापीठ के मातहत सैकड़ों स्कूल प्रान्त में खुल गये थे। एक समय था जब कि लगभग ६५० स्कूलों का विद्यापीठ से सम्बन्ध था और ६०-७० हजार विद्यार्थी उनमें शिक्षा पाते थे। असहयोग आन्दोलन की गति मन्द हो जाने पर यद्यपि उनमें से अधिकतर विद्यालय बन्द हो गये, तथापि बादको बिहार में खादी आदि का जो संगठित रचनात्मक कार्य हुआ और आज भी कांग्रेस का जो व्यापक तथा व्यवस्थित संगठन वहां दिखाई देता है, उसका बहुत कुछ श्रेय उन्हीं विद्यालयों में तैयार हुए कार्यकर्त्ताओं को है। १६२३ से १६३० तक आप उन सब कार्य कर्त्ताओं की सहायता से एकान्त भाव से अपने प्रान्त में कांग्रेस को दृढ़ बनाने, उसके रचनात्मक कार्य को पूरा करने और चरखा-संघ की बिहार शाखा के संगठन को मजबूत करने में लगे रहे। उन दिनों के आपके कार्य का ही यह परिणाम है कि बिहार में कांग्रेस और चरखा संघ का कार्य बहुत उन्नति पर है।

कांग्रेस के राजनैतिक संगठन को अपने प्रान्त में सुदृढ़ बनाने के अलावा भी आप अपने प्रान्त के दुःखी और संकटापन्न लोगों की सेवा

करने में सदा ही लगे रहे हैं। बिहार के प्रलयकारी भूकम्प के बाद आपके जिस सेवा-भाव का परिचय देशवासियों को १९३४ में मिला, उसका परिचय अपने प्रान्तवासियों को आप बहुत पहले दे चुके थे। बिहार अत्यन्त दुःखी, गरीब और संकटापन्न प्रान्त है। प्राकृतिक कोपों का वह-प्रायः शिकार होता रहता है। १९१३ में दामोदर और पुनपुन नदियों की बाढ़ों ने बिहार में भयानक त्रास फैला दिया था, १९२३ में गङ्गा की बाढ़ ने भीषण संकट पैदा कर दिया था, १९३१ में दुर्भिक्ष ने चम्पारन को उजाड़ दिया था और १९३४ में भूकम्प ने उत्तरीय बिहार में और बाद में गङ्गा की बाढ़ ने शेष प्रान्त में प्रलय मचा दिया था। इन और सब ऐसे अवसरों पर अपने गिरे हुए स्वास्थ्य की कुछ भी परवा न कर आपने अपना खून-पसीना एक करके जनता की सेवा करने में कोई बात उठा नहीं रखी थी। बिहार के प्रलयकारी भूकम्प के समय १५ जनवरी १९३४ को आप जेल में बीमार थे। आपकी सेवा की भावना और सहायता के कार्य की छाप सरकार पर भी कई बार लग चुकी थी। इसी से १७ जनवरी को आप तुरन्त रिहा कर दिये गये। आपकी एक आवाज पर, दुःखी बिहार की सेवा के लिए सारा देश उठ खड़ा हुआ और देशवासियों ने २९ लाख रुपये की भारी रकम अलावा बहुत सा सामान आपके हाथों में सौंप दिया। आपके प्रति जनता की अगाध श्रद्धा, दृढ़ विश्वास और एकनिष्ठ सम्मान का परिचय देने के लिए यही एक घटना बस है। बिहार-केन्द्रीय-सहायक-समिति का संगठन और कार्य आपकी महान् कार्य-शक्ति का परिचायक है। आपके राष्ट्रपतित्व के कार्य काल में ३१ मई १९३५ को क्वेटा में फिर वैसे ही प्रलय का

भयानक दृश्य उपस्थित हुआ। क्वेटा को सैनिक-केन्द्र बताकर सरकार ने वहां किसीको भी सेवा और सहायता के लिए जाने नहीं दिया। आपकी और गांधीजी की भी सेवा करने की प्रार्थना ठुकरा दी गई। वहां आहत हुए और बचे हुए लोगों को पंजाब, सिन्ध तथा अन्य प्रांतों में अपने-अपने घरों को भेज दिया गया। उनकी सहायता के लिए आपने 'क्वेटा-भूकम्प-कष्ट-निवारिणी-समिति' का संगठन किया, पंजाब तथा सिन्ध का दौरा किया और स्थान-स्थान पर उक्त समिति के केन्द्र स्थापित करके सेवा तथा सहायता का कार्य संगठित किया। उस समय कांग्रेस के प्रति सरकार का रुख स्पष्ट हो गया और यह पता लग गया कि उसको वह अपना शक्तिशाली शत्रु या प्रतिस्पर्धी समझ जनता की सेवा के सब अवसरों से वंचित रखना चाहती है।

गांधीजी ने १६१७ में चम्पारन में निलहे गोरों के अत्याचारों से किसानों को छुटकारा दिलाने का जो महान् कार्य किया था, उसको सफल बनाने में आपने गांधीजी का पूरा हाथ बटाया था। आपका गांधीजी के संसर्ग में आने का वह पहला ही अवसर था और तब यह किसे पता था कि यह संसर्ग आपका ऐसा कायापलट कर देगा कि आप अपने सारे प्रान्त को ही गांधीजी का प्रान्त बना देंगे।

बिहार के प्रलयकारी भूकम्प के बाद जब आप अपने दुःखी प्रान्त की सेवा में संलग्न थे, तभी निठुर भगवान् को आपकी परीक्षा लेने की सूझी। घर की सब व्यवस्था और काम-काज से आप बहुत कुछ निश्चिन्त थे। वह सब भार आपके बड़े भाई महेन्द्र बाबू ने संभाला हुआ था। उन्हीं दिनों में वह एकाएक बीमार पड़े और उनका देहाव-

सान भी हो गया। किसी और पर वैसे संकटापन्न समय में यह वज्रपात हुआ होता, तो उसका हृदय सहसा बैठ गया होता। पर, आपने पूरे धैर्य का परिचय दिया और उस भयानक संकट में भी अपने प्रान्त का संकट टालने में लगे रहे।

कांग्रेस में आप सबसे पहले १९०६ में शामिल हुए थे। उस वर्ष कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में हुआ था। उसके बाद १९१६ में लखनऊ में और १९१९ में अमृतसर की कांग्रेसों में शामिल हुए। तब से आपका कांग्रेस के साथ स्थायी सम्बन्ध हो गया है। १९२२ में गया में हुई कांग्रेस की स्वागत-समिति के आप प्रधान मन्त्री थे। १९३० और १९३२-३३ के सत्याग्रह आन्दोलनों में आपको तीन बार जेल-वास के अतिरिक्त अनेक बार पुलिस की बर्बरता-पूर्ण लाठियों की भी चोटें खानी पड़ीं। आप सदा ही वीर सिपाही की तरह मैदान में डटे रहे। १९३२ में कटक में होनेवाली कांग्रेस का आपका सभापति होना निश्चित था, किन्तु उस वर्ष सत्याग्रह छिड़ जाने के कारण कांग्रेस का अधिवेशन ही न हो सका। अतः १९३४ के अक्तूबर मास में जब बम्बई में कांग्रेस हुई तब राष्ट्रीय सम्मान का वह उच्च पद आप को ही सौंपा गया। बम्बई में आपका जो स्वागत और सम्मान हुआ था, वह अभूतपूर्व था। आलोचकों की दृष्टि में कांग्रेस मर चुकी और उसकी प्रतिष्ठा समाप्त हो चुकी थी, किन्तु बम्बई में आपकी प्रतिष्ठा के लिये हुए समारोह से आलोचकों का मुँह बन्द हो गया।

बम्बई कांग्रेस का अधिवेशन बहुत तंग समय में, विपरीत परिस्थितियों में और राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं में छाये हुए गहरे मतभेद के वातावरण में

हुआ था। गान्धीजी राजनीति से संन्यास लेने की घोषणा कर चुके थे, मालवीयजी साम्प्रदायिक निर्णय को लेकर अपना अखाड़ा अलग बना चुके थे और युवकों ने साम्यवादी दल की पताका अलग ही फहरा दी थी। सत्याग्रह आन्दोलन के स्थगित किये जाने से देश के सार्वजनिक जीवन में प्रतिक्रिया शुरू हो चुकी थी। फिर भी अधिवेशन के सफलता के साथ सम्पन्न होने का अधिकांश श्रेय आपके चातुर्य, कार्यशक्ति, दक्षता और व्यवहार-कुशलता को ही था। विषय-समिति में आपका विनोदपूर्ण नियन्त्रण देख लोग दंग रह गये थे। आपका भाषण बहुत सुन्दर और अत्यन्त विवेचनात्मक था। उसकी पंक्ति-पंक्ति में कांग्रेस द्वारा स्वीकृत ध्येय तथा कार्य शैली में दृढ़ आस्था और देश के उज्ज्वल भविष्य में दृढ़ विश्वास प्रकट होता था। सुधार योजना के सफेद कागज की विद्वत्तापूर्ण आलोचना करके आपने उसकी बुरी तरह धज्जियां उड़ाई थीं।

बिहार-केन्द्रिय-सहायक-समिति के कार्य का भारी बोझ अभी हलका न हुआ था कि कांग्रेस के गुरुतर कार्य की जिम्मेवारी का सब भार भी आपपर आ पड़ा। गान्धीजी के राजनीति से अलग हो जाने से वह भार अकेले आपको ही निभाना पड़ा। सबसे पहले १९१६ में एनी-बेसेन्ट ने इस बात पर प्रकाश डाला था कि सभापति को केवल अधिवेशन के समारोह का सभापति न होकर वर्ष भर कार्य करने की जिम्मेवारी को निभाना चाहिए। उसके बाद से विशेष कर असहयोग आन्दोलन के समय से, इस जिम्मेवारी को निभाना एक परिपाटी ही हो गई है। सदा ही स्वास्थ के गिरते-पड़ते रहने पर भी आपने उस परिपाटी

को निभाने में पिछले सब राष्ट्रपतियों को मात कर दिया है और उसका स्टेण्डर्ड इतना ऊँचा कर दिया है कि आपके उत्तराधिकारियों के लिए उसको निभाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। महाराष्ट्र, कर्नाटक, बरार, पंजाब, मध्यप्रान्त, तामिलनाड, आन्ध्र, केरल, बिहार, सिन्ध आदि का दौरा करके आपने कांग्रेस की प्रतिष्ठा को बढ़ाया है। देश की राष्ट्रीय शक्तियों का संचय करके आपने राजनैतिक चेतना को, प्रतिक्रिया शुरू हो जाने पर भी, मरने से बचाया है। गत आन्दोलन में खाली हुए कांग्रेस के कोष को समृद्ध किया है। महासमिति के कार्यालय को 'स्वराज-भवन' में फिर से स्थापित कर उसको व्यवस्थित किया है। गांधी-सेवा-संघ, चरखा-संघ और कांग्रेस-पार्लमेण्टरी-बोर्ड आदि की जिम्मेवारी को भी आपने पूरी तरह निभाया है। कांग्रेस-कर्मियों में स्थान-स्थान पर पैदा हुए मतभेद को, विशेष कर बंगाल की जटिल समस्या को, सुलझाने का भी आपने निरन्तर यत्न किया है। कांग्रेस के नये विधान की व्यवस्था सम्बन्धी गुत्थियों को सुलझाकर उसको कार्य में परिणत करने के लिए भी आपने कुछ कम श्रम नहीं किया है। बंगाल के नजरबन्दों, देशी राज्यों की प्रजा और नये शासन विधान में पद स्वीकार करने या न करने के विवादात्मक प्रश्नों से भी आपका कार्य काल बहुत जटिल बन गया। कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती मनाने की सूझ आपके ही दिमाग़ में पैदा हुई और उस समारोह को सारे देश में सफलता के साथ मनाये जाने का श्रेय भी आपको ही है।

सब असफलताओं, पराजयों, कमियों और कमजोरियों के बाद भी कांग्रेस अपने आदर्श की ओर दृढ़ता के साथ अग्रसर हो रही है और

अपने ध्येय की पूर्ति में अधिक से अधिक सफलता प्राप्त करती जा रही है। सरकार भी यह स्वीकार करती है कि देश की स्वाधीनता के लिए कार्य करनेवाली सबसे अधिक शक्तिसम्पन्न संस्था कांग्रेस है और भयानक दमन तथा कठोरता के बावजूद भी उसके मुकाबले में उसकी सत्ता दिन-पर-दिन दृढ़ होती जा रही है। यह मानना होगा कि कांग्रेस को सरकार की प्रतिस्पर्धा में दृढ़ बनाने और १६३१-३२ के आन्दोलन में विफल हो जाने के बाद भी कांग्रेस कर्मियों को अपने आदर्श तथा ध्येय में दृढ़ करने के लिए जितना और जैसा कार्य लग कर आपने किया है, उतना और वैसा आपसे पहले कोई राष्ट्रपति नहीं कर सका है। अपने बाद के राष्ट्रपतियों के लिए भी आपने इस सम्बन्ध में एक आदर्श स्थापित कर दिया है। इस दृष्टि से आपको बिना किसी सन्देह के 'आदर्श राष्ट्रपति' कहा जा सकता है और यह भी कहा जा सकता है कि देश को आप सरीखी लगन, धुन और कार्य-शक्ति रखनेवाले आदर्श राष्ट्रपतियों की ही आवश्यकता है।

जवाहरलाल नेहरू

[जन्म—१४ नवम्बर १८८६]

चवालीसवां अधिवेशन, लाहौर—१६२९
उनचासवां अधिवेशन, लखनऊ—१९३६

"जब तक नेहरू-वंश के किसी भी बच्चे में खून बाक़ी है, तब तक भारत पराजय स्वीकार नहीं कर सकता"—अपने पूज्य पिता श्री मोतीलालजी नेहरू के इन शब्दों की सच्चाई सिद्ध करने के लिए श्री जवाहरलालजी नेहरू भारत की स्वतन्त्रता के लिए अपना सिर हथेली पर लिये फिरते हैं। वस्तुतः नेहरू जी उस भव्य भावना की दिव्य मूर्ति हैं, जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध सारे ही संसार में और पराधीनता के विरुद्ध इस देश में प्रकट होकर पूरे वेग के साथ चारों ओर फैल रही है। अपने देश की पूर्ण स्वाधीनता की आकांक्षा की नेहरू जी जीवित प्रतिमा हैं। १६२२ में गिरफ्तार किये जाने के बाद १७ मई को अदालत में आपने बिलकुल ठीक ही कहा था कि "मुझे अपने सौभाग्य पर स्वयं आश्चर्य होता है। स्वतन्त्रता के युद्ध में भारत की सेवा करना बड़े सौभाग्य की बात है। गांधीजी जैसे नेता के नेतृत्व में वह सेवा करना और भी अधिक सौभाग्य की बात है। परन्तु, अपने प्यारे देश के लिए कष्ट सहन करना कितना बड़ा सौभाग्य है ? किसी भी भारतीय के लिए

इससे बढ़कर और सौभाग्य नहीं हो सकता कि उसके प्राण अपने गौरव-पूर्ण लक्ष्य के सिद्ध करने में चले जायँ।" गांधीजी ने १६२६ में आप के लाहौर-कांग्रेस का सभापति मनोनीत होने पर आपके सम्बन्ध में कितने सुन्दर शब्द लिखे थे कि "बहादुरी में कोई उनसे बढ़ नहीं सकता और देशप्रेम में उनके आगे कौन जा सकता है? कुछ लोग उनको जल्दबाज और अधीर कहते हैं, किन्तु यह तो इस समय गुण हैं। जहां उनमें वीर योद्धा की तेजी और अधीरता है, वहां उनमें राज-नीतिज्ञ का विवेक भी है। स्फटिक मणि की भांति वह पवित्र हैं। उनकी सच्चाई सन्देह से रहित है। वह-अहिंसक और अभिनन्दनीय योद्धा हैं। राष्ट्र उनके हाथों में सुरक्षित है।" सात वर्ष बाद फिर दोबारा प्रायः सर्वसम्मति से राष्ट्रपति के आसन पर आपको बिठा कर देशवासियों ने आपके प्रति अपने विश्वास, श्रद्धा तथा आदर को अभिव्यक्त करते हुए यह बता दिया है कि वे भी अपने राष्ट्र को आपके हाथों में पूरी तरह सुरक्षित समझते हैं और राष्ट्रीय प्रतिक्रिया के द्विविधापूर्ण इस अवसर में वे आपसे ही अगले मार्ग की ओर निश्चित संकेत करने की आशा रखते हैं। कांग्रेस की स्थापना के बाद जन्म लेकर राष्ट्रपति का सम्मान इतनी कम अवधि में दो बार प्राप्त करने का सौभाग्य सिवा आपके और किसको प्राप्त हुआ है?

आपका जन्म १४ नवम्बर १८८६ को इलाहाबाद के मीरगंज मुहल्ले में हुआ था। मोतीलालजी ने तब तक आनन्द-भवनवाला स्थान नहीं लिया था और वे मीरगंज मुहल्ले में ही रहते थे। आपसे पहले वे दो पुत्र खो चुके थे। उनकी नज़रों में इसीसे सन्तान का

मूल्य बहुत बढ़ चुका था। इसीलिए आपके लालन-पालन का बढ़िया से बढ़िया प्रबन्ध किया गया। राजघराने की-सी सब सुविधायें आपके लिए जुटाई गईं। अंग्रेज़ बालकों के ढंग पर गोरी दाइयों ने आपका लालन-पालन किया और शुरू-शुरू में अंग्रेज़ अध्यापिकायें ही आपको पढ़ाने के लिए नियुक्त की गईं। बंगले के बाहर आप बहुत कम जा पाते थे। पढ़ना-लिखना, खेलना-कूदना सब कुछ घर पर ही होता था। फुटबाल खेलने, घोड़े पर चढ़ने और घर के छोटे से तालाब में तैरने का आपको बहुत शौक था। टैनिस के भी आप प्रेमी थे। भारत के किसी भी स्कूल में आप एक दिन के लिए भी पढ़ने नहीं गये थे। घर पर ही आपकी प्रारम्भिक शिक्षा का सब प्रबन्ध किया गया था। रहन-सहन का सब रंग-ढंग विलायती होने पर भी पांच वर्ष की आयु में आपका विद्यारम्भ-संस्कार पुराने ढंग पर हुआ था।

वे सब सद्गुण, जो राष्ट्रपति के रूप में आज आपमें दीख पड़ते हैं, बचपन में ही धुंधलेपन में आपमें विद्यमान थे। आप छोटी अवस्था में ही बहुत गम्भीर और शान्त प्रकृति के थे। मिजाज आपका सीधा-सा था। चेहरे पर भोलापन था। बड़ी गम्भीर जिज्ञासा से आप प्रत्येक बात को देखा करते थे। जो ठीक जँच जाता था, उसको करने में चूकते नहीं थे। प्रतिभा आपकी प्रखर थी और बगावत करने की प्रकृति भी आपमें बचपन में ही पैदा हो गई थी। बचपन के गुणों का पूर्ण विकास आपके इस समय के जीवन में पाया जाता है।

भाग्य से ही अच्छा गुरू मिलता है। ग्यारह वर्ष की आयु में आपको सौभाग्य से ऐसा गुरू मिल गया, जिसने आपके जीवन का सब

क्रम ही बदल दिया। कहा जाता है कि आज के जवाहरलालजी उसी के डाले हुए संस्कारों का शुभ परिणाम हैं। आंखों को चुंधिया देनेवाले पश्चिमीय भोग-विलास वाले 'आनन्द-भवन' के उस वातावरण में हृदय के पूर्ण आस्तिक और जाति के अंग्रेज़ मि० एफ़० टी० ब्रुक्स नाम के गुरू ने जाति के हिन्दुस्तानी और हृदय के अंग्रेज मोतीलालजी के लाडले बेटे को अपने ढंग से पढ़ाना शुरू किया। बालक ने एक दिन मांस खाने से इन्कार किया और दूसरे दिन सिनेमा थियेटर जाना छोड़ दिया। मोतीलालजी को वह सहन न हुआ और गुरूजी को 'आनन्द-भवन' छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा। कोमल हृदय पर फोटो के शीशे पर बने हुए चित्र की तरह उन संस्कारों ने अपना स्थान बना लिया। इसी बीच गवर्मेंट हाई स्कूल इलाहाबाद के हेड-मास्टर मि० गार्डन भी आपको पढ़ाने का काम करते रहे। मि० ब्रुक्स के बाद बाबू शशिभूषण चट्टोपाध्याय और महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा भी आपको पढ़ाते रहे। इस प्रकार अंग्रेजी, हिन्दी और उर्दू की आपने अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली और कुछ-कुछ संस्कृत का भी अध्ययन कर लिया।

यह बिलकुल सहज और स्वाभाविक था कि मोतीलालजी शिक्षा के लिए आपको विलायत भेजते। इसलिए पन्द्रह वर्ष की आयु होने पर १९०४-५ में आपको विलायत भेजने का विचार किया गया। आपको अकेला भेजना उचित न समझ मोतीलालजी सपरिवार विलायत के लिए रवाना हुए। कुछ मास भ्रमण करने के बाद आपको वहां के सुप्रसिद्ध प्राचीन स्कूल हैरो में भर्ती करा दिया गया। पामर्स्टन, राबर्ट पील,

स्पेंसर, पर्सीबेल और स्टेनली बाल्डविन सरीखे इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध महामन्त्रियों को जन्म देने का गौरव इसी स्कूल को प्राप्त है। शेरीडन, बायरन सरीखे कवि एवं नाटककार भी इसी स्कूल के छात्र थे। वेलज़ली डलहौज़ी, सर जान शोर, हेस्टिंग्स, लिटन, हार्डिंज आदि भारत के वायसराय भी यहीं के विद्यार्थी थे। कपूर्थला के टीका साहब और गायकवाड़ के स्वर्गीय पुत्र जयसिंह आदि आपके सहपाठी थे। स्कूल की पढ़ाई बहुत व्ययसाध्य थी। पुत्र को सुशिक्षित बनाने में मोतीलालजी ने खर्च का ख्याल नहीं किया। पानी की तरह रुपया बहा कर पुत्र को पढ़ाया। १९०७ में इण्ट्रेंस पास करके आप केम्ब्रिज के ट्रिनिटी कालेज में भरती हुए और जूलोजी, बोटनी तथा कैमिस्ट्री में आपने सम्मान सहित बी० ए० पास किया। आपकी असाधारण योग्यता के कारण बिना परीक्षा के ही आपको एम० ए० आनर्स का सार्टिफिकेट दे दिया गया। यहां कालेज में स्वर्गीय शेरवानी, सर सुलेमान, ख्वाजा अब्दुल मजीद, डा० महमूद, डा० किचलू आदि आपके सहपाठी थे। स्वर्गीय यतीन्द्रमोहन सेनगुप्त प्रायः पढ़ाई समाप्त कर चुके थे। केम्ब्रिज में भारतीय विद्यार्थियों की 'इण्डियन मजलिस' नाम की एक संस्था थी। आप उसके प्रमुख सभासद् थे। एम० ए० की डिग्री लेने के बाद १९१० में आप 'इण्टर टेम्पुल' में भरती हुए और १९१२ में आपने वहां से बार-एट-लॉ की डिग्री हासिल की। उसी वर्ष जून में आप भारत लौट आये। वहां रहते हुए आपने यूरोप के कुछ देशों का भ्रमण भी किया था।

फरवरी १९१६ में दिल्ली के पं० जवाहरलाल कौल की सुयोग्य कन्या कमला के साथ बड़े ठाठ-बाठ और समारोह से आपका विवाह

हुआ। १६१७ में पुत्री इन्दिरा का जन्म हुआ। १६२४ में भी एक और सन्तान हुई, किन्तु वह तीन दिन से अधिक जीवित न रही। दो और सन्तानें भी हुई थीं, किन्तु वे भी अकाल में ही काल का ग्रास हो गई थीं। १६२० के असहयोग में बैरिस्टरी का सर्वथा परित्याग करने तक आप थोड़ी-बहुत प्रैक्टिस अपने पिताजी के साथ करते रहे थे। प्रैक्टिस में आपका कभी दिल नहीं लगा। इसीलिए पिताजी की इच्छा होने पर भी आप ऊँचे दरजे के वकील या बैरिस्टर नहीं बन सके।

विलायत से आप सोलह आना अंग्रेज बन कर आये थे। १६२२ में आपने स्वयं ही अदालत में अपने पर चलाये गये मुकद्दमे के सिलसिले में कहा था कि "दस वर्ष से कम हुए कि जब मैं इङ्गलैण्ड से भारत लौटा था, तब मैं अपने विचार और रहन-सहन में हिन्दुस्तानी से अधिक अंग्रेज था। मैं सारे ही संसार को एक अंग्रेज की आंखों से देखा करता था। इसलिए जितना कि कोई भी भारतवासी इङ्गलैण्ड और अंग्रेजों का पक्षपाती हो सकता है, उतना मैं उस समय था।" पर, आपको समझने वालों का यह ख्याल उस समय ही बन चुका था कि अधिक दिनों तक आप वैसे न रह सकेंगे। वैसा ही हुआ भी। अंगरेजियत के साथ-साथ आपके हृदय में स्वाधीनता-प्रेम भी तो पैदा हो गया था। अपने देशवासियों की हीनता और देश की पराधीनता आपको बहुत अखरती थी। आपको बहुत बचपन से जाननेवाले श्रीयुत सच्चिदानन्द-सिंह ने लिखा है कि लाल-पाल-बाल के उग्र विचारों का आपके कोमल हृदय पर बहुत गहरा असर पड़ा था। उनके व्याख्यानों की रिपोर्टों

और लेखों को आप बहुत ध्यान से पढ़ा करते थे। उस समय के आन्दोलन का विशेषतः वंग-भंग की घटनाओं का आप बड़ी तत्परता के साथ अध्ययन किया करते थे। इङ्गलैण्ड से लौटने के बाद दिसम्बर १६१२ में बांकीपुर-पटना में हुई कांग्रेस में आप दर्शक की हैसियत से सम्मिलित हुए। १६१३ में युक्तप्रांतीय कांग्रेस कमेटी के आप सदस्य बने। दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह के लिए चन्दा जमा करने के लिए इलाहाबाद में जो कमेटी बनाई गई, उसके आप मन्त्री नियुक्त हुए और आपने ५० हजार रुपया जमा किया। फिजी प्रवासी भारतीयों के लिए भी आपने लगकर आन्दोलन किया। १६१५ में बम्बई में लार्ड सिन्हा की अध्यक्षता में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में भी आप शामिल हुए। ऐनी बेसेन्ट ने कांग्रेस में सफलता न मिलने पर जब स्वतन्त्र रूप से होमरूल लीग का संगठन करना शुरू किया, तब संयुक्त प्रान्त में उसकी शाखा खुलने पर आप भी श्री मंज़रअली सोख्ता और श्री सुन्दरलालजी के साथ उसके संयुक्त मन्त्री हुए। निर्वासन से मुक्त होकर बेसेण्ट जब इलाहाबाद आईं, तब 'आनन्द-भवन' में सब नेता उनके स्वागत के लिए इकट्ठे हुए थे। उस अवसर पर लिये गये फोटो में आज के जवाहरलालजी की स्पष्ट छाया दीख पड़ती है। लोकमान्य तिलक, सरोजिनी-नायडू, अम्बिकाचरण मजूमदार और मोतीलाल घोष के साथ आप उस फोटो में कुरते और धोती के वेश में दिखाई देते हैं।

१६१६ में रौलेट एक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह-आन्दोलन शुरू हुआ। आपका उससे अलग रह सकना सम्भव नहीं था। बूढ़े पिता इतने लाड़ प्यार से पाल-पोस कर रखे गये अपने इकलौते बेटे का त्याग-तपस्या

और कष्ट-सहन के बीहड़ प्रदेश की ओर जाना कैसे सहन कर सकते थे ? पर, पिता की ममता पर देश की ममता की कुछ ऐसी विजय हुई कि पुत्र अपने साथ पिता को भी उस ओर ले आने में सफल हो गये। उन दिनों की दो घटनाओं का यहां उल्लेख कर देना आवश्यक है। १६१८ में लखनऊ में संयुक्त प्रान्तीय राजनैतिक परिषद् का विशेषाधिवेशन हुआ था। मोतीलालजी अपने अध्यक्ष भाषण में सरकारी अन्यायों का वर्णन करने के बाद उनके विरुद्ध आन्दोलन करने की बात कहकर ब्रिटिश जनता की सद्भावना पर विश्वास करने की सलाह दे रहे थे कि जनता में से एक ओर से आवाज़ सुन पड़ी—"क्वेश्चन !" मोतीलालजी आवेश में आगये और क्रुद्ध होकर बोले—"मेरी इस बात से इन्कार करने का साहस कौन करता है ?" 'क्वेश्चन' शब्द की वही आवाज़ फिर गंज उठी। वह आवाज किसी और की नहीं, वीरवर जवाहरलाल की थी। फिर १६१६ में भी ऐसा ही हुआ। मोतीलालजी एक सभा में गान्धीजी के रौलेट एक्ट के विरुद्ध की गई सत्याग्रह की घोषणा की कुछ आलोचना कर रहे थे। 'शेम' की वही परिचित आवाज़ सभा-भवन में गूंज उठी। जवाहरलालजी आज जिस तेजस्विता के पुञ्ज दीख पड़ते हैं, उसका बीज उनके सार्वजनिक जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही विद्यमान था। जलियांवाला बाग के हत्याकाण्ड और पंजाब की फौजी हकूमत की नक्की करतूतों की जांच के सम्बन्ध में आपको मोतीलालजी के साथ पंजाब जाकर गांव-गांव घूमने का अवसर प्राप्त हुआ। दुःखी देशवासियों की आहें आपके भावुक हृदय में प्रवेश कर गईं। उन्हीं दिनों में गान्धीजी की संगति

का भी आपको लाभ मिला। उनके व्यक्तित्व का भी आप पर बहुत गहरा असर पड़ा।

५ फरवरी १६१६ को 'वसन्त पञ्चमी' के शुभ-मुहूर्त पर इलाहाबाद से अंग्रेज़ी का दैनिक-पत्र 'इण्डिपेण्डेण्ट' निकाला गया। उसके संचालन में आपका मुख्य हाथ था। सरकारी कोप का शिकार होजाने के कारण वह अधिक नहीं चल सका, किन्तु जितने दिन निकला उतने दिन निर्भीकता, सचाई और साहस के साथ उसने जनता के पक्ष का समर्थन किया और कांग्रेस के झण्डे को झुकने नहीं दिया। शहीद की तरह उस पत्र ने अपने को देश के लिए उत्सर्ग कर दिया। 'इण्डिपेण्डेण्ट' द्वारा जवाहरलालजी के 'इण्डिपेण्डेण्ट' (स्वतन्त्र) व्यक्तित्व का देशवासियों को अच्छा परिचय मिल गया।

१६२० की गरमियों में आप सपरिवार मसूरी गये थे। उन्हीं दिनों में अफगान-राजदूत भी वहां आकर ठहरे हुए थे। सरकार को भय हुआ कि वहां आप उनके साथ मिलकर कोई गुप्त षड्यन्त्र न रच डालें। २४ घण्टे में मसूरी छोड़ने का नोटिस आप पर तामील किया गया। उस समय आप वहां से चले आये, किन्तु कुछ ही दिनों बाद उस नोटिस को तोड़ने का निश्चय करके सरकार को आपने मसूरी जाने की सूचना दे दी। नोटिस तुरन्त वापिस ले लिया गया। सरकार के साथ आपकी वह पहली झपट थी, जिसमें आपने अपने स्वाभिमान की रक्षा का उज्ज्वल परिचय दिया।

१६१६ से १६२१ तक संयुक्त-प्रान्त में किसान आन्दोलन ने जो उग्र रूप धारण किया, उससे आपकी संगठन-शक्ति, कर्तृत्व-शक्ति तथा

आन्दोलन-शक्ति का उत्कृष्ट परिचय मिला और लोगों को पता चला कि 'आनन्द-भवन' के राजप्रासाद में राजसी ठाठबाट में राजकुमारों से भी अधिक आराम की जिन्दगी बितानेवाले सुकुमार जवाहर दुःखी किसानों में जाकर किस प्रकार अपने को भुला सकते हैं ? आपको बहुधा उनके झोपड़ों में कम्बल ओढ़ कर पुआल के बिस्तर पर सोना पड़ता था। उनकी मोटी रोटी और रूखे-सूखे साग-पात में आप षड्-रस भोजन का आनन्द लिया करते थे। अरहर के खेतों में पानी और कीच में धोती चढ़ाये आपको मीलों पैदल चलना पड़ता था। कितना बड़ा परिवर्तन था ? एक व्यक्ति के परिवर्तन ने अवध के किसानों में एक तूफ़ान पैदा कर दिया। सरकार घबरा गई। रायबरेली में उस तूफ़ान को दबाने के लिए गोली चला दी गई। बात यह थी कि किसान अपने कुछ नेताओं की गिरफ्तारी का प्रतिवाद करने के लिए जमा हुए। आपको भी वहां बुलाया गया। जब आप वहां पहुँचे तो नदी के उस पार किसानों के पास जाने से आपको बलपूर्वक रोक दिया गया। उधर गोली चल गई। आपका दिल भर आया। क्या करते ? विवश थे। पर, किसानों पर चली हुई एक-एक गोली आपके हृदय को बेंध गई। जलियांवाला और पंजाब की घटनाओं से हृदय में पैदा हुए घाव पर नमक छिड़क गया। किसान दृढ़ रहे और सरकार को अवध-टिनैंसी-कानून बनाकर उनकी मांगों को स्वीकार करना पड़ा।

देश में असहयोग की दुन्दुभि बज उठी और जवाहरलालजी वीर योद्धा की तरह मैदान में उतर आये। युवराज के स्वागत के बहिष्कार में १९२१ में आपको लखनऊ में पहली बार छः मास की सज़ा हुई।

तीन ही मास बाद आप छोड़ दिये गये। उसके बाद से आपका एक पैर सदा ही जेल में रहता है। पर, यह भी एक अनहोनी-सी बात है कि बहुत लम्बी-लम्बी सजायें होने पर भी आपने सिवा एक बार के और कोई सजा जेल में पूरी नहीं की। कभी माता, कभी पिता, कभी पत्नी की बीमारी या अन्य किसी कारण से आपको प्रायः सजा की अवधि पूरी होने से पहले ही छोड़ दिया गया। १७ मई १६२२ को विदेशी कपड़ों की दूकानों पर धरना देने के कारण आप दूसरी बार गिरफ़्तार किये गये। वारण्ट पर तो राजद्रोह की धारा १२४ ए लिखी गई थी, किन्तु मुकद्दमा चलाया गया धारा ३८५ के अनुसार "धमकाने और जबरन रुपया वसूल करने की कोशिश में सहायता देने" के अपराध के लिए। डेढ़ वर्ष और १०० रुपये जुर्माने की सजा हुई। इसी अवसर पर आपने अदालत में वह महत्वपूर्ण बयान दिया था, जिसकी ओर पहले संकेत किया जा चुका है और जिसकी कुछ पंक्तियां ऊपर उद्धृत भी की गई हैं। इस बार भी ६ मास बाद जनवरी में आप छोड़ दिये गये। जेल से आने के बाद आप संयुक्त प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के मन्त्री चुने गये।

उसी अवसर में आप १६२२ में इलाहाबाद म्यूनिसिपैलिटी के चेयरमैन चुने गये थे। उस पद की जिम्मेदारी आपने १६२५ तक इतनी योग्यता, निर्भीकता और तत्परता के साथ निभाई थी कि आपकी कार्य-क्षमता की सरकारी रिपोर्टों तक में प्रशंसा की गई है।

१६२३ में जब आप जेल से बाहर आये, तब कांग्रेस में कौंसिलों के कार्यक्रम को लेकर दो दल बन चुके थे। आपने भी उनमें समझौता

कराने का यत्न किया। कौन्सिलों के कार्यक्रम में आपका रत्ती भर भी विश्वास न था। फिर भी दोनों दलों का आपमें एक-समान विश्वास था। सितम्बर १६२३ में कांग्रेस का देहली में विशेषाधिवेशन होकर दोनों दलों में समझौता हो गया। उन्हीं दिनों में नाभा-राज्य के जैतो स्थान में अकालियों का सत्याग्रह हो रहा था। आचार्य गिड़वानी और डा० किचलू वहां गिरफ्तार किये जा चुके थे। आप भी कांग्रेस के विशेषाधिवेशन के बाद जैतो गये। आप पर १४४ धारा लगाकर आपको वहां जाने से रोका गया। हुक्म की अवज्ञा करके आप वहां गये और गिरफ़्तार कर लिये गये। मुक़दमा चला और आपको ढाई वर्ष की सजा हुई। पर न मालूम क्यों तुरन्त ही वह सजा मुल्तवी कर दी गई और आप रिहा कर दिये गये।

इसी बीच मई-जून में नागपुर में झण्डा-सत्याग्रह हो रहा था। कांग्रेस के स्वराज्य-दली नेता और श्री मोतीलालजी तक उसके विरुद्ध थे और उसका मज़ाक भी करते थे। पर,आप उसका समर्थन करने के लिए नागपुर पहुँचे। एक ही दिन में कोई तीन-चार सौ गिरफ्तारियां करके सरकार जब उस सत्याग्रह को कुचल डालना चहती थी, तब आप नागपुर में थे और आपकी उपस्थिति ने वहां के वातावरण में बिजली का कुछ ऐसा संचार कर दिया कि सरकार का दमन धीमा पड़ गया, किन्तु आन्दोलन धीमा नहीं पड़ा।

१६२३ के दिसम्बर मास में कोकनाडा में कांग्रेस के अधिवेशन के साथ हिन्दुस्तानी-सेवा-दल की स्थापना के लिए स्वयं-सेवकों की पहली परिषद् का आयोजन किया गया। नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह में

पहली बार भिन्न-भिन्न प्रान्तों के स्वयं-सेवक एक साथ एक प्रान्त की जेलों में इकट्ठे हुए थे। एक-दूसरे को जानने-पहचानने और आपस की कमियों तथा कमजोरियों को समझने का वह पहला ही अवसर प्राप्त हुआ था। नागपुर सेण्ट्रल-जेल में डा० हार्डिकर ने कुछ मित्रों के साथ विचार-विनिमय करके स्वयं सेवक-दल को संगठित करने का निश्चय किया था। कोकनाडा की वह परिषद् और उसके बाद स्थापित हुआ हिन्दुस्तानी-सेवा-दल उसी निश्चय के परिणाम थे। उस परिषद् के पहले सभापति के रूप में समस्त भारत के सर्व प्रथम संगठित स्वयं सेवक दल के अधिपति, सेनापति, नायक अथवा 'कमाण्डर-इन-चीफ़' होने का परम सौभाग्य भी आपको ही प्राप्त हुआ। तब से इस संगठन या आन्दोलन के आप प्राण रहे हैं। शुरू में कुछ उदासीन रह कर भी कांग्रेस ने इस संगठम को आपके ही कारण अपनाया और आपके ही कारण वह कांग्रेस-संगठन का एक मुख्य शक्तिशाली अङ्ग बन गया।

कोकनाडा में आप कांग्रेस के प्रधान मन्त्री चुने गये। जेल और राष्ट्रपति के काल को छोड़कर आप तब से अब तक बराबर इस पद पर रहे। महासमिति के कार्यालय को व्यवस्थित करके उसकी प्रतिष्ठा को सरकारी दफ़्तरों के समान बनाकर काँग्रेस कार्यालयों का जाल सारे देश में बिछा देने का कार्य आपने बहुत अच्छी तरह किया।

कमलाजी की बीमारी के कारण आपको उनके औषधोपचार के लिए १९२६ में स्विज़रलैण्ड जाना पड़ा। यूरोप की राजनैतिक परिस्थिति का उन दिनों में आपने अच्छा अध्ययन किया। फरवरी १९२७ में बूसैल्स में हुई साम्राज्य-विरोधी-परिषद् में आप कांग्रेस के प्रतिनिधि की

हैसियत से सम्मिलित हुए। आइन्स्टीन, रोमारोलां, श्रीमती सनयातसेन जार्ज लैंसबरी के साथ आप भी उसकी एक दिन की बैठक के अध्यक्ष हुए थे। उसके झण्डा-चौक में भारत का तिरंगा झण्डा भी आपने फहराया था। परिषद् का आपको एक प्रधान मन्त्री चुना गया था, किन्तु जब उसके लिए आपने असमर्थता प्रकट की, तो आपको उसकी कार्य समिति का सदस्य चुना गया। नवम्बर १९२७ में सोवियट सरकार के निमन्त्रण पर आप रूस गये और वहां रूसी प्रजातन्त्र के दसवें उत्सव में सम्मिलित हुए। वहां की परिस्थिति का आप पर ऐसा गहरा असर पड़ा कि आप साम्यवाद के रंग में रंग गये।

स्वदेश लौटने पर आपने यूरोपियन राष्ट्रों की स्थिति का अध्ययन करके जो विचार स्थिर किये थे, उनका दृढ़ता के साथ प्रचार शुरू किया। उन दिनों के आपके लेखों और भाषणों में एक नवीन ओज, नवीन स्फूर्ति, नवीन विचारधारा रहती थी। राजनीति में समाज नीति का समावेश कर राजनैतिक स्वाधीनता के साथ-साथ नवीन सामाजिक निर्माण की आवश्यकता के नये दृष्टिकोण को आपने देशवासियों के सामने उपस्थित किया। जो लोग आपको केवल एक योद्धा और नेता ही समझते थे, आपको प्रतिभासम्पन्न विचारक के रूप में देखकर चकित रह गये। युक्तप्रान्त और पंजाब की प्रांतिक राजनैतिक सम्मेलनों, बंगाल के प्रान्तीय छात्र सम्मेलन और बम्बई के प्रान्तीय युवक सम्मेलन आदि के अध्यक्ष-पद से आपने जो भाषण दिये, उनसे देश में एक नई चेतना और नया जीवन पैदा हो गया। देश के जीवन में चहुंमुखी क्रांति पैदा करने की आवश्यकता का स्पष्ट प्रतिपादन करके आपने

स्वाधीनता का व्यापक अर्थ देशवासियों के सामने पेश किया। १९२७ में मदरास में हुई कांग्रेस में यद्यपि आपका पेश किया हुआ कांग्रेस के ध्येय को बदलने का पूर्ण स्वाधीनता सम्बन्धी प्रस्ताव स्वीकृत न हो सका था, किन्तु आपकी जगाई हुई भावना और पूर्ण स्वाधीनता के लिए पैदा की हुई लालसा फिर कभी धीमी नहीं पड़ी। उसी के परिणाम स्वरूप दिल्ली में ३-४ नवम्बर १९२८ को "भारतीय स्वाधीनता संघ" की स्थापना हुई। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वाधीनता के सर्वव्यापी ध्येय को सम्मुख रख, चहुंमुखी क्रांति की भावना से प्रेरित हो, स्थापित की गई वह पहली संस्था थी।

देश के मजदूर आन्दोलन पर भी आपके व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ा और १९२९ में झरिया में हुई मजदूर कांग्रेस के आप सभापति चुने गये। तब आपने जो भाषण दिया था, वह भारत के मजदूर आन्दोलन के इतिहास पर अपनी छाप सदा के लिए छोड़ गया है।

दिसम्बर १९२८ में श्री मोतीलालजी नेहरू के राष्ट्रपतित्व में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में आपको अपने को दबा लेना पड़ा और पूर्ण स्वाधीनता सम्बन्धी आपका प्रस्ताव कांग्रेस में स्वीकृत न हो सका, किंतु किसको पता था कि दो वर्षों से जो बात टलती आ रही थी, वह आपके ही राष्ट्रपतित्व में होने को थी। कलकत्ता कांग्रेस में सरकार को दी गई एक वर्ष की अवधि का पालन कांग्रेस ने १९२९ की ३१ दिसम्बर की रात के १२ बजे तक किया। उसके बाद आपके ही नेतृत्व में कांग्रेस ने अपने 'पूर्ण स्वाधीनता' के ध्येय की घोषणा की। उस रात का स्वर्गीय दृश्य देखनेवाले उसे कभी नहीं भूल सकते। उस कांग्रेस

की सारी घटनायें कुछ अभूतपूर्व ही थीं। राष्ट्रपति का घोड़े पर पहली बार जलूस निकाला गया था और पहली बार स्वतन्त्रता की घोषणा होने पर उपस्थित प्रतिनिधियों ने नाचने-गाने और खुशियों में वह सारी रात बिताई थी। बूढ़े पिता का हृदय भी गद्गद् हो गया था। जो किसी दिन अपने पुत्र को बीहड़ जंगल में जाते देख अधीर हो जाता था, वह आज उसको राष्ट्र के सर्वाधिक सम्मान के सर्वोत्तम स्थान पर बैठ, सारे राष्ट्र का निश्चित ध्येय की ओर नेतृत्व करते हुए देख, फूला न समाता था। यही अवस्था उस माता के हृदय की थी, जिसने कोमल हाथों पर भी गदेले रख, आंखों के सितारे, हृदय के सब से प्यारे टुकड़े को बड़ी-बड़ी आशाओं और आकांक्षाओं के साथ पाला था।

१६३० में १६२० की तरह फिर राष्ट्र ने एक करवट बदली। पूर्ण-स्वाधीनता की लहरों पर देश का हृदय उछल पड़ा। २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस मनाया गया। पूरी गम्भीरता और सचाई के साथ सारे देश ने एक स्वर से स्वाधीनता का वह प्रतिज्ञा पत्र पढ़ा, जिसका उल्लेख भारत के इतिहास में भारत के मैगना चार्टा के रूप में किया जायगा। कहा जाता है कि वह प्रतिज्ञा-पत्र या घोषणा-पत्र आपका ही लिखा हुआ है। पर, इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं कि यूरोप से लौट कर जिस विचार धारा को आपने इस देश में जन्म दिया था, उसी का प्रतिबिम्ब उसमें अङ्कित किया गया था। स्वाधीनता की घोषणा के बाद उसके लिए युद्ध होना अनिवार्य था। गान्धीजी का अल्टीमेटम, डांडी की यात्रा और सारे देश में नमक-कानून की अवज्ञा आदि सब घटनायें तूफ़ान की तरह घट रही थीं। संयुक्त प्रान्त में १० अप्रैल को आपके

नेतृत्व में नमक-कानून तोड़ा गया और १२ अप्रैल को आप गिरफ्तार किये गये। ६ मास की सजा हुई। बीच में सप्रू-जयकर द्वारा किये गये सन्धि के यत्नों और आपको पं० मोतीलालजी के साथ गान्धीजी के पास यरवडा जेल ले जाने तथा वहां राजनैतिक मन्त्रणा होने की घटनाओं का उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। उस समय गान्धीजी को आपने जो पत्र लिखा था, उससे आपकी योद्धा मनोवृत्ति का पूर्ण परिचय मिलता है।

११ अक्तूबर को आप जेल से बाहर आये, तो मोतीलालजी भीष्म-पितामह की तरह रोग शय्या पर पड़े हुए थे। उस पर भी आप कर्तव्य-विमुख नहीं हुए। आन्दोलन में जुट गये। करबंदी का सूत्रपात् करके आन्दोलन में आपने नवजीवन का संचार किया। बीमारी में भी मोती-लालजी ने ३० हजार का इनकम टैक्स देने से इनकार कर दिया और 'आनन्द-भवन' बिक जाने का अवसर आ जाने पर भी वह टैक्स न देने का निश्चय प्रकट किया। ऐसा करने पर आपका अधिक दिन जेल से बाहर रहना संभव नहीं था। सात ही दिन बाद आप फिर गिरफ्तार कर लिये गये और तीन मास बाद मोतीलालजी की बीमारी के कारण छोड़ दिये गये। जेल से आने के कुछ ही दिन बाद आप पर कठोर वज्रपात हुआ। मोतीलालजी का ६ फरवरी की प्रातःकाल लखनऊ में देहावसान हो गया। ऐसी भयानक आपत्ति से तनिक भी विचलित न हो कर आप राष्ट्र-कार्य में लगे रहे। उसी समय गान्धी-अर्विन-समझौते की चर्चा शुरू हुई थी। उस आपत्ति को सर्वथा भुलाकर आपने उसमें जैसा मनोयोग दिया था, उसका उल्लेख करते हुए गान्धीजी ने लिखा

था कि "मैं इस गुप्त रहस्य को प्रकट कर देना चाहता हूँ कि पं० जवाहरलालजी नेहरू की स्पष्ट और जोरदार आलोचना के बिना समझौते का अन्तिम रूप इससे कहीं भिन्न होता था।"

समझौते के बाद आप चुप होकर बैठ नहीं गये। सारे प्रान्त का आपने दौरा किया और समझौते का पालन कड़ाई से करने का आपने पूरा ध्यान रखा। अधिक मेहनत से स्वास्थ्य कुछ गिर गया, तो आप सप त्नीक मई मास में लङ्का गये।

सितम्बर १९३० में गांधीजी रुकते-रुकते भी जब दूसरी गोलमेज-परिषद् के लिए विलायत को बिदा हो गये, तब उन्होंने लिखा था कि "मि० रेनाल्ड तथा अन्य मित्रों ने मुझसे कम से कम जवाहरलाल जी को तो लन्दन साथ ले आने का आग्रह किया है। वह निर्भय और विनम्र हैं। कमजोरी और कमजोर करनेवाली कायरता से वे अपरिचित हैं। इसीलिए वे कमजोरी को एक क्षण में पकड़ लेते हैं। गोल-मोल भाषा से उनको घृणा हैं। वह वास्तविकता तक सीधे पहुँचने पर जोर देते हैं। जब मैं आदर्शवाद में उनसे आगे होने की बात कहता हूँ तो वे मुझसे भी आगे होने का दावा करते हैं। मैं अपने मित्रों की इस सलाह को मानता हूँ कि मुझको ठीक मार्ग पर बनाये रखने और सन्देह के समय शब्दकोश का काम देने के लिए मुझे जवाहरलालजी को अपने साथ रखना चाहिए।" पर, जैसा कि उन्होंने लाहौर कांग्रेस के अवसर पर लिखा था कि "राष्ट्र उनके हाथों में सुरक्षित है," वैसा ही इस समय भी वह अनुभव करते थे और राष्ट्र को अपने पीछे सुरक्षित हाथों में रखने के लिए ही वे आपको अपने साथ नहीं ले गये थे।

१६३१ का वर्ष अभी पूरा न हुआ था और गांधीजी विलायत से लौटे भी न थे कि सरकार ने सीमा-प्रान्त में खुदाई-खिदमतगारों और संयुक्त-प्रान्त में किसानों के आन्दोलन को लेकर दमन का ही नहीं, किन्तु आर्डीनेन्स-राज का श्रीगणेश कर दिया था। गान्धीजी के बम्बई पहुंचने पर उस समय की परिस्थिति पर विचार करने के लिए कार्य-समिति की बैठक बम्बई में बुलाई गई थी। जवाहरलाल जी पर इलाहाबाद की सीमा छोड़कर बाहर न जाने का नोटिस तामील किया गया था। आपने उसी समय कह दिया था कि मैं जिस संस्था का तुच्छ सिपाही हूँ उसके सिवा किसी और का हुक्म मानने का मुझे अभ्यास नहीं है। उस नोटिस की परवा न कर आप कार्य-समिति की बैठक के लिए २३ दिसम्बर को बम्बई चल दिये। इलाहाबाद से कुछ दूर गाड़ी ठहरा कर आपको गिरफ्तार किया गया। अढ़ाई वर्ष की सजा हुई। माता स्वरूपरानी की बीमारी के कारण आपको सजा की अवधि पूरी होने से १२ दिन पहले ३० अगस्त १६३३ को रिहा कर दिया गया। माता 'जी का स्वास्थ संभलते ही आप महात्मा जी से मुलाकात करने के लिए पूना गये। उस समय गांधीजी के साथ आपका जो विचार-विनिमय हुआ था, वह पत्र-व्यवहार के रूप में देशवासियों, विशेषतः कांग्रेस-वादियों के पथ-प्रदर्शन के लिए प्रकाशित कर दिया गया था।

कांग्रेस को और देश को आपने दो वस्तुएँ प्रदान की हैं। पहली है—कांग्रेस के ध्येय के रूप में पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा और दूसरी है—उसके कार्यक्रम तथा आन्दोलन को साम्यवाद की पुट देना। उन्हीं दिनों में आपने 'हिंदुस्तान किस ओर'? शीर्षक से एक

लेखमाला लिखी थी और नवयुवक कार्यकर्ताओं को इलाहाबाद में इकट्ठा करके कुछ व्याख्यान भी दिये थे। उसी के परिणाम-स्वरूप कांग्रेस के सिद्धान्तों तथा कार्यक्रम पर साम्यवादी दृष्टिकोण से विचार करने की शैली का प्रादुर्भाव हुआ समझना चाहिए।

१९३४ की १५ जनवरी को बिहार में प्रलयकारी भूकम्प हुआ। आप उस समय कलकत्ता में थे। वहां से आप सीधे बिहार पहुँचे। दुःखी बिहार के प्रलय के प्रदेश मुज्जफ्फरपुर में बाहर से पहुँचने वाले आप सबसे पहले नेता थे। वहां से लौटकर आपने बिहार की सहायता के लिए अपील निकाली और इलाहाबाद में फण्ड जमा करने का आयोजन किया। जनवरी के अन्त में आप फिर बिहार गये और सारे उत्तरी बिहार का आपने दौरा किया। कहीं बालू से आच्छादित और कहीं जल में निमग्न देहातों का आपने निरीक्षण किया। अपने पुत्र की लाश खोजते-खोजते निराश हो जाने वाला एक बुड्ढा-बाप मुंगेर में आपके पास आया और रोते-रोते उसने आपको अपनी दुःख-गाथा सुनाई। आप फावड़ा ले स्वयं वहां पहुँचे। कई घण्टों की कड़ी मेहनत के बाद मलबे के नीचे दबी हुई लाश मिल गई। मुंगेर में ही नहीं, सारे बिहार और सारे ही देश में एक बिजली सी दौड़ गई। न मालूम, क्यों सरकार को तब आपका बाहर रहना सहन न हुआ? कलकत्ता में राजनैतिक-भूकम्प आदि विषयो पर आपके दो व्याख्यानों पर १२४ ए दफा में फरवरी १९३४ में दो वर्ष की सजा दे दी गई।

कमलाजी का स्वास्थ इस बीच में बहुत बिगड़ गया। उनको डाक्टरों की राय पर भुवाली सेनिटोरियम ले जाया गया। तब आपको

रिहा करने के लिए सरकार पर पूरा दबाव डाला गया। पर, लार्ड विलिंगडन की सरकार पर कुछ भी असर न हुआ। अन्त में उसने इतना ही किया कि आपको अल्मोड़ा जेल भेज दिया और रुग्ण-शय्या पर पड़ी हुई पत्नी को देखने के लिए पांचवें-सातवें दिन जेल से सेनिटोरियम आने की सुविधा दे दी। कैसी कठोर परीक्षा थी? दो शब्द कह कर आप छूट सकते थे। पर देश की आन पर, सर्वस्व न्यौछावर करने वाले आप वैसा कर ही कैसे सकते थे? कमलाजी की बीमारी ने भयानक रूप धारण किया। उनको इलाज के लिए विलायत ले जाना पड़ा। आशा थी कि सरकार उस समय आपको छोड़ देगी। मनुष्यता का तकाजा तब भी पूरा न किया गया। वहां के डाक्टरों ने जब अवस्था चिन्तापूर्ण बताई और गांधीजी आदि ने वायसराय को तार दिये, तब ३ सितम्बर को आपको रिहा किया गया और आप हवाई जहाज से बैडनवीलर (जर्मनी) के लिए विदा हो गये। रुग्ण पत्नी की सेवा-सुश्रूषा में लगे रहने पर भी आपको अपने देश का ध्यान बना रहता था। वहां रहते हुए दो बार आप इंग्लैण्ड गये और वहां थोड़े दिनों के निवास-काल में ही आपने भारी तहलका मचा दिया। देशवासी कमला जी के स्वस्थ होकर लौटने की प्रतीक्षा में थे किन्तु क्या पता था कि आपको अभी और भी अधिक कठोर परीक्षा देनी थी? २८ फरवरी को एकाएक कमलाजी का देहावसान हो गया।

आपका धैर्य और साहस एक बार फिर कसौटी पर कसा गया। आप कर्तव्य-पथ से एक इंच भी चल-विचल नहीं हुए। वैसे तो यह कमलाजी का ही बड़प्पन था कि उन्होंने आपको कड़े से कड़े समय में

भी कर्तव्य पथ से विचलित नहीं होने दिया था। कमलाजी मृत्युशैया पर ही लेटी हुई थीं कि देश ने एक स्वर से नेहरूजी को लखनऊ कांग्रेस के अधिवेशन के लिए सभापति चुना, तब उन्होंने आपको अपनी चिन्ता न कर देश की चिन्ता और सेवा करने की सलाह दी थी, वह कितनी वीरतापूर्ण थी ? कमलाजी का हृदय भी देशभक्ति के भावों से परिपूर्ण था। त्याग-तपस्या तथा आत्मोत्सर्ग के मार्ग का उन्होंने भी स्वेच्छा से अनुसरण किया था और वह भी आज़ादी की धुन में मारी मारी फिरती थीं। उनके देहावसान से आपकी जीवन-सङ्गिनी का ही विछोह नहीं हुआ, किन्तु एक बहुत बड़ा राजनैतिक सहायक भी आपसे छिन गया। फिर भी आप राष्ट्रसेवा के मैदान में कभी पीठ न दिखाने वाले वीर योद्धा की तरह डटे हुए हैं। १० मार्च को कराची और ११ को इलाहाबाद पहुंच कर, उसी दिन कमलाजी के फूल गंगा में बहा दिये और लखनऊ कांग्रेस की तैयारियों की देख-भाल करने के लिए लखनऊ पहुंच गये। वहां से १७ मार्च को गान्धीजी तथा अन्य नेताओं के साथ विचार-विनिमय करने और कार्य समिति की बैठकों में भाग लेने के लिए देहली आ गये। ऐसा प्रतीत होता है जैसे आपको सिवा देश-सेवा के अपना कोई काम ही नहीं है।

गांधीजी के बाद समस्त देश की आंखें आप पर लगी हुई हैं। आप विशुद्ध राष्ट्रीयता के उपासक हैं। धर्म आपकी दृष्टि में जनता के लिए अफीम और साम्प्रदायिकता भयानक विष है। सामाजिक ऊँच-नीच के भेदभाव और धन-सम्पत्ति के अस्वाभाविक बटवारे के भी आप पूर्ण विरोधी हैं। साम्यवादी होते हुए भी नियन्त्रण के आप परम भक्त

हैं और साथियों के निर्णय से सहमत न होकर भी उसको निभाना खूब जानते हैं। आप अच्छे वक्ता और लेखक भी हैं और जनता के हृदय के ईंधन में आग देने की शक्ति आप में है। आपके शब्दों में सीधी हृदय पर चोट करने वाली सचाई, दृढ़ता और खरी बात रहती है। आपका व्यक्तित्व आकर्षक और स्वभाव मिलनसार है। आपकी देशभक्ति निष्कलङ्क, चरित्र उत्कृष्ट और रहन-सहन बिलकुल सीधा-सादा है।

१६२६ में प्रो० सुधीन्द्र बोस ने आपकी तुलना लेनिन से की थी और अभी जब १६३६ के जनवरी मास में आप इङ्गलैण्ड गये थे, तब वहां के 'न्यूज़ क्रौनिकल' ने आपकी पुस्तकों की तुलना मुसोलिनी की पुस्तकों से करते हुए लिखा था कि आप पहले आदमी और बाद में राजनीतिज्ञ हैं। प्रो० हैराल्ड लास्की ने लिखा है कि "आपके खून के क़तरे-क़तरे में स्वराज्य रमा हुआ है। आप अपने पिता से भी अधिक उग्र और देश की आजादी के लिए छाती खोलकर लड़ने को सदा तैयार रहते हैं। ब्रिटिश सरकार की नेकनीयती में आपको तनिक भी विश्वास नहीं है।" पार्लमेन्ट की इण्डिपेण्डेण्ट लेबर पार्टी के भारत-हितैषी सदस्य श्री एच० एम० ब्रेल्सफोर्ड ने तो आपके बारे में यहां तक लिखा है कि "गांधीजी प्रभावहीन हो रहे हैं। सम्भव है कि उनकी पार्टी अपना काम कर चुकी हो। उसकी बगल में एक नौजवान सोशलिस्ट पार्टी बन रही है। जो व्यक्ति उसका ठीक-ठीक नेतृत्व कर सकता है, वह जेल में है और वह हैं पण्डित जवाहरलाल नेहरू।" फैनर ब्राकवे ने आपकी गणना आधुनिक समय के संसार के महान् शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्तियों में की है।

भारत की नई सन्तति के आप निर्विवाद सर्वसम्मत नेता हैं। राजनैतिक नेता के रूप में आप एक शक्ति, ताकत और स्फूर्ति के पुञ्ज हैं। कभी न झुकनेवाले, अपने विचारों पर सदा दृढ़ रहने वाले, अपने विश्वास के आप महा धनी हैं। आपकी संगति में रहने वालों पर केवल आपके असीम स्वार्थ त्याग और महान् आत्मोत्सर्ग का ही असर नहीं पड़ता, किन्तु सज्जनतापूर्ण व्यवहार और प्रेमपूर्ण व्यक्तिगत सम्बन्ध का भी बहुत गहरा असर पड़ता है। सज्जनता की आप साक्षात् मूर्ति हैं।

भारत को अभी आपसे बहुत-सी आशायें हैं। आपको नीरोग दीर्घ जीवन प्राप्त हो, जिससे आप उन सारी आशाओं को पूरा करने में समर्थ हो सकें।

सस्ता साहित्य मण्डल के उच्च कोटि के

राष्ट्र निर्माणकारी प्रकाशन

—o—

३०--यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ॥-)
३१--जब अंग्रेज़ नहीं आये थे ।)
३२--गंगा गोविंदसिंह(अप्राप्य)॥=)
३३--श्रीरामचरित्र १।)
३४--आश्रम-हरिणी ।)
३५--हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६--स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७--महान् मातृत्व की ओर ।॥=)
३८--शिवाजी की योग्यता ।=)
३९--तरंगित हृदय ॥)
४०--नरमेध १॥)
४१--दुखी दुनिया ॥)
४२--ज़िन्दा लाश ॥)
४३--आत्म-कथा (गांधीजी) दो खण्ड सजिल्द १॥)
४४--जब अंग्रेज़ आये (ज़ब्त) (अप्राप्य) १।=)
४५--जीवन-विकास १।), १॥)
४६--किसानों का बिगुल(ज़ब्त) =)
४७--फाँसी ! ॥)
४८--अनासक्तियोग तथा गीता-बोध (श्लोक सहित) ।=)
अनासक्तियोग =)
गीताबोध— -)॥
४९--स्वर्ण-विहान (ज़ब्त) ।=)
५०--मराठों का उत्थान पतन २॥)
५१--भाई के पत्र १॥), सजिल्द २)
५२--स्वगत ।=)
५३--युग-धर्म (ज़ब्तःअप्राप्य) १=)
५४--स्त्री-समस्या १॥)
५५--विदेशी कपड़े का मुक़ाबला ॥=)
५६--चित्रपट ।=)
५७--राष्ट्रवाणी (अप्राप्य) ॥=)
५८--इङ्गलैण्ड में महात्माजी १)
५९--रोटी का सवाल १)
६०--दैवी सम्पद् ।=)
६१--जीवन-सूत्र ॥)
६२--हमारा कलङ्क ॥=)
६३--बुद्बुद् ॥)
६४--संघर्ष या सहयोग ? १॥)

६५--गांधी-विचार-दोहन |||)

६६--एशिया की क्रांति(ज़ब्त) १|||)

६७--हमारे राष्ट्रनिर्माता २||), ३)

६८--स्वतंत्रता की ओर— १||)

६९--आगे बढ़ो ! ||)

७०--बुद्ध-वाणी ||=)

७१--कांग्रेस का इतिहास २||)

७२--हमारे राष्ट्रपति १)

सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाज़ार, दिल्ली